भारतीय जनसंघ

घोषणाऐं व प्रस्ताव

1951-72

2

आर्थिक विषयों पर प्रस्ताव

भारतीय जनसंघ घोषणाऐं व प्रस्ताव 1951-72 2

भारतीय जनसंघ

घोषणाएं व प्रस्ताव

भाग 2

आर्थिक विषयों पर प्रस्ताव

भारतीय जनसंघ
विट्ठलभाई पटेल भवन
नई दिल्ली (पिन 110001), भारतवर्ष

भारतीय जनसंघ

घोषणाएं व प्रस्ताव

भाग 2 { आर्थिक विषयों पर प्रस्ताव

मूल्य { साधारण जिल्द : 12.00 रु. 15.00
पक्की जिल्द : 15.00 रु. 20.00

प्रथम संस्करण, फरवरी 1973

प्रकाशक :
भारतीय जनसंघ
विट्ठलभाई पटेल भवन
नई दिल्ली (पिन 110001), भारतवर्ष

मुद्रक :
नवचेतन प्रेस प्रा० लि०
(लीजिज़ ऑफ अर्जुन प्रेस)
नया बाजार, दिल्ली (पिन 110006), भारतवर्ष

प्रस्तावना

भारतीय जनसंघ गत 21 अक्तूबर 1972 को, अपने जीवन के 2 वर्ष पूर्ण कर, तरुणाई में प्रविष्ट हो चुका है। भारत जैसे प्राचीन राष्ट्र के जीवन में दो दशक अधिक महत्व नहीं रखते, किन्तु जनसंघ के लिए यह कालखंड अत्यधिक मूल्यवान है, क्योंकि यह उसके जन्म और प्रारंभिक जीवन की कहानी प्रस्तुत करता है।

जब जनसंघ एक नये राजनीतिक दल के रूप में अस्तित्व में आया तब देश विभाजनोत्तर समस्याओं में उलझा हुआ था। कांग्रेस नेतृत्व का यह आशावाद कि पृथक पाकिस्तान की स्थापना से साम्प्रदायिक घृणा और संघर्ष का दीर्घकालीन अध्याय सदा के लिए समाप्त हो जाएगा, फलीभूत नहीं हुआ था। हिन्दू-मुस्लिम द्वन्द्व समाप्त होने के बजाय, विस्तृत होकर, भारत-पाक संघर्ष में बदल गया था। जम्मू-काश्मीर पर पाक आक्रमण कायम था। पूर्व पाकिस्तान (अब बांगला देश) में हिन्दुओं का योजनाबद्ध विनाश चल रहा था। पाकिस्तान के प्रति सरकार की नीति के सम्बन्ध में, जो एक दृष्टि से विभाजन के पूर्व की मुस्लिम तुष्टीकरण की नीति का ही विस्तार मात्र थी, व्यापक जन-असंतोष था। यहां तक कि स्वयं नेहरू मंत्रिमंडल में गहरे मतभेद थे जो डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी के त्याग-पत्र के साथ प्रकाश में आ गए।

यह नितांत स्वाभाविक था कि इस विशेष परिस्थिति में गठित राजनीतिक दल पाकिस्तान के खतरे के प्रति देश को सावधान और सन्नद्ध करने पर सर्वाधिक बल देता। किसी देश के लिए और विशेषतः भारत जैसे नव-स्वतंत्र और विभक्त राष्ट्र के लिए अपनी स्वतंत्रता और अखण्डता की रक्षा से बढ़ कर और क्या कार्य हो सकता था? किन्तु जनसंघ नेतृत्व यह भलीभांति जानता था कि किसी राष्ट्र की सुरक्षा के लिए सैन्य बल के साथ-साथ आर्थिक तथा औद्योगिक शक्ति का होना नितांत आवश्यक है। यही कारण है कि 21 अक्तूबर 1951 को स्वीकृत अपने प्रथम घोषणा-पत्र में जहां जनसंघ ने भारत को 'शक्तिशाली और सुसंगठित' बनाने का ध्येय सामने रखा, वहां उसकी 'सुसम्पन्नता' पर भी जोर दिया। घोषणा-पत्र में भारत को 'एक सामाजिक और आर्थिक जनतंत्र' बनाने की बात कही गई 'जिसमें व्यक्ति को समान अवसर और स्वतंत्रता हो।' समान अवसर का सिद्धांत दलित तथा उपेक्षित

वर्गों के लिए कठिनाई का कारण न बन जाए इस दृष्टि से उनको 'आर्थिक और शैक्षणिक प्रगति के लिए विशेष सहायता' का प्रतिपादन किया गया।

आर्थिक प्रश्नों पर जनसंघ का दृष्टिकोण प्रारम्भ से मतवादी न होकर व्यवहारवादी रहा है। पूर्ण राष्ट्रीयकरण और खुली-छूट दोनों को अस्वीकृत करके जनसंघ ने एक मध्यम मार्ग का अवलम्बन किया। उसने प्रतिरक्षा उद्योगों के राष्ट्रीयकरण का समर्थन किया, किन्तु "अन्य उद्योगों को उत्पादन तथा उपभोक्ता दोनों के हितों का ध्यान रखते हुए राज्य के नियंत्रण के अधीन व्यक्तिगत साहस का अवसर प्रदान करने" की नीति अपनाई। **आर्थिक उन्नति के लिए जनसंघ ने सन् 1951 में "उत्पादन में वृद्धि, वितरण में समानता तथा उपभोग में संयम" के जिस त्रि-सूत्र का उच्चारण किया था वह आज भी कितना सुसंगत, उपादेय तथा व्यावहारिक है यह बताने की आवश्यकता नहीं है।**

जमींदारी का उन्मूलन तथा कृषक को भूमि का स्वामित्व देने, श्रम को उद्योग के लाभ में साझीदार बनाने, कुछ उद्योगपतियों को अपने हाथों में देश की आर्थिक शक्ति को केन्द्रित करने से रोकने, अनुचित लाभ की प्रवृत्ति पर अंकुश लगाने, विभिन्न वर्गों की आय में बहुत अंतर न रहे इस दृष्टि से करा-धान करने के सुझाव देकर जनसंघ ने असंदिग्ध रूप से यह स्पष्ट कर दिया था कि वह यथास्थिति को बनाये रखने के लिए राजनीति के रंगमंच पर नहीं आया; वह परिवर्तन में विश्वास रखता है, किन्तु परिवर्तन भारतीय जीवन मूल्यों के अनुकूल और लोकतांत्रिक तरीकों से होना चाहिए।

सन् 1951 से लेकर 1972 तक की जनसंघ की यात्रा अनेक उतार-चढ़ावों से परिपूर्ण रही है। उसने 5 आम चुनाव लड़े हैं और जय-पराजय के मीठे-कड़ुवे फलों का समान रूप से रसास्वादन करते हुए भारतीय राजनीति में अपने लिए एक स्थान बनाने में सफलता पाई है। इसी बीच में देश की राजनीति में भी गुणात्मक परिवर्तन हुए हैं। बालिग मताधिकार, शिक्षा के प्रसार, संचार-साधनों के विस्तार तथा प्रैस और रेडियो ने जन-जागृति को बढ़ाने में योगदान दिया है। आम आदमी अपने अधिकारों के प्रति अधिक सचेत हुआ है। सदियों से दलित तथा उपेक्षित वर्ग अपनी सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति में सुधार के लिए व्यग्र है। राष्ट्रीय समृद्धि में साझीदार बनने की जन-साधारण की इच्छा नितांत स्वाभाविक है। इस स्थिति में किसी भी ऐसे राज-नीतिक दल के लिए जिसने जन-कल्याण का लक्ष्य सामने रखा है, जनता की आवश्यकताओं तथा आकांक्षाओं को समझना और उनके साथ स्वयं को अधि-काधिक एकाकार करना आवश्यक है। भारतीय जनसंघ ने ऐसा ही किया है। जनसंघ की आर्थिक नीतियों तथा कार्यक्रमों का केन्द्र-बिन्दु वह 'दरिद्र' है जिसमें हमने 'नारायण' के दर्शन किये हैं और जिसे सुखी तथा सन्तुष्ट बनाने से बढ़कर

और कोई कार्य नहीं हो सकता।

एक मध्यमवर्गीय दल के नाते जनसंघ को अतिदक्षिण तथा अतिवाम दोनों ओर के हमलों का सामना करना पड़ा है। आर्थिक क्षेत्र में खुली-छूट के हिमा-यतियों ने हमें कम्युनिस्टों से अधिक बुरा कहा है। दूसरी ओर कथित प्रगति-वादियों की दृष्टि में जनसंघ प्रतिक्रियावादी तथा निहित स्वार्थों का रक्षक है। ये दोनों ही प्रकार की आलोचनाएं सर्वथा निराधार और विद्वेषपूर्ण हैं।

जनसंघ आलोचकों का एक तीसरा वर्ग है जो उस पर हवा के साथ बहने और पुराने पथ से विचलित होने का आरोप लगाता है। उदाहरण के लिए गाजियाबाद में जनसंघ द्वारा शहरी सम्पत्ति की सीमा बांधने के सम्बन्ध में किये गए निर्णय को पेश किया जाता है। अधिकतम और अल्पतम आय के अनुपात को मर्यादित करने के प्रस्ताव को भी इसी श्रेणी में माना जाता है।

शहरी सम्पत्ति की सीमाबन्दी का प्रश्न जनसंघ के जन्मकाल से उसके सामने रहा है। जब दल ने कृषिभूमि की अधिकतम सीमा तय करने का फैसला किया था तभी यह बात बलपूर्वक कही गई थी कि शहरी सम्पत्ति की भी सीमा तय होनी चाहिए। उस समय दल का मत बना कि अभी उसके लिए उपयुक्त अवसर नहीं है। वैसे 'भारतीय संस्कृति और मर्यादा' के आधार पर प्राचीन भारत को आधुनिक रूप देने तथा समतायुक्त समाज की रचना करने के लिए कृत-संकल्प दल सम्पत्ति, आमदनी तथा उपभोग के अधिकार को अमर्यादित नहीं मान सकता।

इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि भूमि तथा शहरी सम्पत्ति की सीमा के निर्धारण के पक्ष में जनसंघ के तर्क अन्य दलों से भिन्न हैं। हमें यह कभी भ्रम नहीं रहा कि जोत की हदबन्दी के बाद भूमिहीनों में वितरित करने के लिए बड़ी मात्रा में भूमि मिलेगी और ग्रामीण बेरोजगारी दूर हो जाएगी। गत 25 वर्षों के अनुभव ने जनसंघ को सही सिद्ध किया है। हदबन्दी के सम-र्थन के अपने कारण थे और उनमें सबसे प्रमुख कारण यह था कि अन्नोत्पादन की वृद्धि के लिए सघन खेती आवश्यक है और उसके लिए खेत ऐसा होना चाहिए जिसमें व्यक्तिगत रुचि ली जा सके और जिसकी अच्छी तरह देखभाल की जा सके। भारत की वर्तमान स्थिति में कृषि का विशाल पैमाने पर यंत्री-करण अनुपयुक्त होगा, यह विचार भी जनसंघ के सामने था।

शहरी सम्पत्ति की सीमा निर्धारित करने के मूल में भी शहरी भूमि का अधिकतम तथा सर्वोत्तम उपयोग करने की भावना रही है। गाजियाबाद अधि-वेशन में जनसंघ ने शहरी सम्पत्ति की सीमा बांधते समय भूमि तथा मकान की कीमत अलग-अलग आंकने का जो सुझाव दिया है, उसका व्यापक स्वागत हुआ है। नगरों में बड़े-बड़े बाग-बगीचों तथा तैरने के तालाबों से युक्त आलीशान

मकानों का निर्माण, आज की स्थिति में वैभव का भोंडा प्रदर्शन है। जनसंघ का मत है कि निवास के लिए कोई भी मकान 1,000 वर्ग गज भूमि के अंतर्गत ही होना चाहिए।

गाजियाबाद अधिवेशन में स्वीकृत आर्थिक प्रस्ताव में जब जनसंघ ने आर्थिक विषमता को कम करने के लिए न्यूनतम व्यय-योग्य आय का अनुपात 1 : 20 करने के सुझाव को समाविष्ट किया तो कुछ लोग हैरत में आ गये। उन्होंने यह फतवा दे दिया कि जनसंघ वामपंथी हो रहा है। अनेक समाचार-पत्रों ने इस आशय की टिप्पणियां लिखी। उनमें से कुछ ने जनसंघ को 'नई दिशा' अपनाने के लिए सराहा भी। प्रशंसा और निन्दा के इस शोरगुल में दोनों प्रकार के लोग यह बात भूल गये कि 1 : 20 के अंतर की बात जनसंघ ने पहली बार गाजियाबाद में नहीं कही। यह सुझाव सबसे पहले 1952 में दिल्ली में हुई केन्द्रीय कार्यसमिति द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव में दिया गया था जिसे बाद में 1954 में इन्दौर में पारित दल के घोषणा-पत्र में समाविष्ट किया गया था। 'आय की मर्यादा' में कहा गया था :

"जनसंघ समाज के विभिन्न वर्गों की आय के अंतर में कमी करने के लिए धन का समवितरण तथा सभी नागरिकों को जीवन-निर्वाह के न्यूनतम स्तर का आश्वासन देगा। वर्तमान परिस्थितियों में इस दृष्टि से अधिकतम आय 2,000 रु० प्रति मास तथा न्यूनतम आय 100 रु० प्रति मास निर्धारित कर यह प्रयत्न किया जाए कि न्यूनतम आय निरन्तर बढ़ती रहे जिससे दृश्यमान भविष्य में न्यूनतम और अधिकतम आय के अंतर का अनुपात 1 : 10 का हो जाए।"

दो वर्ष बाद 1956 में दिल्ली अधिवेशन में इस प्रश्न पर पुनः चर्चा हुई और यह स्पष्ट किया गया कि इस संदर्भ में 'आय' का अर्थ 'व्यय-योग्य आय' है। यह भी कहा गया कि यदि कोई व्यक्ति प्रामाणिक परिश्रम अथवा कार्य-कुशलता के बल पर अधिकतम से अधिक अर्जित करता है तो उस धन का उपयोग करने के बजाय 'उसे दान, कर, अनिवार्य ऋण अथवा विनियोजन के रूप में विकास कार्य में लगाना' चाहिए। बाद में सभी आम चुनावों के अवसर पर जारी घोषणा-पत्रों में व्यय-योग्य आय की अधिकतम सीमा निर्धारित करने की बात को दोहराया गया। आलोचकों ने या तो उन्हें पढ़ा नहीं और यदि सरसरी तौर पर पढ़ा भी तो उसके महत्व को हृदयंगम नहीं किया।

अपनी आधारभूत मान्यताओं पर दृढ़ और अपने मौलिक चिंतन के प्रति प्रामाणिक रहकर जनसंघ ने वक्त के तकाजों को सुना है और उनके अनुरूप अपने को ढालने का प्रयास किया है। जैसा कि दल के नाम से ही स्पष्ट है, जनसंघ जनता का संघ है और आज बहुसंख्यक जनता स्वाधीनता के 25 वर्ष के पश्चात् और चार योजनाओं के बाद भी अभाव, अज्ञान और बीमारी से

पीड़ित है। इस स्थिति में सुधार करना, हर व्यक्ति को अन्न, वस्त्र, निवास, शिक्षा तथा चिकित्सा की बुनियादी आवश्यकता की पूर्ति के लिए सक्षम बनाना, तदनुसार माल तथा सेवाओं की वृद्धि का व्यापक कार्यक्रम अपनाना, उसके लिए भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप एक विशेष प्रौद्योगिकी का विकास और अवलम्बन करना, जिससे उत्पादन के साथ उत्पादन में लगे हुए हाथ भी बढ़ सकें—ऐसे कार्य हैं जिन्हें राष्ट्रीय सुरक्षा के साथ-साथ सर्वोच्च प्राथमिकता मिलनी चाहिए। जनसंघ की स्वदेशी योजना इन्हीं उद्देश्यों, वरीयताओं तथा रणनीति पर आधारित है। सम्भवतः जनसंघ ही एकमेव प्रतिपक्ष है जिसने न केवल आर्थिक नियोजन में आमूल परिवर्तन की मांग की है, बल्कि एक वैकल्पिक योजना का खाका भी प्रस्तुत किया है। जनसंघ के आर्थिक चिन्तन से किसी का मतभेद तो हो सकता है, किन्तु कोई विचारशील व्यक्ति अब उसकी उपेक्षा करने की भूल नहीं कर सकता।

वस्तुतः यदि आज जनसंघ सत्ताधीशों तथा उनके साम्यवादी और सम्प्रदायवादी साथियों के संयुक्त प्रहारों का केन्द्र बना हुआ है तो उसका कारण यही है कि ये तत्व इस तथ्य को अधिकाधिक समझने लगे हैं कि जनसंघ न तो किसी अन्य दल में से निकला हुआ असंतुष्ट लोगों का एक गुट है और न किसी वर्ग विशेष के स्वार्थों की रक्षा के लिए निर्मित एक 'लॉबी' है, बल्कि एक प्रभावी विकल्प है, जो राष्ट्रवाद, लोकतंत्र तथा सामाजिक न्याय की त्रिवेणी में भारतीय जनता को अवगाहन करने के लिए प्रेरित व संगठित कर सकता है।

मुझे खुशी है कि जनसंघ के सिद्धांतों, नीतियों और कार्यक्रमों सम्बन्धी दस्तावेजों को, विषयानुसार संकलित करके, प्रकाशित किया जा रहा है। निस्संदेह यह दस्तावेज उन सबके लिए बहुत लाभदायक होंगे जिनकी भारत के सार्वजनिक जीवन में रुचि है।

मकर सक्रांति **—अटल बिहारी वाजपेयी**
14 जनवरी, 1973

प्राक्कथन

भारतीय जनसंघ की स्थापना 21 अक्तूबर, 1951 को हुई। तब से जनसंघ ने प्रायः सभी ग्राम और मध्यावधि चुनावों में भाग लिया है। विभिन्न विधायिकाओं में तथा उनके बाहर भी, उसके प्रतिनिधियों को अपने दल के दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने का अवसर मिला। इसके प्रस्तावों, संकल्पों और घोषणा-पत्रों के प्रति स्वभावतः जनता का व्यापक रूप से ध्यान गया और उन पर बहुधा सार्वजनिक रूप से चर्चा भी हुई। अतः यह इच्छा बढ़ना भी स्वाभाविक है कि दल के विचारों की जानकारी प्राप्त हो और उसके मत को समझा जाए। यह आवश्यकता अनुभव की जाती रही है कि दल के कार्यकर्ताओं को ही नहीं बल्कि राजनीतिक कार्यकर्ताओं, लेखकों, शोधकर्ताओं और भारतीय सार्वजनिक मामलों के विद्यार्थियों को भी दल के दस्तावेज उपलब्ध हों। यह संकलन इस आवश्यकता की पूर्ति करने का ही एक प्रयास है।

'सिद्धान्त और नीतियां' के अतिरिक्त इसमें, दल के अखिल भारतीय घोषणा-पत्रों, केन्द्रीय कार्यसमिति, भारतीय प्रतिनिधि सभा तथा सार्वदेशिक अधिवेशनों में पारित प्रस्तावों को ही सम्मिलित किया गया है। शोक प्रस्तावों को छोड़ दिया गया है।

जनवरी 1965 में विजयवाड़ा में जनसंघ के बारहवें सार्वदेशिक अधिवेशन में स्वीकृत दस्तावेज़ 'सिद्धान्त और नीतियां', समस्त घोषणा-पत्र और मई 1972 में भागलपुर में भारतीय प्रतिनिधि सभा द्वारा संशोधित दल के संविधान को प्रथम भाग में सम्मिलित किया गया है। द्वितीय भाग में 4 अध्यायों में संकलित आर्थिक विषयों पर प्रस्ताव हैं। वैदेशिक नीति, प्रतिरक्षा, राष्ट्रीय प्रश्न, शिक्षा आदि से सम्बन्धित शेष समस्त प्रस्तावों को आगामी भाग 3, 4 व 5 में प्रकाशित करने का आयोजन है।

विषयों का वर्गीकरण केन्द्रीय मंत्रालयों के अनुसार किया गया है। अनेक प्रस्तावों में एक से अधिक विषयों पर चर्चा है। ऐसे प्रस्तावों को विभक्त किया जा सकता था या विभिन्न विषयों के अध्यायों में से किसी एक में उन्हें जोड़ा जा सकता था। प्रस्तावों को विभक्त करने के बजाय, महत्वपूर्ण अनुच्छेदों पर उपशीर्षक देकर उनका उल्लेख अनुक्रमणिका में किया गया है, जिससे विभिन्न अध्यायों में उनका सहज-संदर्भ उपलब्ध हो सके। कुछ विषय ऐसे हैं जिनको

एक अथवा दूसरे अध्याय में उचित रूप से सम्मिलित किया जा सकता था। ऐसे विषयों को उस अध्याय में रखा गया है जिसमें उनका अपेक्षाकृत अधिक महत्व हो सकता है। अनुवाद कार्य में, शब्द के स्थान पर शब्द के बजाय, निहित भाव के सहज प्रगटीकरण को प्राथमिकता दी गई है।

प्रस्तावों को तिथि-क्रमानुसार अंकित किया गया है। प्रथम दो अंक वर्ष के हैं और बाद के दो अंक उस वर्ष की प्रस्ताव संख्या को सूचित करते हैं। उदाहरणस्वरूप 52·19 का अर्थ 1952 में पारित 19वां और 72.06 का अर्थ 1972 में पारित 6वां प्रस्ताव समझा जाना चाहिए। प्रत्येक प्रस्ताव के अन्त में तिथि, स्थान और प्रस्ताव पारित होने के प्रसंग का उल्लेख है। के०का०स०, भा०प्र०स० और सा०अ० संकेतों का अभिप्राय क्रमशः केन्द्रीय कार्यसमिति, भारतीय प्रतिनिधि सभा और सार्वदेशिक अधिवेशन से है। प्रत्येक अध्याय के आरम्भ में उसका सार दिया गया है।

आशा है, यह संकलन उन सबके लिए उपयोगी सिद्ध होगा जिनको ध्यान में रखकर यह प्रस्तुत किया गया है।

—संकलनकर्ता

विषय-अनुक्रम

पृष्ठ

प्रस्तावना ... ... (iii)
प्राक्कथन ... ... (ix)
1. आयोजन 1–39

प्रस्ताव सं०

52.19 स्वदेशी आन्दोलन 5
52.23 पहिली योजना की कमियां 5
54.04 स्वदेशी कार्यक्रम 6
56.14 दूसरी योजना—अति-केन्द्रित व अधिनायकवादी 7
56.26 दोषपूर्ण दूसरी योजना 10
57.15 दूसरी योजना को बदलो 11
58.24 तीसरी योजना की पुनर्रचना 14
60.16 तीसरी योजना का प्रारूप 16
61.05 तीसरी योजना को वास्तविकता से सम्बद्ध करो 19
61.17 तीसरी योजना के लक्ष्य और संरचना ... 21
62.20 तीसरी योजना को प्रतिरक्षापरक बनाओ ... 23
65.21 आयोजना सम्बन्धी परिकल्पना बदलो ... 25
68.09 चौथी योजना के प्रति दृष्टिकोण ... 27
69.06 चौथी योजना—एक मूल्यांकन ... 30
69.16 चौथी योजना—लक्ष्य बदलो 34
72.14 पांचवीं योजना के प्रति दृष्टिकोण 36

2. खाद्य व कृषि
सिंचाई और बिजली 41–93

प्रस्ताव सं०

52.08 अनाज की विषम समस्या; कुछ सुझाव ... 45

52.10 आय अनुपात 1 : 20 व न्यूनतम जोत-सीमा ··· 46
52.15 गोहत्या निषेध की राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की मांग का पूर्ण समर्थन ··· ··· ··· 47
53.13 कोसी बाढ़ ··· ··· ··· 48
53.19 सरकार का उपेक्षापूर्ण रवैया ··· ··· 48
54.15 खेतिहर मजदूर ··· ··· 48
54.21 उत्तर-पूर्व भारत में बाढ़ ··· ··· 49
54.22 भारत-पाक नहरी जल वार्ता ··· ··· 49
54.25 गोहत्या व गोसंवर्धन ··· ··· ··· 50
55.11 जोत-सीमा तीस एकड़ ··· ··· ··· 50
55.18 पशुधन संरक्षण विधेयक ··· ··· 51
55.24 गोसंरक्षण आन्दोलन ··· ··· ··· 52
55.28 बाढ़ पीड़ित ··· ··· ··· 53
55.30 पंजाब में बाढ़ ··· ··· ··· 53
57.11 सूखा पीड़ित ··· ··· ··· 54
57.14 लगान में कमी ··· ··· ··· 55
57.16 सहकारी खेती आर्थिक और सामाजिक विकास में बाधक ··· ··· ··· 55
59.17 खाद्यान्न जांच समिति ··· ··· ··· 56
58.08 गोहत्या-निषेध ··· ··· ··· 58
58.11 गोहत्या-निषेध पर सर्वोच्च न्यायालय ··· 59
58.20 खाद्य आन्दोलन ··· ··· ··· 59
58.25 खाद्यान्न व्यापार ··· ··· ··· 60
58.32 जोत-सीमा ··· ··· ··· 62
58.34 गोरक्षा के लिए संविधान संशोधन ··· ··· 63
59.01 कृषि-गठन ··· ··· ··· 64
59.07 भारत-पाकिस्तान नहरी पानी समझौता ··· 66
59.08 सहकारी खेती ··· ··· ··· 67
61.08 गोरक्षा के लिए संविधान संशोधन ··· ··· 68
63.20 कृषक के अधिकार और संविधान संशोधन ··· 68
65.06 धनुषकोटि में समुद्री तूफान ··· ··· 69
65.07 खाद्यान्न क्षेत्र ··· ··· ··· 70
65.08 पन्ना गोलीकाण्ड ··· ··· ··· 70
65.18 खाद्य-स्थिति ··· ··· ··· 70

65.22 खाद्य-स्थिति ··· ··· ··· 72
65.27 युद्धोत्तर खाद्य-स्थिति ··· ··· ··· 73
66.05 खाद्य-स्थिति : कुछ सुझाव ··· ··· 73
66.09 खाद्य मंत्रालय का नया कार्यक्रम ··· ··· 75
66.20 सर्वदलीय गोहत्या निरोध समिति का आन्दोलन 76
66.22 अकाल की छाया : कुछ कदम ··· ··· 77
67.05 बिहार के अभावग्रस्त क्षेत्रों के लिए अपील ··· 79
67.08 अकाल-स्थिति ··· ··· ··· 79
67.19 कोयना-भूकम्प ··· ··· ··· 81
67.24 सरकारी गोरक्षा समिति की मन्द गति ··· 81
68.10 फरक्का बांध ··· ··· ··· 82
68.15 बाढ़ और सूखा ··· ··· ··· 83
69.10 अकाल-स्थिति ··· ··· ··· 85
72.08 जोत-सीमा और समन्वित आर्थिक कार्यक्रम ··· 88
72.15 अकाल-स्थिति ··· ··· ··· 93

3. औद्योगिक विकास श्रम और रोजगार ··· ··· ··· 95–112

प्रस्ताव सं० ··· ··· ···

53.08 बेरोजगारी; कुछ सुझाव ··· ··· 99
53.12 बुनकरों को राहत ··· ··· ··· 100
54.12 हथकरघा उद्योग ··· ··· ··· 101
55.01 बेरोजगारी ··· ··· ··· 101
55.02 राष्ट्रीय श्रम-संगठन ··· ··· ··· 103
57.05 दाशमिक मुद्रा और मीटरी प्रणाली ··· ··· 104
57.10 द्वितीय वेतन आयोग ··· ··· ··· 106
58.33 औद्योगिक सम्बन्ध नीति ··· ··· 106
66.13 श्रमिक अशान्ति ··· ··· ··· 108
69.09 श्रमिक अशान्ति ··· ··· ··· 110
72.16 तृतीय वेतन आयोग के प्रतिवेदन में विलम्ब ··· 112

4. वित्त ··· ··· ··· ··· 113–196

प्रस्ताव सं०

52.02 आर्थिक योजना के लिए उपसमिति ··· ··· 117
52.20 बिक्री-कर विरोधी आन्दोलन ··· ··· 117
54.09 कुम्भ यात्री-कर ··· ··· ··· 118
55.12 बिक्री-कर ··· ··· ··· 118
55.15 राजस्थान में बिक्री-कर आन्दोलन ··· ··· 119
56.09 बिक्री-कर प्रतिगामी है ··· ··· 119
57.09 योजना के लिए भारी कर अपघात है ··· 120
58.03 आर्थिक स्थिति; कुछ सुझाव ··· ··· 122
59.04 1959-60 के बजट प्रस्ताव ··· ··· 125
60.02 आर्थिक स्थिति : कुछ सुझाव ··· ··· 125
61.04 आर्थिक नीति के बारे में वक्तव्य ··· ··· 128
61.13 मूल्य-चक्र ··· ··· ··· 132
62.02 1962-63 के केन्द्रीय और प्रान्तीय बजट प्रस्ताव 133
62.09 नये करों के विरुद्ध आन्दोलन ··· ··· 134
63.03 1963-64 के मुद्रास्फीतिक बजट प्रस्ताव ··· 135
63.16 चीनी आक्रमण के बाद आर्थिक नीतियों पर पुनर्विचार ··· ··· ··· 136
63.21 चीनी आक्रमण के बाद आर्थिक स्थिति ··· 138
63.28 गुजरात में गैस के मूल्य ··· ··· 140
64.07 भारी मूल्य-वृद्धि ··· ··· ··· 141
64.12 मुद्रास्फीति—कारण और उपचार ··· 143
65.03 आर्थिक नीति : कुछ सुझाव ··· ··· 145
66.08 पाकिस्तान से युद्ध के बाद आर्थिक स्थिति ··· 148
66.14 अवमूल्यन—कुछ सुझाव ··· ··· 151
67.14 स्थायी वित्त आयोग ··· ··· 153
67.16 तीन योजनाओं के बाद आर्थिक स्थिति ··· 155
67.21 अवरुद्ध अर्थव्यवस्था ··· ··· 157
68.05 आर्थिक नीतियों पर पुनर्विचार ··· ··· 159
68.06 बैंकिंग अधिनियम (संशोधन) विधेयक, 1968 162
69.15 बैंक राष्ट्रीयकरण ··· ··· ··· 164
69.18 आर्थिक स्थिति ··· ··· ··· 166
70.02 1970-71 का जन-विरोधी तथा विकास-विरोधी

बजट ··· ··· ··· 170
70.06 अविलम्बनीय आर्थिक कार्यक्रम ··· ··· 173
70.08 आर्थिक स्थिति ··· ··· ··· 178
71.04 1971-72 के 'गरीबी बढ़ाओ' बजट प्रस्ताव ··· 180
71.07 लोकसभा के मध्यावधि चुनाव के बाद आर्थिक स्थिति ··· ··· ··· 184
71.09 सम्पत्ति सीमा और आर्थिक नीति सम्बन्धी वक्तव्य 187
72.06 1972-73 का किसान विरोधी बजट ··· 192
72.17 मूल्यों में असह्य वृद्धि ··· ··· 194
परिशिष्ट-क भारतीय जनसंघ के सार्वदेशिक अधिवेशनों की तिथि-क्रमानुसार सूची ··· ··· 197
परिशिष्ट-ख आर्थिक विषयों पर प्रस्तावों की तिथि-क्रमानुसार सूची ··· ··· 198–203
अनुक्रमणिका ··· ··· ··· 204–212

अध्याय 1

आयोजन

भारतीय जनसंघ ऐसी आयोजना पर विश्वास करता है जिसका लक्ष्य 10 प्रतिशत वार्षिक दर से बढ़ने वाले विकेन्द्रीकृत और आत्मनिर्भर अर्थतन्त्र का विकास करना हो (घोषणा-पत्र—1971)। दल ने 'आत्मनिर्भर' और 'आत्मभरित' में सैद्धान्तिक अन्तर माना है। पहले का अर्थ जहां अपने ही साधनों पर निर्भर होना है वहां दूसरे का अर्थ अपने उत्पादन पर निर्भरता है। इस प्रकार दल आयात का निषेध नहीं करता परन्तु उसका मत है कि इसका भुगतान सामान्य व्यापारिक नियमों के अनुसार होना चाहिए। दल के लिए आत्मनिर्भरता कोरे आदर्शवाद या नैतिकता का प्रश्न नहीं है।

विदेशी सहायता में विदेशी प्रभाव का जो ख़तरा छिपा है (घोषणा-पत्र—1957 और प्रस्ताव संख्या 52.10 तथा 54.04), इसके अतिरिक्त दल को यह भी विश्वास है कि विकास-दर को केवल स्वदेशी योजना द्वारा बढ़ाया जा सकता है। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए उसे आयात और निर्यात नीति के पुनर्गठन, स्वदेशी भावना के पुनर्जागरन, असाधारण उपभोग पर किये जाने वाले व्यय पर रोक, सरकार के गैर-आयोजना व्यय में कटौती और विदेशी कम्पनियों पर नियमन का सुझाव दिया है। दल निरन्तर आग्रह करता आ रहा है कि (बड़ी योजनाओं के बजाय) छोटी सिंचाई योजनाओं, लघु उद्योग, प्रतिरक्षा उद्योगों की सन्तुलित प्रस्थापना और फैलाव तथा विशाल ग्रामीण निर्माण कार्यक्रमों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

जनसंघ के आर्थिक चिन्तन का मूलाधार विकेन्द्रीकरण है जो भारतीय प्रतिभा के अनुरूप है। शहरी और ग्रामीण तथा प्रतिरक्षा और नागरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आयोजना के व्यापक और विवरणमूलक पहलुओं (Macro and Micro aspects) के दल के सर्वांगीण विकास के सिद्धान्त पर भी यही बात लागू होती है।

जनसंघ के विचार से आयोजना के लक्ष्य यह होने चाहिए :

(1) पूर्ण रोज़गार,
(2) मूल्यों की स्थिरता,
(3) रहन-सहन के न्यूनतम स्तर की गारंटी,
(4) आय और सम्पत्ति के वितरण में विषमता को कम करना,
(5) सन्तुलित क्षेत्रीय विकास, और
(6) परमाणु आयुधों सहित पर्याप्त प्रतिरक्षा तैयारी।

दल ने 1952, 1954, 1956 और 1957 में सामयिक चेतावनी देकर 1957 के विदेशी मुद्रासंकट और 1966-67 के खाद्यान्न संकट तथा 1969-72 की औद्योगिक मन्दी (प्रस्ताव 65.21, 68.09 और 69.06) के प्रति देश को आगाह किया। उसने दूसरी योजना में खाद्य-उत्पादन की उपेक्षा की ओर (प्रस्ताव 56.14), भारतीय कृषि में अमेरिकी ढंग की खेती के समावेश की अनुपयुक्तता (प्रस्ताव 52.23) और भूमि सुधार की धीमी गति (प्रस्ताव 56.14) की ओर भी संकेत किया। तीसरी योजना में खाद्यान्न के मामले में आत्मनिर्भरता का जो दावा किया गया था उसका अन्त क्या होने वाला है, दल में इसका

भी सही पूर्वांकलन प्रस्तुत किया (प्रस्ताव 60.16)।

संक्षेप में, श्रायोजना के प्रति जनसंघ के दृष्टिकोण के सर्वाधिक उल्लेखनीय पहलू तीन हैं :

(i) लक्ष्यों और उनकी क्रियान्विति के बारे में पूर्ण स्पष्टता;

(ii) श्रावश्यक प्राथमिकताओं की गहरी समझ; और

(iii) स्वदेशी, विकेन्द्रीकरण और सर्वांगीण विकास पर श्राधारित तथा समय की श्रावश्यकता एवं देश की प्रतिभा को ध्यान में रखते हुए सुविचारित विकास नीति का उद्विकास।

52.19. स्वदेशी श्रान्दोलन

यह खेद का विषय है कि स्वराज्य प्राप्ति के पश्चात देश की दृष्टि स्वदेशी श्रान्दोलन की श्रोर से हट गई है श्रौर विदेशी कपड़ों, प्रसाधन सामग्री तथा ऐसी श्रन्य वस्तुश्रों का उपयोग बढ़ता जा रहा हैं। इस श्रस्वास्थ्यकर प्रवृत्ति को रोकने के लिए शासन की श्रोर से भी कोई उपक्रम नहीं हुश्रा। उल्टे श्रनावश्यक विदेशी वस्तुश्रों के श्रायात में निर्बाध वृद्धि होती रही है। श्रतः यह श्रधिवेशन भारतीय प्रतिनिधि सभा श्रौर केन्द्रीय कार्यसमिति को श्रादेश देता है कि देश की श्रार्थिक स्वस्थता के लिए स्वदेशी व्यवहार की श्रोर जनता का ध्यान फिर से श्राकृष्ट कराया जाए श्रौर रचनात्मक कार्यक्रम में इसे एक मुख्य स्थान दिया जाए।

[31 दिसम्बर, 1952; कानपुर, पहिला सा०अ०]

52.23. पहिली योजना की कमियां

योजना श्रायोग द्वारा संसद के समक्ष उपस्थित की गई पंचवर्षीय योजना के विषय में जनसंघ का यह मत है कि :–

(1) **बेरोजगारी**—इस योजना में निर्माताश्रों के घोषित श्रादर्शों एवं सिद्धान्तों के प्रतिकूल बेरोज़गारी दूर करने श्रौर जीवन-स्तर उन्नत करने की श्रोर जैसा चाहिए वैसा ध्यान नहीं दिया गया।

(2) **कृषिक्षेत्र में बढ़ती विदेशी निर्भरता**—भारत कृषि-प्रधान देश है श्रौर श्राज भारत की सबसे बड़ी समस्या यह है कि श्रन्न, कपास श्रौर पटसन की उपज बढ़ाई जाए, किन्तु ऐसे साधनों द्वारा जिनके लिए हम विदेशों पर निर्भर न हों। यह योजना श्रमरीकी कृषि पद्धति पर श्राधारित है श्रौर उपज के साधनों के लिए विदेशों से लभ्य ट्रैक्टर तथा पैट्रोल श्रादि इसके श्रनिवार्य श्रंग हैं। फलतः देश श्रन्न, वस्त्रादि तक के लिए श्रमरीका श्रौर ब्रिटेन की नीति द्वारा प्रभावित रहेगा, जो देश की श्रार्थिक स्वतंत्रता के लिए पोषक नहीं हो सकता। वस्तुतः श्राधारभूत वस्तुश्रों के उत्पादन के लिए स्वदेशी उपकरण ही विकास का श्राधार रहे हैं श्रौर रहेंगे। इस मौलिक तत्व का तिरस्कार कर योजना के निर्माताश्रों ने भयंकर भूल की है।

(3) **कृषि-पूर्ति**—गांव में बसने वाले भारतीय जन के जीवन-स्तर

को ऊपर उठाना तभी संभव होगा जब कृषि के साथ-साथ घरेलू उद्योगों का भी गांव में विकास हो जिससे ग्रामीण मजदूरों की बेरोजगारी दूर हो और किसानों को खाली समय के लिए कुछ लाभकारी काम मिल जाएं। 2,000 करोड़ की योजना में इस काम के लिए केवल 15 करोड़ का व्यय, 5 लाख गांवों में उद्योगों की स्थापना के लिए उपहासास्पद है, और स्पष्ट घोषित कर रहा है कि यह योजना किसान, मजदूर और गरीबों के लिए नहीं बनाई गई है।

(4) **प्रतिरक्षा**—रक्षा सम्बन्धी और आधारभूत बड़े उद्योगों के विकास की ओर भी इस योजना में ध्यान नहीं दिया गया।

(5) **नियंत्रण**—इस योजना की आधारभूत कल्पनाओं में से प्रधान कल्पना यह है कि देश के आर्थिक जीवन के सभी अंगों पर शासन का नियंत्रण रहेगा। जिस शासन में ऊपर से लगाकर नीचे तक अयोग्यता, भ्रष्टाचार और अप्रामाणिकता ओतप्रोत हो, उसके हाथ में नियंत्रण होना समाज के लिए यंत्रणा हो जाता है और बिना समाज की सहायता के ऐसी कोई योजना लेशमात्र भी सफल नहीं हो सकती। हमारी आज की परिस्थिति में नियंत्रण जितने कम हों उतना ही समाज और शासन दोनों के लिए हितकर है।

(6) **साक्षरता प्रचार**—साक्षरता प्रसार को, जिसके बिना लोकतंत्र और वयस्क मताधिकार निरर्थक रहते हैं, इस योजना में एक बारगी भुला दिया गया है।

(7) **आयुर्वेद तथा देशी चिकित्सा पद्धति**—इसी प्रकार जनस्वास्थ्य की भी उपेक्षा की गई है; विशेषकर अपनी स्वदेशी चिकित्सा पद्धति को और आयुर्वेद के वैज्ञानिक विकास के काम को सर्वथा भुला दिया गया है।

(8) **जनसहयोग जगाने में असमर्थ**—भारत सेवक समाज का संगठन भी कांग्रेस के खोए हुए जनसम्पर्क के पुनरुत्थान के लिए नियुक्त एक विभाग के रूप में हो रहा है और उसका रूप एक निष्पक्ष राष्ट्रीय संस्था का नहीं रह गया है जिसका परिणाम यह होगा कि जनता का यथायोग्य सहयोग इस कार्य में प्राप्त नहीं हो सकेगा।

[31 दिसम्बर, 1952; कानपुर, पहिला सा०अ०]

54.04. स्वदेशी कार्यक्रम

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात देश में स्वदेशी के प्रति उत्तरोत्तर अनुराग दृढ़ होने के स्थान पर, विदेशी वस्तुओं के बढ़ते हुए व्यवहार पर भारतीय जनसंघ का यह अधिवेशन चिन्ता प्रकट करता है। स्वदेशी आन्दोलन का सूत्रपात

स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में हुआ था पर उसका आधार भावात्मक न होकर मुख्यतः अंग्रेजों के विरोध पर आश्रित होने के कारण, उनके भारत छोड़ने के पश्चात् 'स्वदेशी प्रेम' हमारे राष्ट्र के चिरस्थायी गुण के रूप में स्थिर न रह सका और फलस्वरूप स्वदेशी वस्तुओं के प्रति आज सर्वसाधारण में उदासीनता के भाव दिखाई देते हैं।

देशी वस्तुओं के लिए अनुराग—इस खेदजनक स्थिति के लिए वर्तमान सरकार की अर्थ तथा वाणिज्य नीति भी दोषी है। विदेशी वस्तुओं से पटे हुए भारतीय बाजार न केवल हमारी आर्थिक पराधीनता के द्योतक हैं वरन् वर्तमान सरकार की आर्थिक नीति की असफलता के भी परिचायक हैं। भारतीय जनसंघ की दृष्टि में भारत के आर्थिक पुनर्निर्माण का तथा आर्थिक स्वावलम्बन का प्रथम सोपान स्वदेशी वस्तुओं का उपयोग ही है।

अतः भारतीय जनसंघ मांग करता है :—

(1) (क) हमारे विदेशी आयात-निर्यात व्यापार का नियमन स्वदेशी के विकास की दृष्टि से किया जाए।

(ख) भारत सरकार अपने व उद्योगों के तथा उपभोक्ताओं के प्रतिनिधियों की एक समिति नियुक्त करे और देश में उत्पादित होने वाली वस्तुओं की जांच कराये तथा उन वस्तुओं के आयात पर रोक लगाए जो स्तर और गुण में इनके समान हों।

(ग) भारत सरकार तथा समस्त प्रादेशिक सरकारें नियमित रूप से अपने सम्पूर्ण कार्य में स्वदेशी वस्तुओं का ही अधिकाधिक प्रयोग करें।

(2) भारतीय जनसंघ उत्पादकों एवं व्यवसायियों से अपील करता है कि वे अपने माल के ऊंचे स्तर निर्धारित करें जिससे वह विदेशी माल से टक्कर ले सके।

(3) भारतीय जनसंघ सर्वसाधारण से भी अनुरोध करता है कि अपने दैनिक व्यवहार में स्वदेशी वस्तुओं का ही उपयोग करें।

[25 जनवरी, 1954; बम्बई, दूसरा सा०अ०]

56.14. दूसरी योजना—अति-केन्द्रित व अधिनायकवादी

कार्यसमिति ने द्वितीय पंचवर्षीय योजना पर बड़ी बारीकी से विचार किया है। उसे खेद है कि पहली पंचवर्षीय योजना की ही तरह इस योजना की रचना और इसकी क्रियान्विति में विभिन्न राजनीतिक दलों का सहयोग प्राप्त करने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया है। योजना के इस एकपक्षीय स्वरूप के अलावा उसकी निम्नलिखित बातें गंभीर आलोचना के विषय हैं—

(1) **मनमाने लक्ष्य**—प्रथम पंचवर्षीय योजना के लक्ष्यों की ही तरह उपलब्ध साधनों का ध्यान रखे बिना द्वितीय योजना के लक्ष्य भी मनमाने ढंग से निश्चित किये गये हैं । परिणामस्वरूप योजना वास्तविक न होकर शास्त्रीय ही अधिक प्रतीत होती है ।

(2) **मुद्रास्फीतिक व विदेशी आश्रित**—योजना में साधनों की जो स्थिति बतायी गई है वह संतोषजनक नहीं । इसके अलावा 450 करोड़ रु० के नये कर लगाने, 1200 करोड़ रु० की घाटे की व्यवस्था का बजट बनाकर और 800 करोड़ रु० विदेशी सहायता से जुटाने की बात कही गई है; इसके उपरान्त भी 400 करोड़ रु० की कमी रहती है । समूचा अनुमान लक्ष्य से बहुत दूर है । पहले से ही बोझ से दबे नागरिकों पर करों का और बोझ डालने से सार्वजनिक विरोध बढ़ेगा जैसा कि उत्तर प्रदेश आदि में स्पष्ट है । 1200 करोड़ रु० के घाटे की वित्त व्यवस्था के कारण उपभोक्ता वस्तुओं को पाने के लिए भारी मात्रा में मुद्रा की दौड़ होगी; कीमतें बढ़ेंगी और अन्य अनेक बातों के अलावा सार्वजनिक निर्माण का खर्च बढ़ जाएगा जिससे समूची योजना अस्तव्यस्त हो जाएगी । फिर विदेशी मदद पर अधिक भरोसा नहीं किया जा सकता। हमारी वर्तमान विदेश नीति के संदर्भ में देखने पर तो प्रचुर मात्रा में विदेशी मदद की आशा नहीं की जा सकती । साधनों के बारे में लगाए गए समूचे अनुमान द्वितीय पंचवर्षीय योजना के दुर्बल आधार को ही उजागर करते हैं ।

(3) **सार्वजनिक क्षेत्र का बाहुल्य**—सरकारी क्षेत्र का प्रस्तावित विस्तार और द्वितीय पंचवर्षीय योजना में भी तुलनात्मक दृष्टि से उस पर अधिक जोर दिया जाना हमारे लोकतंत्री संविधान के प्रतिकूल और हमारी प्रशासनिक सेवाओं की क्षमता के बाहर की बात है ।

(4) **क्षेत्रों का अस्पष्ट निर्धारण**—छोटे और बड़े उद्योगों के क्षेत्रों के बीच विशद एवं स्पष्ट विभाजन रेखा नहीं खींची गई । कुटीर और लघु उद्योगों पर जोर दिया जाना स्वागत-योग्य है । लेकिन उन्हें देश की औद्योगिक नीतियों का आधार बनाने या उन्हें अपने पैरों पर खड़े होने के समर्थ बनाने की कोई योजना तैयार करने का प्रयत्न नहीं हुआ ।

(5) **सबके लिए रोजगार की गारण्टी नहीं**—बेरोजगारी को समाप्त करने की न तो कोई निश्चित योजना है और न इसी बात की कोई गारण्टी है कि देश के प्रत्येक समर्थ नागरिक को रोजगार मिलेगा ।

(6) **भूमि-सुधार की धीमी गति**—भूमि-सुधार की योजना का सिद्धान्त रूप से तो स्वागत किया है किन्तु प्रथम पंचवर्षीय योजना के दौरान उसकी प्रगति बहुत धीमी रही । भूमि-सुधारों से प्रभावित होने वालों के पुनर्वास की समस्या की ओर भी कोई ध्यान नहीं दिया गया । भूमि-सुधारों का हमारे

ग्रामीण जीवन से घनिष्ठ संबंध है । अतः यह आवश्यक है कि उन्हें व्यावहारिक रूप देते समय उनके व्यापक प्रभावों का ध्यान रखा जाए ।

(7) **खाद्यान्न पैदावार**—खाद्यान्नों की पैदावार बढ़ाने की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया । कुछ दिन पूर्व अचानक एलान किया गया कि कृषि उत्पादन बढ़ाने का लक्ष्य द्वितीय योजना के मसौदे में निर्धारित 18 प्रतिशत से बढ़ाकर 40 प्रतिशत कर दिया गया है । योजना की आलोचना के जवाब में ऐसा किया गया । लेकिन, लक्ष्य में इस 22 प्रतिशत की वृद्धि को प्राप्त करने के लिए खाद्य और कृषि मंत्रालय के योजना-व्यय में एक पैसे की भी वृद्धि नहीं की गई । इससे पता चलता है कि योजना किस मनमाने ढंग से तैयार की गई है ।

(8) **परिवहन**—परिवहन के विकास के लिए, जिसे बढ़े हुए औद्योगिक उत्पादन का बोझ उठाना है, पर्याप्त धन की व्यवस्था नहीं की गई ।

(9) **अधिनायकवादी प्रवृत्ति**—योजना के प्रति हमारा सबसे बड़ा विरोध यह है कि उसकी प्रवृत्ति अधिनायकवादी है । जीवन बीमा का राष्ट्रीकरण, सीमेंट की बिक्री और वितरण पर नियंत्रण और वाणिज्य मंत्री की यह धमकी कि राज्य व्यापार निगम की गतिविधियों को और बढ़ाया जाएगा—ये सब इस बात के प्रमाण हैं कि सरकार सभी महत्वपूर्ण आर्थिक गतिविधियों पर अपना एकाधिकार जमाना चाहती है । सच तो यह है कि सरकार सीमेंट और इस्पात की तरह साधुओं और सामाजिक कार्यकर्ताओं को भी अपने डैनों के नीचे रख लेना चाहती है । यह प्रवृत्ति लोकतंत्री आधार पर हमारे देश के स्वस्थ विकास के लिए सबसे बड़ा खतरा है ।

(10) **स्वावलम्बी कुटीर उद्योग**—भारतीय जनसंघ का यह निश्चित मत है कि भारत की किसी भी योजना में अति केन्द्रीकरण और अधिनायकवाद के खतरों से बचा जाना चाहिए; लेकिन ये खतरे वर्तमान योजना में निहित हैं । लोकतंत्र और सत्ता के विकेन्द्रीकरण का जनसंघ समर्थक है जिससे जनता के अधिक से अधिक लोग देश के आर्थिक और राजनीतिक विकास में भागीदार बन सकें । इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए जनसंघ कुटीर उद्योग को देश की औद्योगिक नीति का आधार बनाने के पक्ष में है । वह एक समन्वित औद्योगिक योजना के पक्ष में है जिसके अन्तर्गत कुटीर उद्योग को सदा के लिए सरकारी भिक्षा पर नहीं छोड़ा जाएगा, बल्कि उसे बड़े उद्योगों के साथ विनाशकारी होड़ में फंसने के भय से मुक्त करके, अपने पैरों पर खड़े होने के योग्य बनाया जाएगा ।

(11) **पूर्ण रोजगार**—ऐसा दृष्टिकोण अपनाकर ही देश में बढ़ती बेरोजगारी को दूर किया जा सकता है । जनसंघ किसी भी आर्थिक योजना की

सबसे बड़ी कसौटी यह मानता है कि उसमें प्रत्येक स्वस्थ व्यक्ति के लिए रोजगार की व्यवस्था हो। रोजगार की व्यवस्था किये बिना रहन-सहन के स्तर में सुधार करने का लक्ष्य योजना पूरा नहीं कर सकती।

(12) **मूल्य स्थिरीकरण**—वस्तुतः कीमतें बढ़ने से रहन-सहन का स्तर और गिरने का खतरा है। जब तक आवश्यक उपभोक्ता वस्तुओं के चढ़ते मूल्यों को रोकने के लिए प्रभावशाली कदम नहीं उठाये जाते और करों के बोझ से पहले से ही दबी जनता के बोझ को हलका नहीं किया जाता, तब तक योजना के पूरा होने पर भी रहन-सहन के स्तर में सुधार की सब आशाएं मृग-मरीचिका ही सिद्ध होंगी।

(13) **मानव का नैतिक एवं सांस्कृतिक आयोजन**—किसी भी योजना की सफलता की सर्वोपरि एवं अनिवार्य शर्त यह है कि जिस व्यक्ति को उसके अनुसार काम करना है वह कैसा है। लेकिन, पहली योजना की ही भांति इस दूसरी योजना में भी व्यक्ति के नैतिक एवं सांस्कृतिक सुधार तथा कल्याण के लिए योजना बनाने के सबसे महत्वपूर्ण पहलू का सर्वथा अभाव है।

[21 जुलाई, 1956; दिल्ली, के०का०स०]

56.26. दोषपूर्ण दूसरी योजना

भारतीय जनसंघ देश की बिगड़ती आर्थिक स्थिति पर गहरी चिन्ता प्रकट करता है और महसूस करता है कि इस मोर्चे की प्रमुख समस्याओं पर संतोषप्रद ढंग से कभी विचार नहीं किया गया।

बढ़ती बेरोजगारी—इसका एक उदाहरण बेरोजगारी की समस्या हल करने में सरकार की विफलता है। यह समस्या काफी गंभीर है और इसे इस आशा से छोड़ा नहीं जा सकता कि कालान्तर में सब कुछ ठीक हो जाएगा। सबसे बड़ी बात तो यह है कि आज स्थिति जैसी है उसमें इस आशा के लिए कोई गुंजाइश नहीं। योजना आयोग ने अनुमान लगाया कि दूसरी योजना के आरम्भ में बेरोजगारों की संख्या एक करोड़ थी, लेकिन ऐसा जान पड़ता है कि समस्या को घटाकर आंका गया है। यदि यह स्वीकार कर लिया जाए कि बेरोजगारों की संख्या में प्रति वर्ष बीस लाख की वृद्धि होगी तो पांच साल बाद बेरोजगारों की संख्या दो करोड़ होगी। दूसरी पंचवर्षीय योजना के सब महत्वाकांक्षी लक्ष्य यदि पूरे हो भी जाएं तो भी सिर्फ 80 लाख नये व्यक्तियों को ही रोजगार मिल सकेगा। इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि दूसरी योजना की समाप्ति पर बेरोजगारों की संख्या योजना के आरम्भ से अधिक होगी। और यह समस्या को हल करने का तरीका नहीं है।

मुद्रास्फीति—इतने पर ही बस नहीं। हालांकि सरकार को पहले ही चेतावनी दी जा चुकी है और जवाब में सरकार की ओर से कुछ आश्वासन भी दिए गए, तथापि योजना में मुद्रास्फीति का खतरा निहित है और वह अपने दांत दिखाने भी लगी है। दैनिक आवश्यकता की वस्तुओं की कीमतें फिर बढ़ने लगी हैं जबकि तत्काल आवश्यकता इस बात की है कि पहले से ही परेशान मध्यमवर्गीय और गरीब जनों को राहत देने के लिए कीमतों को घटाया जाए। मूल्य वृद्धि के खतरे को टालने के लिए तत्काल कदम उठाना आवश्यक है।

योजना के लिए साधन जुटाने के नाम पर नये करों की बाढ़-सी आरही है। नये साधन जुटाने की आवश्यकता से इनकार नहीं किया जा सकता। लेकिन सत्ता में बैठे लोग विभिन्न प्रकार से धन को जिस तरह बर्बाद कर रहे हैं उससे यह विश्वास नहीं होता कि जो कहा जा रहा है वह किया भी जाएगा। फिर कर इस तरह लगाये जाने चाहिएं कि जिन लोगों पर पहले से ही इतना दबाव पड़ रहा है कि उनकी अपनी आवश्यकताएं पूरी नहीं होतीं, उनका विशेष खयाल रखा जाए।

न निठने पर ही राष्ट्रीयकरण—जनसंघ का मत है कि राष्ट्रीयकरण कोई ऐसी संजीवनी नहीं कि उससे अर्थतंत्र को लगे सब रोग दूर किये जा सकें। राष्ट्रीयकरण से जनता में विश्वास जगाने और आशा बंधाने के लिए सबसे पहली और बड़ी आवश्यकता यह है कि कुशलता बढ़ायी जाए, तेजी से काम किया जाए, भ्रष्टाचार खत्म किया जाए और ईमानदारी एवं सचाई से मेहनत करने की भावना को बढ़ावा दिया जाए। यह दुर्भाग्यपूर्ण होते हुए भी सच है कि राष्ट्रीयकरण से कुशलता घटी और भ्रष्टाचार में वृद्धि हुई है। बीमे के क्षेत्र में यही अनुभव हुआ है। अब बैंकों के राष्ट्रीयकरण की संभावना भी नजर आ रही है। समय आगया है कि सरकारी क्षेत्र को बढ़ावा तभी दिया जाए, जब आवश्यक हो और जहां जरूरी हो; उससे पहले नहीं।

[30 दिसम्बर 1956; दिल्ली, पांचवां सा०अ०]

57.15. दूसरी योजना को बदलो

आज देश एक विषम आर्थिक स्थिति में है। प्रथम पंचवर्षीय योजना की परिसमाप्ति और दूसरी पंचवर्षीय योजना के एक वर्ष बीत जाने पर भी साधारण जन के लिए अन्न-वस्त्र, निवास, शिक्षा तथा चिकित्सा जैसी प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति तो दूर, वे दिन-पर-दिन दुर्लभ तथा महंगी होती जा रहीं हैं। पिछले कुछ मासों में जीवनोपयोगी वस्तुओं के सूचकांक में द्रुतगति से वृद्धि हुई है। खाद्यान्न के सूचकांक जो 1955-56 में 313·2 और 1956-57 में

388·5 थे जून 1957 में 438·1 हो गए।

विदेशी मुद्रा—दूसरी ओर विदेशी मुद्रा (Forign Exchange) का भी संकट पैदा हो गया है। आयात-निर्यात व्यापार पिछले कई वर्षों से प्रतिकूल है। विदेशों से जिस मात्रा में सहायता का अनुमान था उससे बहुत कम प्राप्त हुई है। विदेशों को जाने वाले विभिन्न शिष्टमण्डलों, और दूतावासों आदि पर विदेशी मुद्रा का अनावश्यक रूप से व्यय हुआ है। परिणामस्वरूप हमारा पौण्ड पावना बहुत तेजी से घट रहा है और वह आज मुद्रा के लिए आवश्यक आरक्षित निधि के लिए भी अपर्याप्त हो गया है। इसका परिणाम भारतीय रुपये की साख पर पड़ना स्वाभाविक है।

विभिन्न विकास योजनाओं के लिए भी—जिन्हें हाथ में ले लिया गया है—आवश्यक इस्पात, सीमेंट, मशीनें तथा प्रशिक्षित कर्मचारियों की भारी कमी अनुभव हो रही है। यातायात के साधन भी अपर्याप्त हैं। विदेशों से जिस भारी पैमाने पर और एक साथ माल मंगाया गया उसके अनुसार बन्दरगाहों पर जहाजों से माल उतारने और उसे गोदियों में रखने का प्रबन्ध भी नहीं हो पाया।

शासन-यंत्र और उसके खर्चे में भी पिछले वर्षों में इतनी तथा अनावश्यक रूप से वृद्धि हुई है कि प्रतिवर्ष नये और बढ़ाए करों के उपरान्त भी राज्यों के राजस्व बजट घाटे के रहे हैं।

उपर्युक्त सभी कारणों से देश में आर्थिक अस्थिरता तथा अशान्ति उत्पन्न हो गई है। शासन ने परिस्थिति पर काबू पाने के लिए, अपनी अर्थनीति और नियोजन में मौलिक परिवर्तन करने की अपेक्षा कुछ तात्कालिक उपाय अपनाये हैं जो न तो सुविचारित हैं और न सुसंगत। संकट का सामना करने के लिए तो यह अप्रभावी हैं ही, किन्तु इनसे शासन के हाथों में राजनीतिक तथा आर्थिक शक्ति का अधिकाधिक केन्द्रीकरण होता जा रहा है।

घाटे की वित्तव्यवस्था—एक ओर जहां कमर-तोड़ कर (taxes) जनता के लिए दुर्वह हो गए हैं वहां दूसरी ओर अधिक घाटे की अर्थव्यवस्था से रुपये की क्रयशक्ति गिरती ही जा रही है। इस सबका परिणाम यह हुआ है कि मजदूरों तथा सरकारी कर्मचारियों की वास्तविक आय घटी है और उनका रहन-सहन का स्तर गिर रहा है। स्वाभाविक है कि इस परिस्थिति में वे अधिक वेतन और भत्तों की मांग करें। उनकी इस मांग के प्रति यदि असहानुभूतिपूर्ण रवैया रखा गया तो देश में सर्वत्र औद्योगिक अशान्ति उत्पन्न हो सकती है जो हमारी समस्त विकास योजनाओं को खटाई में डाल देगी।

बुनियादी मान्यताओं पर पुनर्विचार—प्रस्तुत परिस्थिति किसी भी दैवी या अनपेक्षित घटना का परिणाम नहीं है अपितु शासन की उन अव्यवहारिक नीतियों का परिणाम है जिनको लेकर द्वितीय पंचवर्षीय योजना बनाई

गई थी। भारतीय जनसंघ ने बहुत पहले ही इन नीतियों के प्रति विरोध प्रकट किया था और शासन को इनके भयावह परिणामों के प्रति, जो आज दीख रहे हैं, चेतावनी दी थी। आज हम पुनः मांग करते हैं कि शासन मौलिक रूप से पंचवर्षीय योजना पर पुनर्विचार करे जिससे योजना हमारे साधन-स्रोतों और शक्ति के अनुरूप हो तथा जिसकी पूर्ति के लिए विदेशी सहायता का मुखापेक्षी न रहना पड़े। इसके लिए आवश्यक होगा कि :

(i) सम्पूर्ण योजना को अधिक कालावधि तक फैलाया जाए।

(ii) ऐसे उद्योगों को जो निजी क्षेत्र के लिए छोड़े जा सकते हैं और जिन्हें आज राज्य सरकारें द्वितीय योजना के अनुसार प्रारम्भ करने वाली हैं, जैसे सूती वस्त्र, रेशम, चीनी, साबुन आदि के कारखाने सरकार न चलाए।

(iii) खाद्यान्न एवं अन्य आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन को प्राथमिकता दी जाए। इस ओर देखने का हमारा दृष्टिकोण किताबी न होकर यथार्थवादी हो।

(iv) छोटे और कुटीर उद्योगों को जिनके लिए आवश्यक पूंजी और प्रशिक्षित श्रम सहज प्राप्त किया जा सकता है, औद्योगिक विकास का आधार बनाया जाए जिससे बढ़ती हुई बेरोजगारी का निराकरण किया जा सके।

योजना में इन मौलिक परिवर्तनों के अतिरिक्त भारतीय जनसंघ यह भी अनुभव करता है कि आज के संकट का सामना करने के लिए निम्नलिखित तात्कालिक उपाय अपनाये जाएं :

(1) जीवनोपयोगी वस्तुओं के बढ़े हुए भाव नीचे लाये जाएं।

(अ) इसके लिए जमाखोरों के गल्ले को (पिछली फसल के समय प्रचलित मूल्यों में गोदाम तथा अन्य खर्चे जोड़कर) हस्तगत किया जाए। इस दृष्टि से आवश्यक वस्तु अधिनियम 1957 में संशोधन हो।

(ब) अनाज और मोटे कपड़े पर लगे बिक्री-कर तथा अन्य कर समाप्त किये जाएं।

(2) एक राष्ट्रीय वेतन बोर्ड नियुक्त किया जाए जो समय-समय पर वस्तुओं के निर्देशांक के अनुरूप औद्योगिक तथा कृषि मजदूरों और सरकारी तथा गैर-सरकारी कर्मचारियों के वेतन-क्रम निर्धारित करे।

(3) अभिनवीकरण के नाम पर छंटनी रोकी जाए।

(4) शासन का अपव्यय समाप्त करने के लिए कठोर कदम उठाए

जाएं और शेष व्यय में भी वास्तविक कटौती होनी चाहिए ।

(5) करों की चोरी को रोकने और भ्रष्टाचार का उन्मूलन करने के लिए प्रभावी कार्यवाही की जाए ।

इन मन्तव्यों की पूर्ति के लिए जहां जनमत को जागृत तथा संगठित कर शासन की वर्तमान नीतियों में आवश्यक परिवर्तन के लिए उस पर दबाव डालना आवश्यक है, वहां विकास योजनाओं की सफलता और शासन की वित्तीय स्थिति की सुदृढ़ता के लिए जनसहयोग का वातावरण भी अनिवार्य है। यह सहयोग प्रशासन शुचिता के अभाव में परिणामकारक नहीं होगा । इस दृष्टि से भारतीय जनसंघ देश के सम्मुख निम्नलिखित कार्यक्रम उपस्थित करता है :

(1) जन-सामान्य के लिए दुर्वह करों का विरोध तथा अल्प आय वाले वर्गों के वेतन और मजदूरी में वृद्धि की मांग ।

(2) भ्रष्टाचार-उन्मूलन समितियों की स्थापना ।

(3) स्वदेशी का प्रचार ।

(4) सादगी और बचत की प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन देते हुए अल्प बचत योजनाओं में सहयोग ।

[16 अगस्त 1957; बिलासपुर, भा०प्र०स०]

58.24. तीसरी योजना की पुनर्रचना

दूसरी योजना की विफलता—अब यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना के लक्ष्य पूरे होने वाले नहीं । अपनी शुरूआत के दूसरे वर्ष में ही इस योजना के कारण देश के अर्थतंत्र में तनाव और दबाव बढ़ गया है । गंभीर रुकावटें, भारी कर-भार, बजट के बढ़ते घाटे, चढ़ती कीमतें, गिरता उत्पादन और रोजगार में कमी, विदेशी मुद्रा-कोष का वैध सीमा से भी नीचे हो जाना, देश और विदेश से भारी मात्रा में कर्ज लेने की प्रवृत्ति आदि बातें द्वितीय पंचवर्षीय योजना के दौरान देश के अर्थतंत्र की विशेषताएं बन गई हैं । बराबर यह मांग की जाती रही कि योजना का स्वरूप फिर से निर्धारित किया जाए, लक्ष्यों को नये सिरे से निर्धारित किया जाए और उसकी अवधि बढ़ा दी जाए । यह दुर्भाग्यपूर्ण रहा कि सरकार ने इस दिशा में कोई कदम नहीं उठाये। उसने अब तक यहां-वहां कुछ कतर-ब्योंत तो की किन्तु समाज की आवश्यकता और क्षमताओं को देखते हुए समूची योजना को नये सिरे से गढ़ने के लिए कुछ नहीं किया ।

अब चूंकि तीसरी पंचवर्षीय योजना तैयार हो रही है, अतः यह वांछनीय है कि आयोजना के प्रति समूचे दृष्टिकोण पर पुनर्विचार किया जाए । जनसंघ

ने सदैव इस बात पर जोर दिया है कि योजना की कल्पना दलगत पक्षपात के आधार पर नहीं की जानी चाहिए। जरूरी है कि न केवल योजना की क्रियान्विति में ही बल्कि उसकी रचना में भी सब बड़े राजनीतिक दलों और आर्थिक हितों का सहयोग प्राप्त किया जाए। हमें यह जानकर पीड़ा होती है कि अब तक जो दो योजनाएं सामने आईं वे राष्ट्रीय योजनाएं न होकर सिर्फ कांग्रेस के चुनाव घोषणा-पत्र ही रहीं । अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के पिछले महासचिव, श्रीयुत श्रीमन्नारायण और श्री त्रिभुवन नारायण सिंह के योजना आयोग में शामिल किये जाने और जब कांग्रेस कार्यसमिति तीसरी योजना की रूपरेखा एवं उद्देश्यों पर विचार कर रही थी, तब उसकी बैठक में योजना आयोग के उपाध्यक्ष समेत उसके सदस्यों की उपस्थिति से यही प्रमाणित होता है कि आयोजन उत्तरोत्तर पार्टी का एक तमाशा बनता जा रहा है ।

समाजवादी अर्थव्यवस्था की लोकतांत्रिक आदर्शों से विसंगति—भारतीय जनसंघ शुरू से यह अनुभव करता रहा है कि आर्थिक आयोजन पर देश की सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक लक्ष्यों की पृष्ठभूमि में विचार होना चाहिए। ऐसा समाजवादी अर्थतंत्र जिसमें सत्ता अधिक से अधिक एवं अनिवार्य रूप से सरकार के हाथों में केंद्रित होती जाती है लोकतंत्री आदर्शों के अनुरूप नहीं। आयोजन का उद्देश्य ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न करना होना चाहिए जिनमें अधिक से अधिक लोगों को लाभप्रद आर्थिक गतिविधियों में जुटने और पहल करने की सुविधा मिले और साथ ही सत्ता कुछ हाथों में केन्द्रित न होने पाये ।

बढ़ती आबादी की आवश्यकताएं पूरा करना और उसके रहन-सहन का स्तर तब तक उठाना संभव नहीं जब तक उत्पादन नहीं बढ़ता । इसके लिए आवश्यक है कि विनियोग-योग्य बचत तो बढ़े लेकिन यह उचित नहीं कि सब बचत सरकार बटोर ले या उस सबको ऐसी परियोजनाओं में लगा दिया जाए, जिनका फल देर से प्राप्त हो । इसका भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि उत्पादन का ढांचा ऐसा हो जो वर्तमान उपलब्ध साधनों के अनुरूप हो । नए पूंजी-निर्माण का परिणाम यह नहीं होना चाहिए कि पूंजी ही खत्म हो जाए या बेरोजगारी फैले।

इस पृष्ठभूमि में, यदि तीसरी योजना का उद्देश्य राष्ट्रीय आयोजन होना है तो, उसकी रचना का आधार निम्नलिखित होना चाहिए :—

(1) उसका लक्ष्य 'पूर्ण रोजगार' दिलाना होना चाहिए ।

(2) कृषि-उत्पादन में वृद्धि को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

(3) किसान तथा मजदूर को उचित लाभ का आश्वासन दिया जाना चाहिए जिससे न केवल उत्पादन बढ़ाने के लिए पहल करने बल्कि वर्तमान एवं बढ़ते हुए औद्योगिक क्षेत्र के लिए बाजार वृद्धि के

अवसर बढ़ते रहे। मूल्यों में स्थिरता रखना भी आवश्यक होगा।

(4) लघु उद्योगों, खासकर उन छोटे उद्योगों के विकास पर बल दिया जाना चाहिए जिनमें मशीनों का उपयोग होता है।

(5) सिद्धान्तों के अलावा व्यावहारिकता का भी तकाजा है कि सरकारी क्षेत्र को अपनी गतिविधियों का विस्तार करने के बजाय, शुरू की गई गतिविधियों का दृढ़ीकरण करने पर अधिक बल देना चाहिए।

(6) बड़ी के बजाय छोटी परियोजनाओं पर जोर दिया जाना चाहिए। इस बात पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि नयी परियोजनाएं दूसरी योजना के दौरान पूरी की गई परियोजनाओं से संबद्ध हों।

(7) विकासशील अर्थतंत्र के लिए प्रशिक्षित कर्मचारियों की बढ़ती मांग को पूरा करने के लिए शिक्षा और प्रशिक्षण पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए।

[28 दिसम्बर, 1958; बंगलौर, सातवां सा०अ०]

60.16. तीसरी योजना का प्रारूप

व्यावहारिकता का अभाव—भारतीय प्रतिनिधि सभा ने तीसरी पंचवर्षीय योजना के प्रारूप पर विचार किया। चूंकि विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्ध और प्रांतीय कार्यक्रमों का तैयार किया जाना अभी भी बाकी है, अतः प्रारूप में अधिकांश मामलों पर सर्वसाधारण और अस्पष्ट बातें ही कही गई हैं। योजना के कुल खर्च और उसके आवंटन के बारे भी अभी यह नहीं कहा जा सकता कि विभिन्न वर्गों और हितों के दबाव में उसमें और वृद्धि नहीं की जाएगी। फिर भी, तीसरी योजना के जो लक्ष्य निर्धारित किये गए, जो प्राथमिकताएं निश्चित की गई और जो कार्यविधि सुझाई गई उससे पता चलता है कि देश की आर्थिक एवं राजनीतिक स्थिति की गंभीरता को समझने की कोशिश नहीं की गई है। पिछली पंचवर्षीय योजनाओं की तरह यह तीसरी पंचवर्षीय योजना भी विवेक-सम्मत एवं तर्कयुक्त दृष्टि से नहीं बल्कि एक मतवाद से प्रेरित होकर तैयार की गई है।

नियंत्रणों का पुनरागमन—तीसरी योजना के लक्ष्यों में जनता की तात्कालिक आवश्यकताओं और समस्याओं की ओर ध्यान नहीं दिया गया है। लोग जब महंगाई, बेरोजगारी और मुद्रास्फीति की चपेट में हों तब आत्मस्फूर्त अर्थतंत्र की बात करना या भारी उद्योगों पर जोर देना आत्म-

प्रवंचना मात्र है। योजना का लक्ष्य तो यह होना चाहिए कि मूल्यों में स्थिरता लाकर और रोजगार की संभावनाएं बढ़ाकर बेरोजगारी को खत्म किया जाए और जनता के रहन-सहन के स्तर को सुधारा जाए। प्रधानमंत्री ने कीमतों को काबू में रखने के लिए फिर से कंट्रोल लागू करने का संकेत दिया है। कंट्रोल को प्रभावशाली बनाने के लिए प्रशासन का कुशल एवं ईमानदार होना बहुत जरूरी है। इसके बिना चोरबाजारी ही और बढ़ेगी तथा उपभोक्ता को कोई लाभ न होगा। जब ऊंचे पदों पर बैठे लोगों की ईमानदारी के बारे में भी संदेह किया जा रहा हो तब कंट्रोल से किसी आर्थिक उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो सकती। इससे तो कार्यपालिका को और अधिक अधिकार देकर जनता के लोकतंत्री अधिकारों में और ज्यादा कटौती की जाएगी।

कृषि कार्यक्रम—भारतीय जनसंघ सदैव से योजना की प्राथमिकताओं में परिवर्तन की मांग करता रहा है। यद्यपि हम स्वीकार करते हैं कि सब क्षेत्रों में विकास के संतुलित एवं समन्वित प्रयत्नों की आवश्यकता है तथापि हम महसूस करते हैं कि वर्तमान परिस्थितियों में कृषि और छोटे एवं तत्काल लाभ देने वाले उद्योगों का तेजी से विकास करने पर बल दिया जाना चाहिए। प्रारूप में कहा गया है कि तीसरी योजना के अन्त में खाद्यान्नों के मामले में देश आत्मनिर्भर हो जाएगा। लेकिन यह आशा पूरी होनेवाली नहीं, क्योंकि कृषि विकास का कार्यक्रम अपर्याप्त है और जिन नीतियों को अपनाने का विचार है उनसे तो किसानों के अधिकारों के बारे में अनिश्चितता ही बढ़ेगी। दूसरी योजना में लघु उद्योगों को जितना स्थान दिया गया था उसके मुकाबले में इस योजना में उनका हिस्सा कम है।

समाजवाद या सामाजिक न्याय?—पहली और दूसरी योजना से पता चला कि निजी क्षेत्र, जिसमें बड़े और छोटे दोनों प्रकार के उद्योगपति शामिल हैं, देश के आर्थिक विकास में काफी मदद दे सकता है। कोई वजह नहीं कि उनकी क्षमताओं से पूरा लाभ होने का मौका न दिया जाए। यदि सरकार 'समाजवाद' के प्रति अपनी सनक त्याग दे तो यह संभव है कि प्रस्तावित योजना से भी बड़े आकार की योजना पूरी की जा सके और देश की आर्थिक समस्याएं भी हल की जा सकें। सामाजिक न्याय के लक्ष्यों को, वित्तीय एवं नियमन संबंधी अन्य नीतियां अपनाकर पूरा किया जा सकता है।

विदेशी ऋण—तीसरी योजना में साधनों के बारे में बढ़ा-चढ़ा कर अनुमान लगाए गए हैं, वे सही नहीं उतरेंगे। विदेशी मदद पर अधिक निर्भर रहना न तो राजनीतिक दृष्टि से बुद्धिमत्तापूर्ण है और न आर्थिक दृष्टि से उचित है। इससे तो न केवल हम अपने भविष्य को बंधक रख देंगे बल्कि उत्पादन की विदेशी विधियां भी भारत पर थोपी जाएंगी। ये विधियां हमारे देश की

आर्थिक आवश्यकताओं के अनुरूप नहीं और इनसे अभाव की स्थिति और लम्बे समय तक उग्र बनी रहेगी ।

प्रतिरक्षा के प्रति उदासीनता—योजना आयोग ने आक्रमण के बढ़ते खतरे और उसका सामना करने के लिए हमारी रक्षा-सामर्थ्य बढ़ाने पर जरा भी ध्यान नहीं दिया है। रक्षा पर होने वाले खर्च में वृद्धि करने या रक्षा उद्योगों की स्थापना करने पर न तो साधनों के बारे में अनुमान लगाते समय विचार किया गया और न विभिन्न मदों के लिए खर्च की राशि तय करते समय ही ध्यान दिया गया है ।

इस बात को स्वीकार करते हुए भी कि दूसरी योजना के दौरान जो कार्यक्रम आरम्भ किये गए, उनका तीसरी योजना की रचना पर प्रभाव काफी हद तक पड़ा, जनसंघ ऐसा महसूस करता है कि दिग्भ्रांत नीतियां और अविचारित कार्यक्रमों के अपनाने से जो आर्थिक असंतुलन आया उसे यदि दूर करना है और विकास प्रक्रिया को तेज करना है तो योजना के लक्ष्यों, प्राथमिकताओं और उसकी कार्यविधि में मौलिक परिवर्तन करना होगा। आकाश की नाभि बांधने का मंसूबा और एक 'वाद' विशेष से प्रभावित दृष्टिकोण त्यागकर सरकार को योजना इस ढंग से बनानी चाहिए जो अपने वश की हो और जिससे जनता का वास्तविक कल्याण हो सके ।

भारतीय जनसंघ का मत है कि आर्थिक आयोजन पर हमेशा देश की सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक लक्ष्यों की पृष्ठभूमि में विचार होना चाहिए । समाजवादी अर्थव्यवस्था जिसमें सत्ता अधिक से अधिक मात्रा में और अनिवार्य रूप से सरकार के हाथों में चली जाती है, लोकतंत्री आदर्शों से मेल नहीं खाती। आयोजन का लक्ष्य तो मुख्य रूप से ऐसी परिस्थितियां पैदा करना होना चाहिए जिनमें अधिक से अधिक लोगों को लाभप्रद आर्थिक गतिविधियों में जुटने के अवसर मिलें और वे इस क्षेत्र में पहल भी कर सकें।

जनसंघ मांग करता है कि तीसरी योजना निम्नलिखित आधार पर तैयार की जानी चाहिए :

(1) वह ऐसी हो कि सबको पूरा रोजगार मिले ।

(2) खाद्यान्नों के मामले में स्वावलम्बी बनने और कृषि की पैदावार बढ़ाने के लिए किसानों की सब आवश्यकताएं पूरी करने के प्रयत्न किये जाने चाहिए। ऐसे कदम उठाये जाने चाहिए जिससे प्रत्येक किसान की जोत लाभकर हो; किन्तु सहकारी खेती जैसे विचार, जिनके पीछे एक 'वाद' विशेष छिपा है, त्याग दिये जाने चाहिए।

(3) उत्पादन बढ़ाने के लिए पहल करने को प्रेरित करने के उद्देश्य से ही नहीं बल्कि औद्योगिक क्षेत्र में भी विकास की गति बनाये रखने के लिए, किसानों और मजदूरों को उचित लाभ का आश्वासन मिलना चाहिए ।

(4) कीमतों को स्थिर रखा जाना चाहिए। कीमतों में भारी उतार-चढ़ाव और महंगाई से न केवल वेतनभोगी वर्गों और सामान्य जनता को कठिनाई होती है बल्कि इससे सटोरियों की गतिविधियां भी तेज हो जाती हैं जिससे वास्तविक पूंजी नियोजन को ठेस पहुंचती है। तत्काल लाभ देने वाली वस्तुओं का अधिक उत्पादन करके और सरकार की मुद्रा सम्बन्धी एवं वित्तीय नीतियों में परिवर्तन करके मूल्य-चक्र को रोका जा सकता है ।

(5) मध्य श्रेणी के तथा छोटे उद्योग, खासकर वे जिनमें मशीनों का उपयोग होता है, हमारे औद्योगिक ढांचे के आधार होने चाहिए और छोटे तथा बड़े उद्योगों का दायरा स्पष्ट होना चाहिए ।

(6) सिद्धान्तों के अलावा व्यावहारिकता का तकाजा है कि सरकारी क्षेत्र को अपनी गतिविधियों को फैलाते जाने के बजाय उनका दृढ़ीकरण करने पर अधिक ध्यान देना चाहिए ।

(7) बढ़ते अर्थतंत्र के लिए कर्मचारियों की बढ़ती मांग को पूरा करने के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य और प्रशिक्षण की ओर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए ।

[28 अगस्त, 1960; हैदराबाद, भा०प्र०स०]

61.05. तीसरी योजना को वास्तविकता से सम्बद्ध करो

दूसरी पंचवर्षीय योजना के अन्तिम वर्ष में अब यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि योजना अपने निर्धारित लक्ष्यों और उद्देश्यों को पूर्ण करने में असफल रही है। जहां तक जनता का सम्बन्ध है उसने असह्य कर-भार को वहन कर तथा मूल्यों की वृद्धि के कारण पेट काटकर भी शासन के लिए साधन जुटाये हैं। फिर भी राष्ट्रीय आय में 15 प्रतिशत, प्रति व्यक्ति आय में 20 प्रतिशत तथा विनियोजन में 10 प्रतिशत योजना के लक्ष्य न्यून रहेंगे । अन्न तथा अन्य कृषि-उत्पादन में हम बहुत पीछे रहे हैं। रोजगार की दृष्टि से 80 लाख व्यक्तियों को रोजगार देने की बजाय, अधिक से अधिक 65 लाख लोगों को काम के अवसर जुटाये जा सकेंगे । उपभोक्ता मूल्य निर्देशांक 96 से बढ़कर 122 तक पहुंच गया है । विदेशी ऋण बढ़ते जा रहे हैं तथा विदेशी मुद्रा का कोष घटकर 160 करोड़ रु० तक जा पहुंचा है। भारी व्यय और कष्टों के उपरान्त औद्योगिक अथवा अन्य क्षेत्रों में जो उपलब्धियां हुई हैं वे अपेक्षा से कम तथा तुलनात्मक

दृष्टि से बहुत महंगी सिद्ध हुई हैं।

यह खेद का विषय है कि तीसरी पंचवर्षीय योजना के निर्धारण में आयोग ने पिछले अनुभवों से कोई सीख नहीं ली। यह तो सत्य है कि कृषि के विषय में प्राथमिकताओं में कुछ परिवर्तन किया है, किन्तु उसके जो कार्यक्रम रखे हैं उनसे व्यवहार में इस क्रम-परिवर्तन का कोई ठोस परिणाम नहीं होगा।

बूते के बाहर—दूसरी योजना के लक्ष्यों की उपलब्धि में कमी होने के उपरान्त भी, आयोग ने तीसरी योजना के आकार एवं विनियोजन का निर्धारण करने में न केवल दूसरी योजना में ग्रहीत अनुमानों का प्रक्षेपण किया है अपितु उनमें वृद्धि भी की है। अतः 11,350 करोड़ रु० की योजना बूते के बाहर की हो गई है।

साधनों से असम्बद्ध—यह मानते हुए भी कि देश की आवश्यकताओं को देखते हुए हमें लम्बा पग डालना चाहिए, हम यथार्थ से आंखें तो नहीं मूंद सकते। साधनों के सम्बन्ध में, दूसरी योजना के समान ही, बड़े-बड़े आंकलन लगाए गए हैं। एक बार एक कार्यक्रम हाथ में लेने के बाद शासन उसके लिए यदि अन्य स्रोतों से धन नहीं जुटा पाता तो मुद्रास्फीति का सहारा लेता है। इससे मूल्यों में वृद्धि होती है और योजना के अनुमान भी बढ़ जाते हैं। अच्छा हो कि हम साधनों के विषय में यथार्थता देखकर योजना बनायें।

भारी विदेशी मदद—तीसरी योजना में 3,200 करोड़ रु० की विदेशी सहायता की मांग खतरे से खाली नहीं है। आवश्यकता है कि विदेशी ऋण और पूंजी के सम्बन्ध में हम अपनी नीति पर पुनर्विचार करें तथा उसका ग्रहण केवल उपलब्धता के आधार पर न कर उपयुक्तता के विचार से ही करें। विदेशी पूंजी के अनुरूप आन्तरिक साधन न जुटे तो हमें उससे भारी हानि होगी। 1,950 करोड़ रु० के नये करों का अनुमान भी ठीक नहीं दीखता।

नियंत्रणपरक—योजना में अभी भी भारी और मशीन बनाने वाले उद्योगों पर ही बल दिया गया है। औद्योगिक नीति में परिवर्तन किये बिना मूल्य-वृद्धि और बेरोजगारी की समस्या नहीं सुलझ सकेगी। इन दोनों प्रश्नों के सम्बन्ध में आयोग अभी तक अनिश्चित है। सुनियोजित विकास के लिए मूल्यों का स्थिरीकरण आवश्यक है। शासन की ओर से भौतिक नियंत्रणों का विचार ही हो रहा है। उससे अर्थव्यवस्था की व्यापक एवं मौलिक समस्या नहीं सुलझेगी। किसी क्षेत्र में अभाव का होना और इस अभाव को रोकने के लिए नियन्त्रण की योजना बनाने का सबसे घातक परिणाम यह हो रहा है कि देश की जनता नैतिक दृष्टि से गिरती जा रही है। नियंत्रणों को सफल करने के लिए योग्य एवं ईमानदार प्रशासन तो है नहीं उल्टे ज्यों-ज्यों नियंत्रणों का विस्तार होता जा रहा है, शासन की अयोग्यता एवं भ्रष्टाचार बढ़ रहा है। आवश्यकता है कि नियंत्रणों को योजनाओं की सफलता का आधार न बनाया जाए, बल्कि नियंत्रण की आवश्यकता ही न हो यह कल्पना करके योजना की रूपरेखा निर्धारित की जाए।

सामुदायिक कृषि—तृतीय योजना दूसरी के समान ही व्यावहारिक न होकर कोरी सैद्धान्तिक है। समाजवाद के नाम पर सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार तथा सहकारी खेती जैसे कार्यक्रम का आग्रह किया गया है। यदि हम राष्ट्रीय योजना की कल्पना करते हैं तो हमें देश के सभी क्षेत्रों को अपनी शक्ति और योग्यता के अनुसार विकास और विस्तार का अवसर देना चाहिए। जनसंघ समझता है कि निजी क्षेत्र योजना की पूर्ति में अधिक योगदान दे सकता है। सार्वजनिक क्षेत्र विस्तार के स्थान पर अब यदि दृढ़ीकरण का प्रयत्न करेगा तो अधिक उपयोगी रहेगा।

सीमा क्षेत्रों की उपेक्षा—सबसे आश्चर्य की बात तो यह है कि आयोग ने योजना बनाते हुए देश की सुरक्षा पर संकट का बिल्कुल विचार नहीं किया। प्राप्त परिस्थिति में हमें न केवल प्रतिरक्षा उद्योगों का तेजी से विस्तार करने की आवश्यकता है, अपितु सीमान्त क्षेत्रों के विकास का भी विशेष रूप से विचार करना होगा।

योजना को भारतीय मूल्यों से जोड़ो—भारतीय जनसंघ का मत है कि तीसरी योजना की परिकल्पना, तंत्र और आकार—सबके सम्बन्ध में क्रांतिकारी विचार होना चाहिए। दूसरी योजना अवधि के अन्तर्गत हाथ में लिए गए कार्यक्रमों का विचार करते हुए भी, तीसरी योजना को दूसरी योजना की ऐसी नीतियों से जिनकी अनुपयुक्तता सिद्ध हो चुकी है, बांधना ठीक न होगा।

योजना की जड़ें भारत के जीवन में न होने के कारण वे जन-जीवन में उत्साह का एवं स्वेच्छा से सहयोग का भाव निर्माण नहीं कर पातीं। फलतः गांव के विकास के कार्यक्रमों तक के लिए शासन अनिवार्य-श्रम जैसी योजनाओं को लागू कर रहा है। आवश्यकता है कि योजना को भारतीय जीवन की निष्ठा से जोड़ा जाए जिससे लोगों में उसके प्रति प्रेरणा पैदा हो सके।

[1 जनवरी, 1961; लखनऊ, नवां सा०अ०]

61.17. तीसरी योजना के लक्ष्य और संरचना

भारतीय प्रतिनिधि सभा ने तीसरी पंचवर्षीय योजना पर विचार किया। यह खेद का विषय है कि आयोग ने भारत की स्थिति के अनुकूल तथा अर्थव्यवस्था की विकास क्षमता उत्पन्न करने वाली कोई योजना प्रस्तुत नहीं की है। तीसरी योजना की क्रियान्विति में जो आर्थिक समस्याएं उत्पन्न हुई अथवा बढ़ी हैं उनका समाधान करने के स्थान पर तीसरी योजना और अधिक भार, तथा आर्थिक तत्वों

के संतुलन कायम करने की स्वाभाविक प्रवृत्ति में बाधा डालकर उन्हें और भी जटिल बना देगी ।

दूसरी योजना के अन्तर्गत 4,600 करोड़ रु० के वित्तीय व्यय के उपरान्त भी अनेक क्षेत्रों में निर्धारित भौतिक लक्ष्य पूर्ण नहीं हो पाए । भौतिक लक्ष्यों की उपलब्धियां अधिकाधिक 60 प्रतिशत आंकी जा सकती हैं । यदि हमें इस कमी को पूरा करना है और जनसंख्या की वृद्धि की गति से अधिक आर्थिक विकास की गति बढ़ानी है तो एक बड़े प्रयास की आवश्यकता है । किन्तु योजना ने अभी तक नियोजन सम्बन्धी जो तकनीकी और व्यूह प्रस्तुत किया है वह भारत की स्थितियों में सम्भव नहीं । इसमें न तो हमारी आवश्यकताओं और क्षमताओं का और न विपाक के लिए सम्भव कालमर्यादा का ही विचार किया गया है । योजना का बड़ापन वित्तीय लक्ष्यों पर नहीं अपितु जनता की उत्पादकता और क्रय-शक्ति में वृद्धि की क्षमता पर निर्भर करता है । उसमें देश के प्राकृतिक एवं अन्य साधनों का अधिकाधिक दोहन तथा बाहरी स्रोतों पर कम से कम निर्भरता होनी चाहिए । जनसंघ का मत रहा है कि रूस का अनुकरण करने वाली आज की योजनाएं अथवा पश्चिम के देशों में विकसित पूंजीवादी योजनाएं भारत में गतिमान अर्थव्यवस्था की नींव नहीं रख सकतीं । भारत की राजनीतिक स्थिति भी उन स्थितियों से भिन्न है जिनके अन्तर्गत उपयुक्त व्यवस्थाएं बनायी गई हैं । अतः आवश्यक है कि हम ऐसी योजनाएं लेकर चलें जो मूलतः भारतीय हों ।

नियोजन का उद्देश्य :

(i) अधिकतम उत्पादन,
(ii) समानतर वितरण,
(iii) न्यूनतम जीवन-स्तर की गारण्टी,
(iv) सबको जीविकोपार्जन की व्यवस्था, तथा
(v) सभी क्षेत्रों और वर्गों का सर्वांगीण और संतुलित विकास होना चाहिए ।

प्रस्तावित आयोजन लक्ष्य—उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति के साथ-साथ तीसरी योजना का लक्ष्य अभी तक अर्थव्यवस्था में उत्पन्न हुए असन्तुलन को ठीक करना होना चाहिए । उसका निर्धारण अधोलिखित आधार पर किया जाए :

(1) मूल्यों की स्थिरता एवं जीविकोपार्जन के अधिकतम अवसरों की उपलब्धि ।

(2) इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए योजनाओं की वरीयताओं में परिवर्तन कर कृषि और छोटे यन्त्रचालित उद्योगों को प्राथमिकता देनी होगी । भारत में अधिकतम कृषि उत्पादन के लिए सघन खेती आवश्यक है । एतदर्थ एक ओर बड़े-बड़े उद्योग, चाहे उनका

स्वामित्व सहकारी हो अथवा सरकारी कम्पनी का हो अथवा व्यक्तिगत, नहीं चाहिए । दूसरी ओर किसान की खेती की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए व्यवस्था होनी चाहिए ।

(3) छोटे यन्त्रचालित उद्योगों को देश के औद्योगीकरण का आधार बनाना चाहिए । इसके अनुकूल यन्त्रों को निमित अथवा आयात करना चाहिए । इन उद्योगों के लिए उधार, विपणन और प्रशिक्षण आदि की व्यवस्था होनी चाहिए ।

(4) उपर्युक्त प्रावधान के अन्तर्गत आधारभूत उत्पादक और उपभोग्य वस्तुओं के संतुलित विकास का कार्यक्रम बनाकर जीवनोपयोगी वस्तुओं के उत्पादन पर बल देना चाहिए ।

(5) सार्वजनिक क्षेत्र में बिजली और यातायात के विकास पर बल देकर वर्तमान कमी को दूर करना चाहिए । दूसरी बातों में विस्तार के स्थान पर दृढ़ीकरण की ओर ध्यान देना चाहिए । सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों के सैद्धान्तिक बंटवारे को समाप्त कर के एक राष्ट्रीय क्षेत्र की कल्पना रखनी चाहिए तथा उसके विकास में सभी व्यक्तियों और संस्थाओं को अपनी क्षमता के अनुसार अधिकाधिक योग देना चाहिए ।

(6) सार्वजनिक निर्माण का, विशेषतः ग्रामीण क्षेत्र में, एक व्यापक कार्यक्रम बनाया जाए ।

(7) सामान्य योजना के अन्तर्गत एक प्रतिरक्षा की भी योजना बनायी जाए ।

[12 नवम्बर, 1961; वाराणसी, मा०प्र०स०]

62.20. तीसरी योजना को प्रतिरक्षापरक बनाओ

भारत की योजनाओं एवं अर्थनीतियों का निर्धारण प्रमुखतया शांतिकाल में विकास के लक्ष्यों को ध्यान में रखकर किया गया था । आज जबकि हमें कम्यु-निस्ट चीन के साथ युद्ध की तैयारी करनी है यह आवश्यक है कि सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को तदनुरूप बनाया जाए । इस दृष्टि से हमें न केवल युद्ध के लिए आवश्यक साधन सामग्री जुटानी होगी बल्कि यह भी देखना होगा कि अर्थ-व्यवस्था में किसी प्रकार के तनाव उत्पन्न होकर वह विश्रृंखलित न हो जाए । भारतीय जनसंघ वर्तमान में निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत करता है :

(1) तृतीय पंचवर्षीय योजना में से ऐसी सभी स्कीमों को स्थगित कर दिया जाए जिनका प्रतिरक्षा उद्योगों, जीवन की आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन

अथवा शिक्षा और स्वास्थ्य जैसे महत्वपूर्ण विषयों से सम्बन्ध न हो।

(2) प्रतिरक्षा उद्योगों की स्थापना को प्राथमिकता दी जाए तथा अन्य उद्योगों को सुरक्षा के सामान के उत्पादन करने में लगाया जा सके इसकी व्यवस्था की जाए।

(3) जीवन की आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन बढ़ाया जाय। इस दृष्टि से कुछ निश्चित मानक की वस्तुओं को सस्ते दामों में भारी तादाद पर पैदा किया जाए।

(4) मूल्यों को स्थिर रखने के लिए सभी आवश्यक पग उठाए जाएं।

(5) वित्त व्यवस्था में मुद्रास्फीति किसी भी अवस्था में पैदा न होने दी जाए।

(6) औद्योगिक विवादों को टालने के लिए त्रिदलीय समझौते के पालने पर बल दिया जाए।

(7) शासन को नये वित्तीय साधन जुटाने के पहिले अपने खर्चों में भारी कटौती करनी चाहिए। मन्त्रियों की संख्या में कमी, अनावश्यक कर्मचारियों की छंटनी, बड़े वेतनों और भत्तों में कटौती आदि मितव्ययिता की योजनाओं को काम में लाना चाहिए। दिखाऊ खर्चे बिल्कुल काट देने चाहिए। एक हजार से अधिक मासिक आय वालों को एक हजार से अधिक का वेतन प्रतिरक्षा बॉण्डों के रूप में दिया जाए।

(8) प्रतिरक्षा-निधि संग्रह के कार्य में प्रशासनिक दबाव का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

(9) करों की चोरी रोकने और बकाया रकम की वसूली के लिए प्रभावी व्यवस्था की जाए।

(10) नये कर लगाते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि उससे अर्थ-व्यवस्था में ऐसा भार न पड़े कि वह टूट जाए। सामान्यतः जीवन की आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले अथवा मूल्य-वृद्धि करने वाले टैक्स नहीं लगाने चाहिएं।

(11) यातायात व्यवस्था पर भार कम करने तथा प्रतिरक्षात्मक दृष्टि से उद्योगों के विकेन्द्रीकरण पर ध्यान देना चाहिए।

(12) जो सुविधाएं स्वर्ण बांड के खरीदने के लिए दी गई हैं वे ही विदेशों में बसे भारतीयों की सम्पत्ति के देश में आने पर दी जाएं।

(13) प्रिवी पर्स में एक निश्चित राशि से ऊपर का धन प्रतिरक्षा बाण्ड में दिया जाए।

[30 दिसम्बर, 1962; भोपाल, दसवां सा०अ०]

65.21. आयोजना संबंधी परिकल्पना बदलो

भारतीय जनसंघ ने विजयवाड़ा अधिवेशन में चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के स्मृतिपत्र पर अपने विचार प्रकट करते हुए देश में 'योजना बदलो' अभियान लेने का निर्णय किया था। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत योजनाओं की अशुद्धता तथा भारत की योजनाओं के रचनात्मक स्वरूप के सम्बन्ध में जनमत को शिक्षित करने का काफी काम हुआ है। इस अभियान के परिणामस्वरूप तथा भारत के अन्य विचारवान व्यक्तियों के स्वतंत्र चिन्तन एवं व्यावहारिक अनुभव के कारण आज देश में यह सामान्य जनमत है कि अभी तक की योजनाओं में मौलिक गलती रही है तथा आगे उसका सुधार करके ही चौथी योजना बनानी चाहिए। इस सम्बन्ध में प्रधानमंत्री और वित्तमंत्री ने भी महत्वपूर्ण विचार रखे हैं। यह खेद का विषय है कि योजना आयोग अभी तक अपनी बात पर अड़ा हुआ है तथा वह न तो चौथी योजना के आकार में और न उसके स्वरूप में और व्यूह रचना में परिवर्तन करना चाहता है। स्पष्टतः आयोग का योजना में कुछ निहित स्वार्थ विकसित हो गया है तथा अपनी कल्पनाओं की धुन में वे व्यवहार जगत से बहुत भटक गए हैं। यह आवश्यक है कि अभी तक की योजनाओं की उपलब्धि और विफलता की जांच एक पृथक आयोग के द्वारा कराई जाए।

हाल ही की योजना आयोग की बैठक में चौथी योजना 21,500 करोड़ रु० की परिकल्पित की गई है। साधनों का जो अनुमान वित्तमंत्री ने दिया है वह इससे बहुत कम है। यद्यपि यह घोषणा की गई है कि घाटे की अर्थव्यवस्था का सहारा नहीं लिया जाएगा किन्तु व्यवहार में इसका पालन किया जाएगा, इसका कोई आसार नहीं दिखायी देता। साधनों का अनुमान बढ़ा-चढ़ाकर दिया गया है। उस पर भी 3,700 करोड़ रु० के नये करों का सुझाव है। पहिले ही कर-भार असह्य हो रहा है। उसका परिणाम एक ओर साहस को संकुचित करने में तथा दूसरी ओर मूल्यों की वृद्धि में हुआ है। अब कृषकों पर नये कर लगाने का विचार किया जा रहा है। यह सुझाव कृषि को वरीयता देने की घोषणा को अर्थहीन बना देगा। कृषि का विकास बिना उस क्षेत्र में पूंजी विनियोजन के नहीं हो सकता। सहकारी खेती के नारे, भूमि-सुधारों की कमियां तथा उनका गलत क्रियान्वयन, लेवी तथा मूल्य नीतियों के कारण पहिले से ही पूंजी कृषि क्षेत्र की ओर प्रवाहित नहीं हो रही। भारी नये करों का परिणाम और भी घातक होगा। विदेशी मुद्रा का अनुमान भी अयथार्थवादी है। योजना का आकार साधनों से बड़ा बनाने के बाद सम्पूर्ण शक्ति उन्हें जुटाने में ही लग जाती है, यहां तक कि अनेक बार वे उपाय अपनाये जाते हैं जो योजना और उसकी वरीयताओं पर विपरीत परिणाम डालते हैं।

आवश्यकता है कि योजना का पूर्णतः पुनर्निर्धारण किया जाए। भारतीय जनसंघ इस विषय में निम्नलिखित सुझाव देता है।

(1) लम्बी अवधि के आर्थिक नियोजन एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। उसे कृत्रिम काल-खण्डों में नहीं बांटा जा सकता। अतः आर्थिक विकास के उद्देश्य, लक्ष्य तथा आधारभूत नीतियों का निर्धारण कर एक लम्बी अवधि का कार्यक्रम बनाया जाए। योजना की कुछ अवधि के लिए छुट्टी करना अथवा एक योजना न बनाना अतर्कसंगत है। जहां दृढ़ीकरण नहीं हुआ है वहां अवश्य प्रयत्न किया जाए किन्तु उसके लिए देश के विकास-क्रम को रोका नहीं जा सकता।

(2) योजना का सम्पूर्ण चिन्तन वित्तमूलक न हो। बढ़ती हुई कीमतों तथा मुद्रा के अवमूल्यन की स्थिति में वित्तीय लक्ष्यों का कोई विशेष व्यावहारिक अर्थ नहीं रहता। सम्पूर्ण कार्यक्रम का विचार भौतिक उपलब्धि के आधार पर होना चाहिए।

(3) विकास और सुरक्षा दोनों की समन्वित योजना बननी चाहिए। वास्तव में योजना ऐसी हो कि जो देश की सुरक्षा सामर्थ्य बढ़ाने के साथ-साथ युद्ध स्थिति में भी क्रियान्वित की जा सके। योजना आयोग में एक सुरक्षा विशेषज्ञ का समावेश होना चाहिए।

(4) योजना को किताबी सिद्धान्तों के आधार पर न बनाकर व्यावहारिक बनाना चाहिए। निजी और सार्वजनिक क्षेत्रों को प्रतिस्पर्धी न समझकर एक को दूसरे का अंग माना जाए और प्रत्येक क्षेत्र को उन्हें एक राष्ट्रीय क्षेत्र का अंग मानकर अपनी क्षमता के अनुसार कार्य करने का अवसर दिया जाए।

(5) योजना का आधार 'स्वदेशी' की भावात्मक कल्पना हो। विदेशी पूंजी और विदेशी आयात प्रमुख योजना के दुष्परिणाम अब काफी सामने आ चुके हैं।

(6) योजना के आधारभूत उद्देश्य होने चाहिए :

(i) पूर्ण रोजगार।

(ii) प्रत्येक नागरिक को न्यूनतम जीवन-स्तर की आश्वस्ति।

(iii) सभी क्षेत्रों का समानतर विकास।

(iv) राष्ट्र की प्रतिरक्षा सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति।

(7) उपर्युक्त लक्ष्यों के अधीन आगे के कुछ वर्षों तक शासन की योजना के अन्तर्गत निम्नलिखित पर विशेष ध्यान देना चाहिए :

(i) आधारभूत उपभोक्ता वस्तुओं और खाद्य के उत्पादन तथा पेय जल को वरीयता देकर उनकी शीघ्र वृद्धि की जाए।

(ii) जिन उद्योगों की क्षमता का पूर्ण उपयोग नहीं हो पाता उनमें नये विस्तार पर बन्धन लगाए जाएं।

(iii) सार्वजनिक क्षेत्र में इस्पात, विद्युत्त, खनिज तेल तथा सुरक्षा उद्योगों को छोड़कर अन्यत्र दृढ़ीकरण को प्राथमिकता दी जाए।

(iv) शासन के खर्चे में भारी कटौती की जाए; मुद्रास्फीति को रोका जाए।

(v) छोटी तथा शीघ्र फलदायी योजनाओं को प्राथमिकता दी जाए।

(vi) उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन एवं वितरण के क्षेत्र में राष्ट्रीयकरण अथवा एकाधिकार के विचार को त्यागा जाए।

(vii) जो क्षेत्र पिछड़ गए हैं, उनकी ओर विशेष ध्यान देकर उन्हें समान स्तर पर लाने का प्रयत्न किया जाए।

(viii) सीमान्त क्षेत्रों के लिए अलग से योजना बनायी जाए।

(ix) आवास की व्यवस्था को वरीयता देकर उसके कार्यक्रम बनाये जाएं।

[17 अगस्त, 1965; दिल्ली, भा०प्र०स०]

68.09. चौथी योजना के प्रति दृष्टिकोण

चौथी पंचवर्षीय योजना के प्रति अपनायी गई दृष्टि पर विचार करने के बाद कार्यसमिति ऐसा महसूस करती है कि देश के आर्थिक विकास के स्वरूप के बारे में योजना आयोग के चिन्तन में कुछ सुधार के संकेत मिलते हैं। लेकिन, यह सुधार अनमने ढंग का और ढिलमिल है, तथा इससे अब तक अपनायी गई उस धारणा से मुक्त होने की असमर्थता का पता चलता है, जिसके कारण हमारे अर्थतंत्र में घोर अव्यवस्था फैल गई है।

जनसंघ ने बारबार इस बात पर बल दिया है कि योजना यथार्थवादी तरीके से बनायी जाए और जो लक्ष्य निर्धारित किये जाएं वे ऐसे हों कि न केवल प्राप्त साधनों से पूरे किये जा सकें बल्कि उनके ठोस परिणाम शीघ्र सामने आएं और सामान्य-जन के रहन-सहन की स्थिति में सुधार हो। अतीत में हमने जो महत्वाकांक्षी योजनाएं तैयार कीं उनसे एक साथ दो बुराइयां सामने आयीं। एक ओर तो व्यापक निराशा फैली और दूसरी ओर हम दूसरे देशों की कृपा पर अधिकाधिक निर्भर होते गए। नतीजा यह हुआ कि चौथी योजना को तीन साल तक रोककर रखना पड़ा। भारी और पूंजीगत सामान तैयार करने वाले उद्योगों पर बहुत ज्यादा जोर दिया गया और खेती तथा उपभोक्ता सामग्री तैयार करने वाले उद्योगों की प्रायः उपेक्षा की गई। इसका नतीजा यह हुआ कि कीमतें आसमान को छूने लगीं और आयोजन की समूची प्रक्रिया खटाई में पड़ गई।

ऐसा जान पड़ता है कि पुनर्गठित योजना आयोग ने भी आवश्यक सबक पूरी तरह से नहीं सीखा है। इसकी पुष्टि इस बात से होती है कि विकास की दर (जो तीसरी योजना में 5 प्रतिशत आयोजित थी) 2·5 प्रतिशत से कम रही है, हालांकि पूंजी नियोजन (8,630 करोड़ रु०) 1,130 करोड़ रु० था (अर्थात प्रारम्भ में जितनी रकम की व्यवस्था की गई थी उससे अधिक था) चौथी योजना में विकास की वार्षिक दर 5–6 प्रतिशत रखी गई है जो लगभग वही है जिसे चौथी योजना के बहुचर्चित मसौदे में, जो सामने आने से पूर्व ही समाप्त हो गया, संभव माना गया था। इस मसौदे में तीसरी योजना की प्रगति का वार्षिक लेखा-जोखा प्रस्तुत करके और अंतिम वर्ष 1965–66 को 'लेखे से बाहर रखकर' योजना की विफलता को घटाकर पेश करने की कोशिश की गई है। जिस वर्ष का लेखा नहीं लिया गया उसका कारण यह बताया गया है कि उस साल सूखा पड़ा और विदेशी हमला हुआ। यह आशा करना तो कुछ हद तक उचित हो सकता है कि प्रकृति की अब उतनी अकृपा न होगी, जितनी उस वर्ष हुई, किन्तु दो पड़ोसी देशों के नेक इरादों पर भी विश्वास करके बैठ जाना, जब कि सब संकेत प्रतिकूल ही मिल रहे थे, ख़याली पुलाव पकाना मात्र था।

विदेशी मदद पर अधिक निर्भर न रहने का संकल्प तो कर्णप्रिय है, लेकिन वास्तव में वह (शुद्ध ब्याज और ऋण की देय किश्त) जितना आज है उसका आधा भी, और वह भी योजना के अंतिम वर्ष तक, किसी साहस भरे फैसले का संकेत नहीं देता, खासकर ऐसी सूरत में जबकि यह स्मरण रखा जाए कि विदेशी ऋण और उसका ब्याज (योजना के मसौदे के अनुसार) प्रति वर्ष औसत से 460 करोड़ रु० से अधिक बैठेगा। जब तक हमारे निर्यात व्यापार में ही कोई चमत्कार नहीं हो जाता (जैसा कि योजना के मसौदे में निर्यात का औसत 1,607 करोड़ रु० प्रतिवर्ष कूता गया है) तब तक कर्ज देने वाले देशों के वर्तमान स्वर और रवैये के आधार पर कोई भी इसी निष्कर्ष पर पहुंचेगा कि मजबूरी और परिस्थितियों के दबाव के कारण ही योजना आयोग को यह सुहावना फैसला करना पड़ा है।

आत्मनिर्भरता—फिर भी, भारतीय जनसंघ को विश्वास है कि 'निर्भरता को कम करने' के बजाय हमारे विकास प्रयत्नों का बुनियादी स्वरूप यह होना चाहिए कि हम अपने आयोजन को मुख्यतः अपने साधनों पर ही आश्रित करने का ठोस दृष्टिकोण अपनायें। हमारे पास जिस साधन की बहुतायत है, वह है हमारी श्रमशक्ति। इसका अधिकाधिक इस्तेमाल किया जाना चाहिए, जो स्वयं बेरोजगारी की समस्या को हल करने का एक ठोस तरीका होगा। हमें भारत में उपलब्ध साधनों के अनुकूल अपनी स्वदेशी प्रौद्योगिकी का विकास करना चाहिए। इस नयी 'दृष्टि' में यदि कोई इस संकेत को देखने की कोशिश

करे भी तो उसे निराशा ही होगी और उसे इस उड़ते-उड़ते उल्लेख के अलावा कि 'भारत में मध्यम श्रेणी की प्रौद्योगिकी अपनाने के लिए क्षेत्र हैं' और कुछ भी देखने को नहीं मिलेगा। फिर भी यह उल्लेख भी ऐसा है कि इसका कुछ भी अर्थ लगाया जा सकता है। समिति की राय में, आत्म-निर्भरता का यही सार है।

इस छोटे पत्रक में साधनों के सम्बंध में कोई स्पष्ट बात नहीं कही गई किन्तु उसमें जिन संभावनाओं का जिक्र है उनमें कर्ज, छोटी बचत, सरकारी क्षेत्र के उद्योगों के अच्छे परिणाम और मूल्य संतुलन के साथ-साथ अतिरिक्त करों की बात शामिल है। मूल्य-वृद्धि रोकने में सरकार जिस शानदार ढंग से बराबर विफल होती जा रही है और सरकारी क्षेत्रों की कार्यकुशलता का जो रूप सामने है, उससे तो यही खतरा नजर आ रहा है कि सरकारी क्षेत्र के उत्पादनों के मूल्यों में और कमरतोड़ करों के बोझ में अधिक वृद्धि करना ही सरकार को सबसे सरल विकल्प प्रतीत होगा। इन बातों का उल्लेख जितना भयावह है, उतनी ही भयावह यह चुप्पी है कि प्रशासन में कुशलता लाने और साधनों के इस्तेमाल में बचत बरतने के लिए सरकार क्या कर सकती है और उसे क्या करना चाहिए।

अतः कार्यसमिति फिर इस बात को दोहराना चाहेगी कि यदि अतीत की विफलताओं से बचना है, अधिकाधिक संभव विकास का लक्ष्य पूरा करना है और प्रगति में सामान्य जन को भी साझीदार बनाना है तो चौथी पंचवर्षीय योजना की रचना और उसकी क्रियान्विति के लिए निम्नलिखित कदम उठाना अनिवार्य है।

(1) योजना स्वदेशी हो जो पूरी तरह देश में उपलब्ध साधनों, खास कर श्रमशक्ति और प्रौद्योगिकी जानकारी तथा उनके यथासंभव अधिक से अधिक प्रयोग पर ही निर्भर हो।

(2) विकास की दर और प्रति इकाई की उपलब्धि के यथार्थवादी लक्ष्य निर्धारित किये जाएं, जो इस पर आधारित न हों कि क्या अपेक्षित है बल्कि इस पर निर्भर हों कि साधनों का अधिक से अधिक उपयोग करके क्या कुछ उपलब्ध किया जा सकता है।

(3) कीमतों में बड़ी मात्रा में और वृद्धि न होने पाये इसका पूरा ध्यान रखा जाए और घाटे की वित्त व्यवस्था के जो तरीके इस समय अपनाये जा रहे हैं, उनसे बचा जाए। साथ ही अतिरिक्त करों का भारी बोझ न डालने तथा सरकारी क्षेत्र के उद्योगों की कीमतों और सेवाओं के मूल्य में वृद्धि न करने का ध्यान रखा जाए।

(4) कीमतों को स्थिर रखने का प्रयत्न करके किसान को उचित पुरस्कार देने की व्यवस्था की जाए तथा अनाज का भंडार बनाया जाए जिससे कृषि के मोर्चे पर मिली सफलता अल्पकालिक सिद्ध न हो।

(5) प्रशासन में बचत के लिए सभी प्रयत्न किये जाएं और हमारे उत्पादनों, खासकर निर्यात वाली वस्तुओं को अन्तर्राष्ट्रीय मंडियों में होड़ कर सकने योग्य बनाने के लिए कर व्यवस्था पर पुनर्विचार किया जाए।

(6) सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों को कुशल, कीमतों के प्रति सजग, मितव्ययी और लाभप्रद बनाने के लिए कदम उठाये जाएं। जब तक वर्तमान उपलब्धियों को पक्का और सुगठित नहीं कर लिया जाता और बेकार पड़ी क्षमता का पूरी तरह उपयोग नहीं होने लगता तब तक सिर्फ राजनीतिकवाद के जोश में सरकारी क्षेत्र का विस्तार नहीं किया जाना चाहिए।

[4 जून, 1968; गोहाटी, के०का०स०]

69.06. चौथी योजना—एक मूल्यांकन

यह खेद का विषय है कि चतुर्थ पंचवर्षीय योजना का प्रारूप, जिस रूप में उसे दिनांक 21 अप्रैल को संसद में पेश किया गया है, उन आशाओं को पूरा करने में विफल रहा है जो गत तीन वर्ष पूर्व नियोजन को स्थगित करने तथा योजना आयोग के पुनर्निर्माण के समय उत्पन्न हुई थी। यह अपेक्षा की गई थी कि नया प्रारूप एक यथार्थवादी दृष्टिकोण पर आधारित होगा और उससे विगत अनुभव से कुछ सीखने की इच्छा का परिचय मिलेगा। यह देखकर निराशा हुई है कि चतुर्थ योजना कुछ मौखिक दावों तथा औपचारिकताओं को छोड़कर, विगत तीन पंचवर्षीय योजनाओं के ढर्रे पर ही बनी है और उससे यह लगता है कि उसके निर्माता घिसे-पिटे चिंतन तथा पूर्व धारणाओं का परित्याग करने के या तो अनिच्छुक हैं या असमर्थ हैं। जनसंघ के मत में यह आत्म-वंचना होगी यदि हम अपने सभी आर्थिक रोगों के लिए चीन और पाकिस्तान के साथ अपने संघर्ष अथवा दो वर्ष के लगातार सूखे को उत्तरदायी ठहरायें जैसा कुछ प्रयास चतुर्थ योजना के प्रारूप में भी किया गया है। हम उन आर्थिक कमियों के प्रति अपनी आंखें बन्द नहीं कर सकते जो उद्योगों की बड़े पैमाने पर अप्रयुक्त क्षमता का, एक मन्द पूंजी बाजार का, न बढ़ने वाली प्रतिव्यक्ति आय का, आवश्यकताओं की अधिकांश वस्तुओं के बढ़ते हुए दामों का, भारी विदेशी-ऋण के बदले में ब्याज तथा वार्षिक भुगतान की अदायगी के फलस्वरूप हो रहे घाटे का, आय की बढ़ती हुई क्षमता का, तथा खाद्यान्न, कपड़ा व तेल के उपभोग में आई हुई कमी तथा निरन्तर बढ़ने वाली बेरोजगारी का एक यथार्थ-वादी आंकलन हमें इसी निष्कर्ष पर पहुंचाएगा कि उपर्युक्त आर्थिक स्थिति गत अट्ठारह वर्षों में अपनाई गई नियोजन सम्बन्धी नीतियों से ही उत्पन्न हुई है।

यथार्थवादी नियोजन—भारतीय जनसंघ ने सबसे पहले, और सदैव इस बात पर बल दिया है कि हमारी योजनाएं यथार्थवादी होनी चाहिए जो उपलब्ध साधनों के आधार पर बनायी जाएं। यद्यपि इस वर्ष के बजट भाषण में इस संबंध में कुछ शाब्दिक संकल्प व्यक्त किया गया था, योजना के प्रारूप में प्रस्तुतीकरण की कुछ भिन्नता के अतिरिक्त इस बारे में और कोई अन्तर नहीं है। चतुर्थ योजना साधनों पर आधारित नहीं है और इससे पूर्व की तीन योजनाओं की मौलिक भूल से इसमें भी बचा नहीं गया। अपने साधनों का विचार करके उनका सर्वाधिक उपयोग करने का लक्ष्य बनाने के बजाय पहले हम अपनी आवश्यकताओं का अनुमान लगा कर विकास की एक निश्चित दर का निर्धारण पहले करते रहे हैं और उसके पश्चात् उसके लिए साधनों की खोज के प्रयत्नों में लगते रहे हैं। इससे क्षमता और आकांक्षा में अनिवार्यतः अन्तर पड़ता रहा है। राज्यों ने भी महत्वाकांक्षी योजनाएं तैयार करने में एक दूसरे से होड़ लगाई है और जब साधनों की कमी उनके मार्ग में बाधक बनी (अंशतः इसलिए कि वे अतिरिक्त साधन नहीं जुटा सके) तब उन्होंने केन्द्र के प्रति शिकायत का एक भाव मन में जमा लिया। इन अन्तरों की पूर्ति के लिए घाटे की वित्त-व्यवस्था का अवलम्बन किया गया जिससे मुद्रास्फीति हुई और विदेशी सहायता पर हमारी निर्भरता अस्वास्थ्यकर सीमा तक बढ़ गई। घाटे की वित्त-व्यवस्था से हम मूल्यों, लागतों तथा वेतनों की पारस्परिक होड़ के दुष्चक्र में फंस गए, आय की विषमता बढ़ गई, औद्योगिक अशान्ति फैली, हर परियोजना पर वास्तविक खर्चा प्रारम्भिक अनुमान से बहुत ज्यादा बढ़ गया और इस प्रकार हमारे सभी गणित गलत हो गए। दूसरी ओर विदेशी पूंजी पर निर्भरता के कारण देश ने हाल ही में अपमानित होकर इस तथ्य को अनुभव किया है कि इन दावों का क्या मूल्य है कि विदेशी सहायता राजनीतिक दबावों से मुक्त है।

चतुर्थ योजना में अतीत के कटु अनुभवों के बावजूद विदेशी सहायता का अनुमान 3,730 करोड़ रु० लगाया गया है। जब सहायता इस अनुमान से कम रह जाएगी तो घाटे की वित्त-व्यवस्था का सहारा लेने के बजाय कोई चारा नहीं रहेगा और वह इस समय की अहानिकर दीखने वाली 850 करोड़ रु० की राशि से कहीं अधिक बढ़ जाएगी जिससे कि कीमतों तथा लागतों में वृद्धि का दुष्चक्र फिर से चल पड़ेगा।

कृषि—यद्यपि योजना आयोग द्वारा कृषि को सर्वोच्च प्राथमिकता देने का दावा किया गया है किन्तु चतुर्थ योजना में उस पर व्यय की जाने वाली राशि 15·6 प्रतिशत है जबकि उद्योग तथा खनिजों के लिए 23·4 प्रतिशत राशि रखी गई है। जिस व्यवसाय से आज भी हमारी राष्ट्रीय आमदनी का आधा भाग प्राप्त होता है उस कृषि को सर्वोच्च प्राथमिकता देने

का यह ढंग नहीं हो सकता। यद्यपि यह किंचित संतोष का विषय है कि 'हरी क्रांति' के परिणामस्वरूप बढ़े हुए कृषि उत्पादन से देश की आर्थिक स्थिति में कुछ सुधार हुआ है विशेषकर इस कारण कि इस साल अपर्याप्त वर्षा के बावजूद यह आशा की जा रही है कि आगामी फसल भी गत वर्ष जितनी ही अच्छी होगी। तथापि भारतीय जनसंघ अनुभव करता है कि आनन्द मनाने की बात तो दूर रही हम समाधान भाव से शांत भी नहीं बैठ सकते जबकि देश के बहुत बड़े भाग अकाल तथा सूखे से ग्रस्त हैं, लाखों लोगों को पीने का पानी भी नहीं मिल पा रहा है तथा भूख से मृत्यु के समाचार निरन्तर मिल रहे हैं। ये चिन्ताजनक तथ्य इस बात की ओर संकेत करते हैं कि कृषि को विकसित करने के प्रयास सतत और प्रामाणिक रूप से जारी रखना आवश्यक है ताकि कृषि की दृष्टि से देश को यथाशीघ्र आत्मनिर्भर बनाया जा सके। इससे यह भी पता लगता है कि कृषि उपज में सुधार का अधिकांश श्रेय प्राकृतिक कारणों को है और केवल एक अल्पांश ही हमारे प्रयत्नों का परिणाम है। साथ ही यह आवश्यक है कि कृषकों को उनकी उपज के उचित मूल्य का आश्वासन हो और सिंचाई-जल, अच्छे बीजों तथा उर्वरकों आदि के समय पर मिलने की व्यवस्था हो।

जन-शक्ति और पूर्ण रोजगार—भारतीय जनसंघ का यह मत है कि आर्थिक स्वाधीनता को वास्तविक बनाने के लिए हमारे नियोजन को न केवल हमारी परम्पराओं तथा राजनीतिक ढांचे के अनुरूप होना चाहिए बल्कि उसे मूलतः हमारे अपने साधनों के आकार-प्रकार पर निर्भर होना चाहिए। हमारा सबसे बड़ा साधन हमारी जनशक्ति है। हमने उचित शिक्षा द्वारा न तो मानव का निर्माण किया है और न ही इसकी शक्ति का उचित उपयोग किया है, जिसका अर्थ यह है कि हमने लोगों को काम नहीं दिया। यह तेजी से बढ़ने वाली बेरोजगारी से भी प्रकट है। संविधान के अनुच्छेद 41 में निर्देशक सिद्धान्तों के अन्तर्गत (जिसका उल्लेख चौथी योजना के पहले पृष्ठ पर किया गया है) राज्य पर यह दायित्व डाला गया है कि वह 'काम के अधिकार' की व्यवस्था करे और भारत सरकार के मार्च 1950 के संकल्प के अनुसार नियोजन का उद्देश्य 'सब व्यक्तियों को रोजगार के अवसर देना' कहा गया है। परन्तु वास्तविकता यह है कि इस संबंध में विशेष कुछ किया नहीं गया है। तीन पंचवर्षीय योजनाओं में बेरोजगारी का पिछला बोझ बढ़ा है व बेरोजगारों की संख्या 53 लाख से बढ़ कर 1 करोड़ 20 लाख से अधिक हो गई है। विशेषज्ञों के अनुमान के अनुसार यदि जनसंख्या वृद्धि की तुलना में, राष्ट्रीय आमदनी के प्रतिशत के रूप में नया निवेश चौगुना हो तो नयी श्रम-शक्ति के लिए रोजगार के पर्याप्त नये अवसर उत्पन्न होना संभव होना चाहिए। जहां तक भारत का संबंध है यह अनुपात 1 : 4 से कुछ अधिक ही रहा है, किन्तु इसके बावजूद यदि बेरोजगारी में वृद्धि हुई है तो इसका कारण

इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता कि नियोजन की वरीयताएं गलत रही हैं और उसकी व्यूह-रचना दोषपूर्ण है।

यद्यपि, चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के पहले प्रारूप में एक 'मध्यम प्रकार की तकनीक' विकसित करने की बात कही गई थी किन्तु यह बताने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया कि उस तकनीक का किस तरह से विकास किया जाएगा और उसे किस तरह लागू किया जाएगा। रोजगार चतुर्थ योजना के प्रमुख उद्देश्यों में से एक होना चाहिए और योजना द्वारा इसकी उपेक्षा के कारण प्रारूप सर्वाधिक निराशाजनक है। जनसंघ का विश्वास है कि काम करने के अधिकार को एक मौलिक अधिकार के रूप में भी स्वीकार कर लिया जाना चाहिए। *काम करने का अधिकार आर्थिक लोकतंत्र का उसी प्रकार का एक मूलभूत तत्व है जिस प्रकार वोट का अधिकार राजनीतिक लोकतंत्र का मूलाधार है।* अतः हमारा विश्वास है कि पूर्ण रोजगार प्राप्त करने के लिए एक लक्ष्य निर्धारित किया जाना चाहिए और चौथी योजना उसका प्रथम चरण होना चाहिए भले ही वह चरण इस उद्देश्य की प्राप्ति हो कि पिछली बेरोजगारी का बोझ बढ़ने न दिया जाए।

एकाधिकार पर रोक—सार्वजनिक क्षेत्र से, जिसमें अब तक तीन हजार पांच सौ करोड़ रुपया लगाया जा चुका है। 1967–68 में करदाता को 35 करोड़ रु० का शुद्ध नुकसान हुआ। इससे यह बात स्पष्ट है कि सार्वजनिक क्षेत्र को अविवेकपूर्ण ढंग से और अधिक फैलाने की बजाय आवश्यकता उसे सुदृढ़ करने की है। योजना के 'प्रारूप' में इस आवश्यकता की स्वस्थ अनुभूति का संकेत मिला था जब उसमें यह कहा गया था कि इस क्षेत्र में विनियोजित पूंजी को लाभदायक बनाया जाएगा पूर्व इसके कि उसमें और अधिक धन उंडेला जाए। किन्तु योजना के प्रारूप में सार्वजनिक क्षेत्र के लिए 14,389 करोड़ रु० रखा गया है जबकि निजी क्षेत्र के लिए उसकी पूर्व उपलब्धियों के बावजूद केवल 10,000 करोड़ रु० निर्धारित है। इससे केवल यही पता लगता है कि योजना आयोग या तो पुरानी प्रवृत्तियों को ठीक करने में असमर्थ है, अथवा इसके लिए अनिच्छुक है। आवश्यक है कि न राज्य के हाथों में न कुछ निजी हाथों में एकाधिकार की स्थिति उत्पन्न हो।

सरकारी मितव्ययिता—भारतीय जनसंघ ने सदैव ही सरकार द्वारा मितव्ययिता अपनाए जाने पर बल दिया है। आर्थिक पुनर्निमाण के लिए जनता में पूरी लगन की मनोदशा उत्पन्न करना जरूरी है। इसके लिए और फिजूल-खर्ची को रोकने के लिए भी सरकार को वैभव के प्रदर्शन, अनावश्यक धूमधाम तथा प्रचार के तूमार पर किये जाने वाले खर्च से बचना चाहिए। योजना आयोग ने इस आवश्यकता की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया दिखाई देता है।

भारतीय जनसंघ भारत सरकार तथा योजना आयोग से आग्रह करता है कि उपर्युक्त तथ्यों को दृष्टि में रखकर चतुर्थ पंचवर्षीय योजना का पुनर्निर्धारण किया जाए जिससे वह वस्तुतः एक स्वदेशी योजना बन सके और जनता की अपेक्षाओं को पूरा करने तथा विकास के फलों को जनसाधारण तक पहुंचाने में समर्थ हो सके।

[26 अप्रैल, 1969; बम्बई; पन्द्रहवां सा०अ०]

69.16. चौथी योजना—लक्ष्य बदलो

भारतीय जनसंघ ने अपने बम्बई अधिवेशन में चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के प्रारूप से असहमति प्रकट करते हुए यह मांग की थी कि योजना का पुनर्निर्धारण करके उसे सच्चे अर्थों में स्वदेशी बनाया जाए, जिससे वह जनता की आवश्यकताओं को पूर्ण करने में समर्थ हो सके और विकास के लाभों को जनसाधारण तक पहुंचा सके।

प्रमुख बैंकों के राष्ट्रीयकरण के पश्चात तो चतुर्थ पंचवर्षीय योजना को नये सिरे से तैयार करने की आवश्यकता और भी बढ़ गई है। जैसा कि सरकार का दावा है, बैंक राष्ट्रीयकरण से विकास के लिए अतिरिक्त साधन-स्रोत प्राप्त होंगे और योजना के अन्तर्गत उनके विनियोग की व्यवस्था करनी होगी। राष्ट्रीयकरण के फलस्वरूप निजी क्षेत्र के लिए जो लक्ष्य निर्धारित किये गए थे, उन पर पुनर्विचार करना होगा, क्योंकि अब निजी क्षेत्र अपनी ऋण की आवश्यकताओं के लिए पूर्णतया सरकार पर निर्भर रहेगा।

भारतीय जनसंघ का मत है कि चौथी पंचवर्षीय योजना के निम्नलिखित उद्देश्य होने चाहिएं :

(1) सभी सक्षम व्यक्तियों को पूर्ण रोजगार देने के लिए एक कार्यक्रम बनाना, जिसके अन्तर्गत चौथी योजना के पांच वर्षों में न केवल सभी नये बेरोज़गारों के लिए काम का प्रबन्ध हो, अपितु विद्यमान बेरोज़गारों में से भी कुछ को रोजगार दिया जाए।

शिक्षित बेरोज़गारों, विशेषतः तकनीकी-शिक्षा-प्राप्त व्यक्तियों को अपने पैरों पर खड़े होने का अवसर देने के लिए उन्हें छोटे उद्योग-धन्धे आरम्भ करने की दृष्टि से सस्ते दर पर पूंजी, जमीन, मशीन तथा अन्य साधन उपलब्ध कराये जाएं।

(2) प्रत्येक व्यक्ति के लिए आगामी पांच वर्षों में प्राथमिक शिक्षा तथा प्राथमिक स्वास्थ्य सेवा की सुविधा उपलब्ध की जाएं।

(3) प्रत्येक गांव में सभी व्यक्तियों के लिए शुद्ध पेय जल का प्रबन्ध किया जाए।

(4) निरन्तर बढ़ती हुई आर्थिक विषमता को कम करने के लिए और विकास के लिए अतिरिक्त साधन जुटाने की दृष्टि से न्यूनतम और अधिकतम खर्च की मर्यादा निश्चित करना। जनसंघ का सुझाव है कि इस मर्यादा का अनुपात आज की स्थिति में 1 और 20 होना चाहिए।

(5) मूल्यों को स्थिर रखा जाए, जिससे उत्पादक और उपभोक्ता दोनों के हितों का संरक्षण हो सके। इस दृष्टि से वित्तीय, मौद्रिक, औद्योगिक तथा अर्थ-नीतियों में संशोधन एवं परिवर्तन करना।

(6) जोत की अधिकतम सीमा निर्धारित करने के कानूनों का दृढ़ता से पालन किया जाए। पड़ती भूमि को खेती-योग्य बनाकर उसे भूमिहीनों तथा अलाभकर जोत वाले किसानों में वितरित किया जाए और सेवा सहकारी समितियों द्वारा उन्हें हल, बैल, बीज आदि उपलब्ध कराये जाएं। बेदखलियां रोकी जाएं।

(7) पिछड़े हुए वर्गों, जिनमें हरिजन तथा वनवासी शामिल हैं तथा पिछड़े हुए क्षेत्रों के विकास के लिए निश्चित कार्यक्रम बनाना, जिससे विषमता और क्षेत्रीय असंतुलन में निश्चित कमी हो जिसे अनुभव किया जा सके।

इन उद्देश्यों को सामने रखकर चतुर्थ पंचवर्षीय योजना का पुनर्निर्धारण करने के लिए केन्द्र सरकार को सभी आर्थिक हितों के प्रतिनिधियों तथा अर्थशास्त्रियों का एक गोलमेज सम्मेलन बुलाना चाहिए और उस सम्मेलन में व्यक्त आम राय के आधार पर देश, प्रदेश, जिला तथा ग्राम स्तर के लिए चौथी योजना तैयार की जानी चाहिए।

भारतीय जनसंघ अपनी समस्त शाखाओं को आदेश देता है कि जनसंघ की अर्थ-नीतियों और कार्यक्रमों के सम्बन्ध में जनता को शिक्षित तथा संगठित करने के लिए 15 सितम्बर से एक राष्ट्रव्यापी अभियान आयोजित करें। इसके अन्तर्गत निम्नलिखित मांगों पर बल दिया जाए :

(1) सरकार और राष्ट्रीयकृत बैंक, हाथ-ठेला, बैलगाड़ी, साइकिल-रिक्शा, स्कूटर, टैम्पो, टैक्सी आदि के चालकों को अपने वाहन खरीदने के लिए सरल शर्तों पर ऋण दे।

(2) सरकार और राष्ट्रीयकृत बैंक छोटे किसानों को पम्पिंग सैट, ट्रैक्टर, नलकूप, आदि लगाने के लिए उन्हीं शर्तों पर ऋण दें, जिन पर उद्योगों को दिया जाता है।

राष्ट्रीयकृत बैंक तकावी ऋण का भी प्रबन्ध करें।

(3) धोबी, नाई, कुम्हार, जुलाहे, चर्मकार आदि छोटे कारीगरों को सामान खरीदने के लिए कर्जा देने और माल बनाने तथा माल बेचने के लिए

स्थान की सुविधाएं देने की व्यवस्था हो ।

(4) सरकारी तथा अर्ध-सरकारी संस्थाओं द्वारा सरकारी कर्मचारियों, औद्योगिक मजदूरों तथा गन्दी-बस्ती निवासियों के लिए निर्मित मकानों के स्वामित्व के अधिकार सरल किश्तों में (हायर परचेज पद्धति के आधार पर) उनके निवासियों को दे दिये जाएं ।

(5) आयात-निर्यात लाइसेंस देने की पद्धति में विद्यमान पक्षपात, भ्रष्टाचार तथा अनियमितताओं की जांच के लिए एक उच्चाधिकार-सम्पन्न आयोग बनाया जाए । भारतीय जनसंघ कम्युनिस्ट देशों के साथ तथा रुपयों में होने वाले आयात-निर्यात व्यापार को एक स्वायत्त कॉरपोरेशन के हाथ में देने का सुझाव पहले ही दे चुका है । अन्य देशों के साथ चलने वाले व्यापार के सम्बन्ध में निर्णय प्रस्तावित जांच आयोग के प्रतिवेदन के प्रकाश में किया जाए ।

कार्यसमिति ने शहरी सम्पत्ति की अधिकतम सीमा निश्चित करने के सुझाव पर विचार किया और तय किया कि इस सम्बन्ध में सभी प्रादेशिक कार्यसमितियों की राय जानी जाए । इस सम्बन्ध में निर्णय पटना में दिसम्बर में आयोजित अखिल भारतीय अधिवेशन में किया जाए ।

[30 अगस्त 1959; दिल्ली, के०का०स०]

72.14. पांचवीं योजना के प्रति दृष्टिकोण

वर्तमान आर्थिक स्थिति अत्यन्त गम्भीर है । इसका सीधा दोष सरकार की गलत आर्थिक नीतियों, अदूरदर्शी आयोजन तथा कार्यक्रमों की क्रियान्विति के संकल्प के अभाव को दिया जा सकता है ।

सरकार की विफलता का एक गम्भीर परिणाम अर्थव्यवस्था की विकास-दर में तेजी के साथ गिरावट है । चतुर्थ योजना में 5·5 प्रतिशत प्रति वर्ष विकास दर का लक्ष्य रखा था किन्तु योजना के प्रथम वर्ष 1969-70 में विकास-दर 5·3 प्रतिशत रही । 1970-71 में यह 5 प्रतिशत थी तथा 1971-72 में 1·5 प्रतिशत रही । 1972-73 में इसमें और 0·5 प्रतिशत गिरावट अनुमानित है । सरकार ने चतुर्थ योजना के उत्पादन लक्ष्यों में गिरावट होना पहले ही स्वीकार कर लिया है । खाद्यान्न का लक्ष्य चतुर्थ योजना के अन्तिम वर्ष 1973-74 के लिए 12 करोड़ 80 लाख मीट्रिक टन निर्धारित किया गया था जबकि सरकार ने घोषणा की है कि केवल 11 करोड़ मीट्रिक टन का उत्पादन होगा, अर्थात 17 प्रतिशत की गिरावट होगी । जूट, रुई गन्ना जैसी नकद फसलों में 15 से 30 प्रतिशत के बीच गिरावट अनुमानित है ।

औद्योगिक उत्पादन में गिरावट चौंकाने वाली है । उर्वरक के उत्पादन

में गिरावट 25 प्रतिशत है तथा डीजल इंजिनों में 60 प्रतिशत से अधिक । इस्पात का उत्पादन लक्ष्य का केवल तीन-चौथाई होगा । कोई भी महत्वपूर्ण उद्योग ऐसा नहीं है, जिसमें उल्लेखनीय गिरावट न हो । राष्ट्र के सम्मुख उपस्थित विद्युत्त का गंभीर संकट इसी गिरावट तथा घटिया आयोजन का परिणाम है ।

बेरोजगारी की अवस्था और अधिक बिगड़ गई है । आज 4·5 करोड़ नागरिक रोजगार की तलाश में सड़कों एवं गांवों में घूम रहे हैं । यह सरकार की आर्थिक नीतियों की विफलता का एक प्रमाण है ।

सरकार की निर्णय-क्षमता को ही लकवा मार गया है । यह इसी से प्रकट है कि 'गरीबी हटाओ' कार्यक्रमों की क्रियान्विति में निन्दनीय विलम्ब हुआ है । 50 करोड़ रु० के ग्रामीण रोजगार के कार्यक्रम हवा में ही रहे क्योंकि तैयार की गई परियोजनाएं ही केवल 34 करोड़ रु० की थी । वास्तविक खर्चा मात्र 10 करोड़ रु० का हुआ । शिक्षित बेरोजगारों के लिए 25 करोड़ रु० के कार्यक्रम इसीलिए टांय-टांय फिस्स हो गए कि आज तक हुआ व्यय केवल 9 करोड़ रु० था । इसी तरह छोटे तथा मध्यम किसानों के लिए निश्चित 115 करोड़ रु० के कार्यक्रम विफल हो गए क्योंकि वित्तमंत्री के अनुसार सरकार काफी समय तक यह निर्णय नहीं कर पाई थी कि छोटे तथा मध्यम किसान कौन हैं । ग्रामीण जलवितरण योजना को, जिसका बहुत ढोल पीटा गया है, अभी तक अंतिम रूप नहीं दिया गया है ।

कार्यसमिति इसी संदर्भ में पुनर्निर्धारित पंचवर्षीय योजना के प्रति दृष्टिकोण को देखती है । पांचवीं योजना में विकास की दर का लक्ष्य 5·5 प्रतिशत रखा गया है जैसा कि प्रथम, द्वितीय, तृतीय, वार्षिक एवं चतुर्थ योजनाओं में रखा गया था । सरकार की विचार-शक्ति इतनी दिवालिया हो गई है कि वह 20-वर्षीय आयोजन के पश्चात आज भी 5·5 प्रतिशत विकास दर पर अड़ी हुई है ।

पंचवर्षीय योजना के प्रति दृष्टिकोण का दस्तावेज जनता में से गरीबी हटाने की बड़ी-बड़ी बातें तो करता है, किन्तु पूर्ण रोजगार का कोई वायदा नहीं करता । यह पिछली योजनाओं के अनुसार अधिक रोजगार के वायदों को ही दोहराता है । जहां तक भयावह गरीबी में रह रही 40 प्रतिशत जनता को जीवन-यापन के न्यूनतम स्तर की आश्वस्ति का प्रश्न है, यह दस्तावेज 25 करोड़ नागरिकों को केवल यह कहकर छोड़ देता है कि योजना में उनके लिए 'अधिक संतोषजनक जीवन-स्तर' उपलब्ध होगा । पांचवीं योजना सरकार की इस धारणा पर बनाई गई प्रतीत होती है कि भारत की जनता इस प्रकार के वायदों पर संतुष्ट रहेगी । प्रतीत होता है कि सरकार ने पिछले पच्चीस वर्षों के अनुभव से कुछ भी नहीं सीखा है । यदि हिसाब किया जाए तो सिद्ध होगा कि 5·5

प्रतिशत की विकास-दर निम्न स्तर पर जीवनयापन कर रही 40 प्रतिशत जनता को 1980 तक भी न्यूनतम जीवन-स्तर प्रदान नहीं कर सकेगी और न ही बेरोजगारी की वर्तमान स्थिति को और गिराने से रोक सकेगी।

सरकार द्वारा दिए गए आत्मनिर्भरता के सभी वायदों के साथ इस पुर्ननिर्धारित दृष्टिकोण के दस्तावेज में विश्वासघात किया गया है। सरकार अब मित्र देशों से 550 करोड़ रु० की वर्तमान वार्षिक सहायता के स्थान पर 600 करोड़ रु० की विदेशी सहायता की आशा करती है। सरकार फिर से खाद्यान्न आयात करने की बात कर रही है। यह आयात संभवत: अमेरिका से ही करने की बात है क्योंकि रूस आदि समाजवादी देश स्वयं ही खाद्यान्नों का आयात कर रहे हैं।

पांचवीं योजना के स्थान पर स्वदेशी योजना—अनिवार्य आवश्यकताओं के लिए किसी भी देश पर निर्भरता का खतरा रूस से मिले अनुभवों के कारण उजागर हो गया है। रूस के दबाव के अन्तर्गत सरकार ने अपनी उर्वरक तकनीक को नेप्था के स्थान पर (जिसकी हमारे पास प्रचुर मात्रा है) यूरिया पर आधारित किया है जो कि कोमिकोन देशों से आयातित किया जाता है। आज चूंकि रूस स्वयं खाद्यान्नों में कमी का देश है, अत: अपने स्वयं के उर्वरक-उत्पादन के लिए यूरिया की पूर्ति के लिए वह पूर्वी यूरोपीय देशों को बाध्य कर रहा है तथा इस प्रकार से हमारे उर्वरक उत्पादन को गम्भीर धक्का लग रहा है। आत्मनिर्भरता का यह अर्थ नहीं कि अमरीकी सहायता पर निर्भरता समाप्त कर के रूस पर निर्भरता बढ़ाई जाए। हमारी आर्थिक योजनाओं को रूसी योजनाओं से जोड़ने की बातें गम्भीर चिन्ता की दृष्टि से देखी जा रही हैं। आत्मनिर्भरता का अभिप्राय अर्थव्यवस्था को रूस के चंगुल से उसी प्रकार मुक्त रखना है जिस प्रकार अमेरिका के चंगुल से। कार्यसमिति इसलिए मांग करती है कि पांचवीं योजना के पुर्ननिर्धारित दृष्टिकोण को समाप्त किया जाए तथा उसके स्थान पर स्वदेशी योजना लागू की जाए जिसके अन्तर्गत निम्न बातें आती हैं :

(1) आर्थिक विकास की दर का लक्ष्य 10 प्रतिशत प्रतिवर्ष होना चाहिए, जिसमें इस शताब्दी के अन्त तक पूर्ण रोजगार तथा न्यूनतम जीवन-स्तर की आश्वस्ति दी जाए।

(2) प्राथमिकताओं का निर्धारण छोटी पूंजी तथा अधिक श्रम वाले उद्योगों पर आधारित हो। क्षेत्रीय असमानताओं को मिटाने के लिए पूंजी-निवेश का पुर्नवितरण किया जाए।

(3) अविलम्ब आत्मनिर्भरता व स्वतंत्र आयोजन का मार्ग अपनाया जाए।

(4) लघु एवं कुटीर उद्योगों को तकनीकी-ज्ञान (नो-हाऊ) तथा हाट बाजार की सुविधाएं देने हेतु एक सरकारी एजेंसी स्थापित की जाए।

(5) उत्पादन के क्षेत्र निर्धारित किये जाएं जिससे कि साड़ियां, साबुन, रेडियो जैसी उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन शुद्ध रूप से छोटे उद्योग के क्षेत्र में आये तथा इन वस्तुओं का उत्पादन करने वाले बड़े उद्योगों का अब अधिक विस्तार रोक दिया जाए।

(6) सरकार की फैसला करने की क्षमता को ठीक किया जाए तथा लाइसेंस प्रणाली को नौकरशाही की मनमानी से मुक्त किया जाए।

[20 नवम्बर, 1972; जयपुर, के०का०स०]

अध्याय 2

खाद्य और कृषि सिंचाई और बिजली

जनसंघ की नीति सम्बन्धी घोषणाओं में अधिकतम कृषि उत्पादन को सम्मानपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है। दल ने बताया है कि प्रति हैक्टर उत्पादन कम होना ही कृषि की मौलिक समस्या है। जिस देश में 14 करोड़ हैक्टर भूमि पर खेती होती हो और 14 करोड़ 40 लाख लोग कृषि करते हों, उस देश में उत्पादन कम होना, दल की दृष्टि से लज्जा का विषय तो है ही, इससे विस्तार की सम्भावना का भी पता चलता है। प्रति हैक्टर औसत उत्पादन 0·60 मीटरी टन की दर से इस समय देश में 11 करोड़ मीटरी टन अनाज पैदा होता है। हमारा प्रति हैक्टर उत्पादन दुनिया में सबसे कम है। उदाहरणस्वरूप, चीन का औसत उत्पादन भारत से दूना है। अगर भारत भूमि की उत्पादकता को दूना कर सके तो अनाज की खेती वाली भूमि का क्षेत्र बढ़ाये बिना 22 करोड़ मीटरी टन अनाज देश में पैदा करके अन्न समस्या को हल किया जा सकता है।

इस प्रकार जनसंघ की नीति इस बुनियादी लक्ष्य को सामने रखकर निश्चित की गई है कि प्रति हैक्टर पैदावार बढ़ायी जाए। जोत की सीमाबन्दी का जो समर्थन दल करता है उसका कारण यही है कि जहां दल का यह विश्वास है कि इस तरह से भूमि का सही और विषमतायुक्त वितरण किया जा सकता है, वहां उत्पादन बढ़ना भी सम्भव है। छठे दशक के प्रारम्भ में भूमि-सुधार के पक्ष में जो तर्क दल के द्वारा दिए गए उनमें उत्पादन बढ़ाने पर दृष्टि केन्द्रित थी (प्रस्ताव 55.11)। दल ने पट्टेदारी व्यवस्था में क्रान्तिकारी परिवर्तन का जो बचन दिया है उसका उद्देश्य भूमि की उत्पादकता बढ़ाने के साथ-साथ ग्राम जीवन का कायाकल्प करना भी है (घोषणा-पत्र—1957)। वह किसान के स्वामित्व-अधिकार में दृढ़ता से विश्वास करता है और उसने सामुदायिक खेती के खतरों के खिलाफ बराबर चेतावनी दी है (प्रस्ताव 57.16)।

भूमि-सुधार के अलावा, दल ने प्रति हैक्टर उत्पादन बढ़ाने के लिए कई अन्य रचनात्मक सुझाव रखे, इनमें से कुछ यह हैं :

(1) साल में कई फसलें खेत में उगाना : साल में प्रति एकड़ से अधिक फसल उगाने वाली भूमि का जो प्रतिशत दुनिया के देशों में है, भारत उसमें सबसे नीचे है (घोषणा-पत्र—1954)।

(2) विशाल जल-स्रोत प्रबन्ध कार्यक्रम : लघु सिंचाई योजना, नलकूप और कम अश्वशक्ति वाले पम्पों पर यह कार्यक्रम आधारित हो; इसके साथ ही बांधों, तालाबों आदि को सुधारने का ग्रामीण कार्यक्रम भी सम्बद्ध होना चाहिए (प्रस्ताव 58.30)।

(3) खाद, बीज, कीटनाशक दवाओं आदि के कुशल एवं सस्ते वितरण के लिए एक कृषक-सेवा-सहकारिता योजना (घोषणा-पत्र—1962, प्रस्ताव 58.32)।

(4) कृषि और उद्योग के सही सम्बन्धों और दोनों क्षेत्रों के बीच व्यापार की उचित शर्तों पर आधारित एक उचित मूल्य नीति (घोषणा-पत्र—1957)।

(5) फसल और पशु बीमा तथा फसलों के न्यूनतम मूल्य (घोषणा-पत्र—1954), खेतिहर मजदूर के लिए न्यूनतम वेतन (घोषणा-पत्र—1967), कृषक पर आने वाली आपदाओं को कम करना और भूमि-सुधारों को शीघ्रता से लागू करना (प्रस्ताव 58.32),

सामुदायिक कृषि (प्रस्ताव 59.01), बड़े पैमाने पर यन्त्रीकरण (प्रस्ताव 57.17) और कृषि जिन्सों के थोक व्यापार पर सरकारी कब्जे के विरोध पर आधारित एक सन्तुलन बीमा योजना (प्रस्ताव 58.25)।

(6) खाद्यान्नों के सम्बन्ध में 'एक सहायक सरकारी भण्डारण' ताकि किसानों की शोषण-मुक्त अनाज हाट-व्यवस्था को बनाये रखा जा सके।

(7) आवा-जाही के मार्गों और गोदामों के निर्माण, बाढ़ नियन्त्रण और कृषि आत्म-निर्भरता के लिए एक 'विशाल अवस्थापना निर्माण कार्यक्रम' (सिद्धान्त और नीतियां)।

(8) सब्जियां उगाने, दुग्धशाला, पशुपालन, गोसंरक्षण आदि के लिए एक 'सरकार समर्थित सहायक गतिविधि कार्यक्रम' जिससे किसानों की आय बढ़ाने के साथ-साथ उनके आश्रितों के लिए रोजगार की व्यवस्था हो सके (घोषणा-पत्र—1954; सिद्धान्त और नीतियां)।

संक्षेप में, भारतीय अर्थतंत्र का कायाकल्प करके उसे तेज आर्थिक विकास के पथ पर चलाने के साधन के रूप में जनसंघ कृषि को सर्वोच्च प्राथमिकता देता है, लेकिन उसकी कृषि नीति इसकी अनुमित नहीं देती कि किसान से उसकी भूमि और आज़ादी छीन ली जाए।

52.08. अनाज की विषम समस्या; कुछ सुझाव

देश में अनाज के उत्पादन और वितरण दोनों ही दृष्टियों से बिगड़ती स्थिति पर विचार करने के बाद देश के विभिन्न भागों में खासकर अन्न सहायता समाप्त किये जाने के बाद से, कीमतों में वृद्धि पर कार्यसमिति अपनी गहरी चिन्ता प्रकट करती है। देश के विभिन्न स्थानों पर अनाज की भारी कमी, यहां तक कि अकाल की सूचनाएं भी उसे मिली हैं। इस तथ्य को प्रधानमंत्री ने अपने ताजे ब्रॉडकास्ट में भी स्वीकार किया है। क्रय-शक्ति घट जाने से जनता की कठिनाइयां और बढ़ गई हैं। चूंकि सरकार ने बार-बार घोषित किया कि देश में कुल मिलाकर अन्न और पूर्ति की कोई दिक्कत नहीं, अतः कोई कारण नहीं कि देश में कहीं भारी तंगी हो, जब तक कि कुप्रबन्ध के कारण ही ऐसा हो रहा हो। इस समस्या को हल करने के लिए कार्यसमिति नीचे लिखे रचनात्मक उपाय सुझाती है :

(1) अकाल पीड़ित क्षेत्रों में जनता के कष्ट दूर करने को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जाए और ऐसी व्यवस्था की जाए कि यह संकट अन्य क्षेत्रों में फैलने न पाये। ऐसा इस प्रकार किया जा सकता है :

(i) पात्र व्यक्तियों की उदारतापूर्वक सहायता।

(ii) नमूने के तौर पर सहायता कार्य शुरू करना और पर्याप्त मजदूरी का भुगतान करना।

(iii) सस्ते दामों पर अनाज की बिक्री।

(2) जिन क्षेत्रों में हाल में ही अनाज के भाव बढ़े हैं वहां पर्याप्त मात्रा में अनाज के वितरण की व्यवस्था करके कीमतों को शीघ्र ही बढ़ने से रोकना; लक्ष्य यह होना चाहिए कि मूल्य कंट्रोल दर तक आ जाएं।

(3) सरकार के पास काफी मात्रा में सुरक्षित स्टॉक की व्यवस्था हो जाने के बाद धीरे-धीरे कंट्रोल उठाना और जमाखोरों, मुनाफाखोरों तथा चोरबाजारियों के खिलाफ द्रुत एवं प्रभावशाली कदम उठाना; इस उद्देश्य से विशेष जनता-अदालतों की भी स्थापना करना ताकि आम जनता यह अनुभव करे कि सरकार किसी समाज विरोधी तत्व को आश्रय नहीं दे रही।

(4) इसकी व्यवस्था कर लेने के बाद कि प्रथम सोपान में औद्योगिक मजदूरों के खाद्य-क्षेत्र अन्य क्षेत्रों से प्रथक रहें और यदि आवश्यक हो तो केन्द्र उनके लिए पूर्ति की विशेष व्यवस्था करे, खाद्यान्नों की आवा-जाही पर लगी

पाबंदियों को खत्म करना ।

(5) गल्ला वसूली की व्यवस्था में ग्रामूलचूल परिवर्तन करना जिससे छोटे उत्पादकों पर कोई दुष्प्रभाव न पड़े ।

(6) ठीक समय पर ग्रौर पर्याप्त माला में बीज की सप्लाई जिससे ग्रगली फसल के लिए कोई कठिनाई न हो ।

समिति को यह जानकर खेद हुग्रा कि पिछले कुछ वर्षों में ग्रधिक ग्रन्न उपजाग्रो ग्रान्दोलन पर यद्यपि 75 करोड़ रु० खर्च किये गये, तथापि उसका कुल मिलाकर जो नतीजा निकला वह बेहद निराशाजनक रहा । स्पष्ट है कि विदेशों से ग्रायात पर देश निर्भर नहीं रह सकता ।

सर्वदलीय खाद्य समितियां—खाद्य समस्या का ग्रंतिम हल यह है कि देश के भीतर ही ग्रनाज की पैदावार बढ़ायी जाए । यह लक्ष्य व्यापक पैमाने पर भूमि-सुधार करके तथा उत्पादकों को इसके लिए ग्रावश्यक प्रोत्साहन देकर प्राप्त किया जा सकता है । समिति इस बात पर जोर देना चाहती है कि सरकार की खाद्यान्न संबंधी किसी नीति को चलाने के लिए यह जरूरी है कि प्रशासन कुशल एवं ईमानदार हो तथा उसे जनता का भारी समर्थन प्राप्त हो । खाद्य दलगत राजनीति का विषय नहीं हो सकता । ग्रधिक पैदावार ग्रौर उत्तम वितरण का लक्ष्य पूरा करने के लिए जनसंघ सरकार के साथ सहयोग करने को तैयार है । वह मांग करता है कि केन्द्र, प्रांतीय ग्रौर जिला स्तर पर खाद्य समितियां तत्काल नियुक्त की जाएं । इनमें सब दलों के प्रतिनिधियों को शामिल किया जाए ।

[14 जून, 1952; दिल्ली, के०का०स०]

52.10. ग्राय ग्रनुपात 1 : 20 व न्यूनतम जोतसीमा

जनसंघ के ग्रार्थिक कार्यक्रम पर विचार हुग्रा ग्रौर कार्यसमिति ने कुछ स्पष्टीकरण करने का फैसला किया । जमींदारी उन्मूलन के संबंध में स्पष्ट किया गया कि मुग्रावजा पुनर्वास-ग्रनुदान के रूप में ही हो सकता है ग्रौर वह क्रमानुसार घटना या बढ़ना चाहिए । न्यूनतम जोत की सीमा ग्रच्छी सिचाई वाली 5 एकड़ भूमि के बराबर होनी चाहिए ।

ग्राय की ग्रसमानता को कम करने की दृष्टि से यह फैसला किया गया कि ग्रधिकतम ग्रौर न्यूनतम ग्राय का ग्रनुपात 1 : 20 से ज्यादा नहीं होना चाहिए । समिति ने स्वीकार किया कि देश कुशासन ग्रौर भ्रष्टाचार से पीड़ित है । उसने मांग की कि दोषी व्यक्तियों पर मुकदमा चलाकर उन्हें शीघ्र कठोर दंड दिया जाना चाहिए । इसके लिए या तो विशेष कानून बनाया जाए या

फिर वर्तमान कानूनों में ही ग्रावश्यक संशोधन किये जाएं ।

[14 जून, 1952; दिल्ली, के०का०स०]

52.15. गोहत्या निषेध की राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की मांग का पूर्ण समर्थन

प्रागैतिहासिक काल से भारत में गोहत्या निषिद्ध रही है ग्रौर भारतीय संस्कृति का यह एक सर्वमान्य प्रतीक रहा है । स्वतंत्रता प्राप्ति के पहले राष्ट्रीय नेताग्रों ने स्वराज्य के ही समान गोवध निषेध को भी राष्ट्रीय ध्येय के रूप में स्वीकार कर देश को ग्राश्वस्त किया था ।

यह सब होते हुए स्वतंत्रता लाभ को 5 वर्ष बीतने तक भी जब वर्तमान शासन की नीति इस दिशा में ग्रग्रसर होती हुई दिखाई नहीं दी तब राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने जनता के स्वाक्षर प्राप्त कर गोवध निषेध की मांग के पक्ष में देश में प्रबल जनमत संग्रह कर राष्ट्र की महान् सेवा की है ग्रौर जनसंघ उसके नेताग्रों तथा स्वयंसेवकों को इस महान यज्ञ के लिए बधाई देता है ।

साथ ही जनसंघ को यह देखकर दुःख हुग्रा कि प्रधानमंत्री श्री नेहरू ने ग्रपने सार्वजनिक भाषणों में यह ग्राग्रह लक्षित किया है कि केन्द्रीय विधान द्वारा वे गोवध निषेध न होने देंगे, यद्यपि प्रादेशिक विधानों के बनाये जाने में उन्हें पिछले वर्षों के समान ग्रब कोई ग्रापत्ति नहीं है । लोकमत के इस सार्वदेशिक प्रदर्शन के पश्चात इस प्रकार का कथन लोकतंत्रीय शासन के प्रधानमंत्री के लिए ग्रनुचित ही नहीं, यह उनकी बढ़ती हुई फॉसिस्ट प्रवृत्ति का चिन्ह है जो खेद की बात है । प्रदेशों में 20-25 भिन्न-भिन्न विधान बनने की ग्रपेक्षा इस महान राष्ट्रीय मांग को राष्ट्रीय रूप से एक केन्द्रीय विधान द्वारा ही पूर्ति की जानी उचित है ग्रौर जनसंघ प्रधानमंत्री से ग्रनुरोध करता है कि इस विषय में ग्रपने ग्रनुचित व्यक्तिगत ग्राग्रह को त्यागकर लोकतंत्रीय पद्धति के ग्रनुसार लोकमत का सादर पालन करें ।

जनसंघ परमश्रेष्ठ श्री राष्ट्रपति से भी सादर निवेदन करता है कि भारत की प्राचीन ग्रौर दृढ़बद्धमूल इस पुण्य मर्यादा की पुनः स्थापना के लिए शासन को जनता के उद्गत भावों का समादर करने के लिए बाध्य कर ग्रपने उच्च पद की उपयोगिता, क्षमता ग्रौर सम्मान की रक्षा कर देश के प्रति ग्रपने कर्तव्य का पालन करें । इस प्रबल जनमत प्रदर्शन पर भी यदि शासन ने ग्रपनी ग्रशुद्ध नीति का परित्याग न किया तो जनसंघ की दृष्टि में गोहत्या निषेध के ग्रान्दोलन को ग्रागे बढ़ाना ग्रनिवार्यरूपेण ग्रावश्यक हो जाएगा ।

जनसंघ राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को विश्वास दिलाता है कि इस दिशा में जो भी कार्यवाही वह करेगा उसमें जनसंघ उसका पूर्ण सहायक होगा ।

[31 दिसम्बर, 1952; कानपुर, पहिला सा०अ०]

53.13. कोसी बाढ़

जनसंघ के अखिल भारतीय प्रतिनिधियों का यह सम्मेलन उत्तर बिहार तथा पूर्वी उत्तर प्रदेश में बाढ़जनित भयंकर उपद्रवों पर जिनके कारण प्रतिवर्ष असंख्य जनों को मलेरिया, हैजा, काला जार से जान से हाथ धोना पड़ता है, चिन्ता प्रकट करता है ।

यद्यपि 1937 से ही सरकारी अधिकारियों द्वारा कोसी नदी संबंधी कागजी जांच-पड़ताल की खबर मिलती रही, फिर भी इस दिशा में कोई समुचित एवं ठोस कदम अभी तक नहीं उठाया गया । स्वतन्त्रता के पश्चात, स्वदेशी सरकार से गत चुनाव के अवसर पर आशा बंधी थी कि अब कोसी उत्तर बिहार वालों के लिए वरदान बन जाएगी । किन्तु कोसी योजना अब तक 'लाल फीतों' के अन्दर दबी हुई है ।

अतः यह सम्मेलन केन्द्रीय और बिहार राज्य सरकार से अनुरोध करता है कि इस दिशा में अविलम्ब ठोस कदम उठाकर इस क्षेत्र को बरबादी और तबाही से बचाये एवं जब तक यह योजना पूर्ण नहीं होती तब तक स्थायी तौर पर सहायता का समुचित प्रबन्ध करें ।

[15 अगस्त 1953; प्रयाग, भा०प्र०स०]

53.19. सरकार का उपेक्षापूर्ण रवैया

समिति को यह जानकर बेहद पीड़ा हुई है कि कानून द्वारा गोहत्या पर रोक लगाने की भारत की जनता की सर्वसम्मत मांग के प्रति सरकार ने घोर उदासीनता का रवैया अपना रखा है । यह लोकतंत्र और सु-शासन से इनकार करने के समान है और शासक दल के माथे पर कलंक के टीके की तरह है । जनसंघ सरकार से अनुरोध करता है कि वह जनता के धैर्य की अधिक परीक्षा न ले और अपनी दुराग्रहपूर्ण नीति को त्याग कर अविलम्ब आवश्यक कानून पास करे ।

[20 दिसम्बर, 1953; दिल्ली, के०का०स०]

54.15. खेतिहर मजदूर

भारतीय जनसंघ पांच करोड़ से भी अधिक खेतिहर मजदूरों की द्रुतगति

से बिगड़ती हुई स्थिति के प्रति विशेष चिंता प्रकट करता है । साथ ही इन मजदूरों की भलाई के लिए सन 1948 में पारित 'अल्पतम मजदूरी कानून' (Minimum Wage Act) को विभिन्न प्रान्तीय सरकारों द्वारा लागू करने में जो ढिलाई की जा रही है, उसके प्रति असंतोष प्रकट करता है ।

अतः भारतीय जनसंघ यह मांग करता है कि सन् 1948 के अल्पतम मजदूरी कानून को सभी राज्यों के खेतिहर मजदूरों के लिए त्वरित लागू किया जाए । अपने-अपने जिलों में समय-समय पर मजदूरी को निश्चित करने के लिए सभी जिलों में काश्तकारों एवं खेतिहर मजदूरों को बराबर-बराबर संख्या में लेकर जिला मजदूरी परिषदें (Distrcit Wage Councils) का निर्माण किया जाए ।

खेतिहर मजदूरों की अतिरिक्त आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विशेषकर वर्ष के उस भाग में जब खेती बन्द रहती है, इन मजदूरों की बेरोज़गारी को दूर करने के लिए सरकार देहातों में कुटीर उद्योगों की स्थापना करे ।

[25 जनवरी, 1954; दूसरा सा० अ०]

54.21. उत्तर-पूर्व भारत में बाढ़

प्रतिनिधि सभा असम, बंगाल, बिहार तथा उत्तर पूर्वी भारत के अनेक क्षेत्रों में भीषण बाढ़ से हुई धन-जन की अपार क्षति पर गहरी चिन्ता व्यक्त करती है और पीड़ितों के प्रति हार्दिक सहानुभूति प्रकट करती है ।

प्रतिनिधि सभा भारत सरकार तथा संबंधित राज्य सरकारों से अपील करती है कि बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों में तत्काल राहत कार्य शुरू करे और ऐसी दीर्घ सूत्री योजनाएं बनाये जिससे बाढ़ की बार-बार की विभीषिका से लोगों को मुक्ति मिल सके ।

प्रतिनिधि सभा भारतीय जनसंघ की स्थानीय समितियों द्वारा किये गए अथवा किये जा रहे राहत कार्यों पर संतोष प्रकट करती है और साथ ही यह प्रस्ताव करती है कि राहत कार्य सुचारू रूप से चलाने के लिए एक समिति गठित की जाए । इस गंभीर प्राकृतिक संकट की स्थिति में यह अनिवार्य प्रतीत होता है ।

[19 अगस्त, 1954; इन्दौर, भा०प्र०स०]

54.22. भारत-पाक नहरी जल वार्ता

प्रतिनिधि सभा यह महसूस करती है कि पंजाब नहरी पानी के विवाद में भारत सरकार ने विश्व बैंक के सामने जिन प्रस्तावों पर सहमति प्रकट की

है और पाकिस्तान को सुविधाएं देने को राजी हो गई, वे हमारे लिए घातक हैं, क्योंकि उससे राजस्व की भारी क्षति होगी। और, अब चूंकि पाकिस्तान ने इन प्रस्तावों को भी ठुकरा दिया है, यह सर्वथा उचित होगा कि भारत सरकार किसी भी हालत में पुनः वार्ता शुरू न करें।

[19 अगस्त, 1954; इन्दौर, भा०प्र०स०]

54.25. गोहत्या व गोसंवर्धन

गोहत्या पर पाबन्दी लगाने की देशव्यापी मांग के सम्बन्ध में सरकार ने जो दुराग्रहपूर्ण नीति अपना रखी है यह समिति उसकी कठोर शब्दों में निन्दा करती है। गाय देश के सम्मान का विषय है और साथ ही भारतीय अर्थतंत्र का आधार है। देश की बहुमुखी समृद्धि के लिए हमारे पशुधन की रक्षा और उसका सुधार करना अनिवार्य है।

समिति का यह निश्चित मत है कि गो-संवर्धन की बहुप्रचारित योजनाएं जो अब तक फाइलों में ही बन्द हैं, तब तक निरर्थक हैं जब तक कानून बनाकर गोहत्या पर पूरी तरह पाबन्दी नहीं लगा दी जाती।

सरकार ने इस सच्ची राष्ट्रीय मांग को बार-बार और जिस उद्दंडता के साथ ठुकराया है, उसको देखते हुए जनता के सामने अब इस अंतिम उपाय के अलावा और कोई उपाय शेष नहीं कि वह सत्याग्रह करे।

गोहत्या विरोधी आन्दोलन को कुचलने के लिए अधिकारियों ने जो दमनकारी नीति अपनायी है, समिति उसकी भी निन्दा करती है और सरकार को चेतावनी देती है कि दमन से आन्दोलन दबने वाला नहीं बल्कि इससे जन-मानस में और कटुता बढ़ेगी तथा देश की जनता तब तक चैन से नहीं बैठेगी जब तक भारत के पवित्र माथे पर लगे गोहत्या के कलंक को मिटा नहीं दिया जाता।

[7 नवम्बर, 1954; दिल्ली, के०का०स०]

55.11. जोत सीमा तीस एकड़

भूमि-सुधार का मुख्य उद्देश्य भूमिहीनों को काम देना तथा पैदावार की वृद्धि करना होना चाहिए। इसकी पूर्ति के लिए जिन दो सिद्धान्तों का पालन आवश्यक है वे यह हैं कि कृषक को उसके श्रम का पूरा लाभ मिले और क्षेत्रपाल ही भूमि का स्वामी माना जाए। इसके लिए कृषिव्यवस्था में आमूल परिवर्तन करके ग्राम-समाज की पुनः रचना की जानी चाहिए।

अतः भारतीय जनसंघ की प्रतिनिधि सभा सरकार से अनुरोध करती है कि :

(1) जागीरदारी, जमींदारी तथा इस प्रकार की अन्य प्रथाओं के कारण भूमि का उचित रूप से वितरण न होकर वह कुछ हाथों में केन्द्रित हो गई है। इससे उत्पादन में बाधा पहुंचने के साथ-साथ भूमिहीन कृषकों को जीवन-निर्वाह के हेतु धन्धा मिलना भी कठिन हो रहा है। अतः कुछ हाथों में केन्द्रित भूमि का भूमिहीन कृषकों में अविलम्ब वितरण कराया जाए। *भूमि-वितरण का न्यूनतम व अधिकतम आधार सिंचाई के प्रबन्धों से युक्त भूमि का क्रमशः 5 व 30 एकड़ अथवा उसकी पैदावार के बराबर हो।*

(2) आज तक देश के कृषक वर्ग का मध्यवर्ती स्वत्वभोगियों के कारण शोषण होता रहा है जिसके परिणामस्वरूप न केवल कृषकों की आर्थिक स्थिति ही विषम हुई है, अपितु उत्पादन की वृद्धि में भी बाधा पहुंची है। राज्य एवं क्षेत्रपाल के बीच सीधा सम्बन्ध स्थापित करने के लिए यह आवश्यक है कि भूमि के वर्तमान जोतने वाले को क्षेत्रपाल मानकर मध्यवर्ती स्वत्वभोगियों को समाप्त किया जाए और क्षेत्रपाल को भूमि से बेदखल करने पर प्रतिबन्ध लगाकर उसके अन्य अधिकारों की रक्षा की जाए। इसके परिणामस्वरूप जो भूस्वामी निराश्रित हों, सरकार उनके पुनर्वास की व्यवस्था करे।

(3) अनावृष्टि, अतिवृष्टि, टिड्डी तथा कृषि-सम्बन्धी अन्य रोगों के फलस्वरूप कृषकों में पैदावार के सम्बन्ध में सदैव अनिश्चितता का भाव रहता है। इसके निराकरण के लिए सरकार को अविलम्ब फसल एवं पशुधन का बीमा कराने का प्रबन्ध करना चाहिए।

(4) देश की आर्थिक स्थिति को सन्तुलित बनाए रखने के लिए भूमि से उत्पादित पदार्थों के भावों में स्थिरता नितान्त आवश्यक है। आकस्मिक कारणों से भावों में वृद्धि अथवा गिरावट न केवल समाज के आर्थिक सन्तुलन को ही बिगाड़ देती है, बल्कि कृषकों में भी एक अनिश्चय की भावना को जन्म देती है जिसका परिणाम पैदावार पर होता है। इस प्रकार की अनिश्चितता को समाप्त करने के लिए सरकार को उपज के न्यूनतम भाव तय करना चाहिए जिससे कृषकों को उनके परिश्रम का पूरा लाभ मिल सके।

[1 जून, 1955; जोधपुर, तीसरा सा०अ०]

55.18. पशुधन संरक्षण विधेयक

पशुधन संरक्षण विधेयक के संबंध में प्रधानमंत्री और कांग्रेस संसदीय पार्टी के रवैये की यह समिति निंदा करती है। विधेयक पर विचार करने में देरदार करने के इरादे से जो तरीके अपनाये गये और विधेयक पर अंतिम मतदान से पूर्व कांग्रेसी संसद सदयों को विधेयक का विरोध करने का जो सचेतक जारी

किया गया, उससे सामान्य संवैधानिक प्रक्रिया के साथ ग्रांख मिचौनी खेलने, जनता को धोखा देने ग्रौर गोरक्षा के सवाल पर जनमत की जानबूझ कर उपेक्षा करने की प्रवृत्ति का पता चलता है ।

समिति ऐसा महसूस करती है कि गोहत्या निरोध का विचार यथार्थ बनकर रहेगा क्योंकि जनता कृतसंकल्प है कि इस राष्ट्रीय मांग के बारे में किसी के ग्रादेशों के ग्रागे नहीं झुकेगी । समिति जनसंघ के सभी घटकों का ग्राह्वान करती है कि वे राज्य सरकारों को गोहत्या निरोधक कानून बनाने को बाध्य करें । यह महासचिव के इस ग्राह्वान का भी समर्थन करती है कि 24 ग्रप्रैल को देशभर में गोरक्षा दिवस मनाया जाए ।

[15 ग्रप्रैल, 1955; गोकाक, के०का०स०]

55.24. गोसंरक्षण ग्रान्दोलन

गौ भारत का मानबिन्दु तथा भारतीय ग्रर्थव्यवस्था का ग्राधार है । यह ग्रत्यन्त खेद का विषय है कि भारत की स्वाधीनता के 8 वर्ष बाद भी गोवंश की हत्या पर कानून से प्रतिबन्ध लगने के बजाय उसमें भीषण वृद्धि हो रही है । इस दुःखदायक स्थिति से भारतीय जनता का क्षुब्ध होना स्वाभाविक है, जो देश के ग्रनेक स्थानों पर चल रहे सत्याग्रह ग्रान्दोलनों से भलीभांति स्पष्ट है ।

यह सम्मेलन इस बात पर संतोष प्रकट करता है कि उत्तर प्रदेश में गोहत्या निरोध समिति द्वारा संगठित एवं संचालित सत्याग्रह ग्रान्दोलन सफल हुग्रा है जिसके फलस्वरूप उत्तर प्रदेश सरकार ने विधानसभा के विगत सत्र में गोवंश के वध को कानून से प्रतिबन्धित करने को एक विधेयक उपस्थित किया है । सम्मेलन ग्राशा करता है कि उक्त विधेयक को गोहत्या निरोध समिति के सुझावों के साथ, जिससे दोषों का निराकरण हो सके, विधानसभा के वर्तमान सत्र में कानून का रूप दिया जाएगा

बिहार में गोहत्या पर कानून से रोक लगाने का एक विधेयक विधानसभा के सम्मुख उपस्थित है, किन्तु उसे स्वीकार कर जनभावना का सम्मान करने के बजाय बिहार सरकार गत तीन वर्षों से उसके साथ खिलवाड़ कर रही है । इससे क्षुब्ध होकर बिहार की जनता को वहां की गोहत्या निरोध समिति के तत्वावधान में बिहार विधानसभा भवन के सम्मुख दिनांक 12 सितम्बर, 1955 से शांतिपूर्ण सत्याग्रह करने का निश्चय लेने के लिए विवश होना पड़ रहा है ।

जनसंघ का यह ग्रधिवेशन बिहार सरकार से ग्रपील करता है कि उक्त विधेयक में बैलों की हत्या पर प्रतिबन्ध लगाने का सुझाव सम्मिलित कर उसे,

ग्रागामी सत्र में पारित करने तथा यथासंभव शीघ्र लागू करने की घोषणा करे ताकि प्रस्तावित ग्रान्दोलन की ग्रावश्यकता न रहे । साथ ही ग्रधिवेशन बंग सरकार से भी यह ग्रपील करता है कि श्रीयुत श्रीचैतन्य महाप्रभु ग्रौर रामकृष्ण परमहंस ग्रादि श्रेष्ठ महापुरुषों की जन्म ग्रौर कर्मभूमि इस बंग प्रान्त में भी शीघ्रातिशीघ्र गोवंश के बध को पूर्णतया कानूनन बन्द करके जनता के मत का ग्रादर करे ।

[28 ग्रगस्त, 1955; कलकत्ता, भा०प्र०स०]

55.28. बाढ़ पीड़ित

भारतीय जनसंघ पूर्व उत्तर प्रदेश, बिहार, उत्तर बंगाल, ग्रासाम तथा उड़ीसा में भीषण बाढ़ के फलस्वरूप उत्पन्न स्थिति पर चिंता व्यक्त करता है ग्रौर बाढ़ पीड़ितों के प्रति ग्रपनी सहानुभूति प्रकट करता है ।

जनसंघ सभी सम्बन्धित सरकारों तथा जनता से ग्रपील करता है कि बाढ़ पीड़ितों की सहायता के लिए पूर्ण सहयोग प्रदान करे । साथ ही, केन्द्रीय सरकार से ग्राग्रह करता है कि वह बाढ़ की रोकथाम के लिए दीर्घकालीन उपाय योजना करे जिससे बाढ़ के परिणामस्वरूप प्रतिवर्ष होने वाली जन-धन की भीषण क्षति को रोका जा सके ।

[28 ग्रगस्त, 1955; कलकत्ता भा०प्र०स०]

55.30. पंजाब में बाढ़

भारतीय जनसंघ की कार्यसमिति पंजाब, पेप्सू, दिल्ली ग्रौर पश्चिमी उत्तर प्रदेश में भीषण बाढ़ से जन-धन की जो ग्रपार क्षति हुई है उसके प्रति चिन्ता प्रकट करती है ग्रौर बाढ़-पीड़ितों के प्रति हार्दिक सहानुभूति व्यक्त करती है ।

कार्यसमिति का यह निश्चित मत है कि बाढ़ से उत्पन्न भयावह परिस्थिति का सामना करने के लिए न केवल समूचे शासन-तन्त्र को युद्धस्तर पर संचालित करने की ग्रावश्यकता है, ग्रपितु सभी दलों तथा संगठनों के सहयोग से जनता का भी एक व्यापक मोर्चा कायम करना ग्रावश्यक है । भ्रष्टाचार तथा लाल-फीताशाही के विरुद्ध जागरूक रहकर सरकार को बाढ़ पीड़ितों की सहायता के लिए तैयार की गई योजनाग्रों को ग्रविलम्ब कार्यान्वित करना चाहिए जिससे सर्दी ग्राने से पूर्व ही बेघरबारों को बसाया जा सके ग्रौर उन्हें ग्राजीविका के साधनों से युक्त किया जा सके ।

कार्यसमिति जनसंघ कार्यकर्ताग्रों द्वारा स्थान-स्थान पर बाढ़पीड़ितों के

लिए किये गये सहायता-कार्य पर सन्तोष प्रकट करती है और जनता से अपील करती है कि वह धन तथा गर्म कपड़े देकर अपने पीड़ित भाई-बहनों की सहायता करें ।

[23 अक्टबर, 1955; दिल्ली के०का०स०]

57.11. सूखा पीड़ित

भारतीय कार्यसमिति देश में उत्पन्न गम्भीर खाद्य-स्थिति पर गहरी चिन्ता प्रकट करती है । खाद्यान्न के मूल्यों में निरन्तर वृद्धि हो रही है और देश के विभिन्न भागों में, विशेषकर बिहार, पूर्व उत्तर प्रदेश तथा बंगाल में, अभाव की स्थिति विद्यमान है ।

खाद्यान्न की दृष्टि से देश को आत्मनिर्भर बनाने की ऊंची घोषणाओं तथा व्यय-साध्य योजनाओं के बाद कृषि-उत्पादन में कमी तथा देश के कुछ भागों में आसन्न अकाल की परिस्थिति, खाद्य-मोर्चे पर शासन की विफलता का प्रमाण है। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में भारी उद्योगों की तुलना में कृषि विकास के प्रति जो उपेक्षा दिखाई गई उसका परिणाम आज देश के सम्मुख आ गया है ।

केन्द्र सरकार ने अभावग्रस्त क्षेत्रों में अनाज की कीमतों को बढ़ाने से रोकने के लिए २५ करोड़ रु० के खाद्य सहायता कोष निर्माण का जो निश्चय किया है और खाद्यान्नों के अनुचित संग्रह को रोकने के लिए जो नये अधिकार प्राप्त किये हैं वह सही दिशा में कदम हैं और जनसंघ उनका समर्थन करता है । किन्तु, जब तक खाद्यान्न-वितरण की वर्तमान दोषपूर्ण पद्धति में सुधार नहीं किया जाता, तब तक उपर्युक्त उपायों से साधारण जन को अपेक्षित लाभ नहीं हो सकता ।

भारतीय कार्यसमिति शासन से मांग करती है कि वह खाद्य-समस्या को युद्ध-स्तर पर हल करने के लिए अविलम्ब आवश्यक तथा प्रभावी उपाय अपनाये । अभावग्रस्त क्षेत्रों में उत्पन्न भयावह परिस्थिति पर पार पाने के लिए निम्नलिखित उपायों का अवलम्बन आवश्यक है :

(1) प्रत्येक, न्याय-पंचायत केन्द्र पर सस्ते तथा मोटे अनाज की दुकान खोली जाए;
(2) तकावी, लगान, पंचायत-कर, आदि की वसूली स्थगित कर दी जाए;
(3) खरीफ की फसल के लिए बीज के वितरण की व्यवस्था की जाए;
(4) सहायता कार्य आरम्भ किये जाएं; और
(5) वर्षा आरम्भ होने से पूर्व ही बाढ़ की रोकथाम का प्रयत्न किया जाए ।

[1 जून, 1957; दिल्ली के०सा०स०]

57.14. लगान में कमी

गत कुछ समय से देहातों की किसान जनता में इस कारण असंतोष व्याप्त है कि यद्यपि जमींदारी प्रथा का कहने को उन्मूलन हो चुका है और बिचौलिए अब रहे नहीं, तथापि इससे जमीन जोतने वाले किसान को किसी भी प्रकार लाभ नहीं हुआ है क्योंकि उसके लगान में कहीं पर भी कमी नहीं की गई है । जमींदारी उन्मूलन उसके लिए इस दृष्टि से मालिकों का परिवर्तन मात्र ही रह गया है। पूर्व के जमींदारों और साहूकारों का स्थान अब राज्य ने ले लिया है। स्वभावत: यह अपेक्षित था कि जमींदारी और उनके जैसे अन्य मध्यवर्तियों की समाप्ति के पश्चात किसान के लगान में कम से कम उतनी कमी तो की जाएगी जितनी उसके पूर्व मालिक प्राप्त करते थे । किन्तु इस प्रकार की कोई भी बात नहीं हुई है । अतः कोई आश्चर्य नहीं कि कतिपय मांगों में लगान में कमी करवाने के उद्देश्य से व्यापक किसान आन्दोलन आरम्भ हो गए हैं ।

जनसंघ को इस प्रकार के आन्दोलनों के साथ पूरी सहानुभूति है । जनसंघ मांग करता है कि आज की परिवर्तित परिस्थिति में जबकि जमींदार. तालुकदार आदि नहीं रहे, किसानों द्वारा दिये जाने वाले लगान में काफी कमी की जानी चाहिए । यह सभा जनसंघ के कार्यकर्ताओं को निर्देश करती है कि इस प्रकार के लगान कम करने के आन्दोलनों को अपना सहयोग प्रदान करे ।

[16 अगस्त, 1957; बिलासपुर, भा०प्र०स०]

57.16. सहकारी खेती आर्थिक और सामाजिक विकास में बाधक

भूमि पर किसान का अधिकार एक सर्वमान्य सिद्धान्त है । इस अधिकार का स्थायित्व ही सब प्रकार के भूमि-सुधारों का प्रमुख उद्देश्य रहा है । जमींदारी और जागीरदारी व्यवस्था के उन्मूलन एवं सभी प्रकार के मध्यस्थों की समाप्ति की मांग इसी भाव से प्रेरित रही है । भारतीय जनसंघ इस सिद्धान्त को अपनी कृषि नीति का आधार मानता है ।

सेवा सहकारिताएं—खेद है कि कांग्रेस के घोषणा-पत्र एवं योजना आयोग के निर्देशों के अनुसार कई प्रदेशों में सहकारी कृषि के नाम पर कृषक को उसके अधिकार से वंचित करने का प्रयास किया जा रहा है । सहकारिता यद्यपि वांछनीय है तथा उसका उपयोग अनेक क्षेत्रों में लाभदायक रूप से किया जा सकता है, किन्तु जनसंघ का मत है कि भूमि का सामूहिकीकरण करके कृषि के क्षेत्र में सहकारिता भारतीय परम्पराओं के विरुद्ध, भारत की स्थिति के प्रतिकूल तथा हमारे आर्थिक एवं सामाजिक विकास के लिए हानिकारक है ।

अधिकतम कृषि उत्पादन के लिए सहकारी खेती की आवश्यकता प्रतिपादित की जाती है; किन्तु यह सही नहीं है। पोलैंड, हंगरी और चीन जैसे साम्यवादी देशों में भी जहां किसानों के प्रति अत्यन्त निर्मम और दमनकारी नीतियों का अवलम्बन किया गया है वहां सहकारी और सामूहिक कृषि से पैदावार में वृद्धि नहीं हुई अपितु कमी हुई है। स्वयं रूस में जहां व्यापक पैमाने पर सामूहिकीकरण लादा गया है और जिसके कारण 'कुलक' कहलाने वाले अनिच्छुक किसानों का कत्लेआम हुआ है वहां पर भी परिणाम कोई भिन्न नहीं रहे हैं।

सहकारी कृषि का प्रतिपादन करने वाले यह मान कर चलते हैं कि यंत्रों से अधिकतम उपज प्राप्त की जा सकेगी। यांत्रिक कृषि के लिए बड़े-बड़े खेत होना अनिवार्य है। अनेक छोटे-छोटे खेतों को मिलाकर बड़े-बड़े खेत हों—एकत्रीकरण हो—यह योजना आयोग का कहना है। शासन की प्रेरणा और नौकरशाही द्वारा चलाए गए इस आन्दोलन में किसी को विवश नहीं किया जाएगा, यह असंभव है।

बड़े पैमाने पर की जाने वाली खेती में प्रति एकड़ उपज भी घटती है यह अनुभव-सिद्ध बात है। अपने देश में भूमि सीमित एवं जन-बल विपुल होने के कारण यहां प्रति व्यक्ति नहीं प्रति एकड़ उपज बढ़ाना आवश्यक है। इस आवश्यकता की पूर्ति सामूहिक खेती से नहीं हो सकती।

यंत्रीकरण से तो प्रति एकड़ व्यय कई गुना बढ़ेगा, उपज घटेगी और बेरोज़गारी और भी विकराल रूप धारण करेगी।

भारतीय प्रतिनिधि सभा के मत में किसान के लिए बीज, खाद, ऋण, विक्रय आदि के लिए सहकारी समितियों का उपयोग है। परन्तु सहकारी खेती सब दृष्टियों से अनावश्यक, अलाभकर तथा किसान के मूलभूत अधिकार पर कुठाराघात है।

अतः जनसंघ किसान के अस्तित्व को ही खतरे में डालने वाले और उसके भूमि के अधिकार को समाप्त करने वाले सहकारी कृषि के इस भयावह संकट के प्रति देश की किसान जनता को सचेत करना अपना कर्तव्य समझता है।

[16 अगस्त, 1957; बिलासपुर भा०प्र०स०]

57.17. खाद्यान्न जांच समिति

कार्यसमिति देश की बिगड़ती खाद्य स्थिति पर गहरी चिन्ता प्रकट करती है। सूखा और बाढ़ के कारण लगातार फसल नष्ट होने से देश के कमी वाले इलाकों, खासकर पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार और पश्चिम बंगाल, मध्य प्रदेश तथा राजस्थान के कुछ भागों में खाद्यान्नों की भारी कमी हो गई है। रिजर्व बैंक और

सरकार ने कुछ वित्तीय तथा अन्य नियामक कदम उठाये जिससे देश में खाद्यान्नों के भावों का चढ़ना कुछ समय के लिए रुक गया; लेकिन समिति इस बात पर खेद प्रकट करती है कि सरकार पर्याप्त कदम उठाने में असफल रही है। इन क्षेत्रों में बार-बार आने वाली बाढ़ों और सूखे को रोकने के लिए सिंचाई और बाढ़ों के नियंत्रण की जो विभिन्न योजनाएं शुरू की गईं वे या तो बिना विचारे आरम्भ की गईं या फिर आवश्यकता के अनुरूप नहीं थीं। दूसरी पंचवर्षीय योजना में औद्योगीकरण पर अधिक जोर दिये जाने का भी आंशिक रूप से यह परिणाम हुआ कि सिंचाई और बाढ़ नियंत्रण की योजनाएं उपेक्षित रह गईं। खाद्यान्न जांच समिति ने भी प्रभावित क्षेत्रों की विशिष्ट समस्याओं का अध्ययन नहीं किया। ऐसे अभावग्रस्त क्षेत्रों की स्थिति में आम किस्म की सिफारिशों से सुधार की आशा, कदाचित ही की जा सकती है। यह समिति सरकार से अनुरोध करती है कि यह ऐसे क्षेत्रों की जनता के कष्ट दूर करने के लिए अविलम्ब कदम उठाये और उनके विकास के लिए एक सुगठित योजना तैयार करे।

पशुधन का नस्ल-सुधार—समिति ने खाद्यान्न जांच समिति की रिपोर्ट पर विचार किया। उसे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि खाद्यान्न जांच समिति ने यद्यपि यह स्वीकार किया है कि न तो स्वतन्त्र व्यापार की नीति और न ही पूर्ण नियंत्रण की नीति सफल रही हैं और इसीलिए उसने मौजूदा स्थिति में कुछ वित्तीय और मुद्रा सम्बन्धी नियंत्रणों तथा व्यापार को नियमित करने की सिफारिशें भी की हैं, फिर भी उसने यह सलाह दे देना भी उचित समझा कि खाद्यान्नों के थोक व्यापार का पूर्ण समाजीकरण ही सरकार की नीति का अंतिम लक्ष्य होना चाहिए। समिति इस सुझाव के विरुद्ध है और ऐसा महसूस करती है कि इस तरह की नीति की घोषणा-मात्र से चाहे उसे क्रियान्वित भले ही न किया जाए, वर्तमान खाद्य स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। वह खाद्यान्न जांच समिति की इस मान्यता से भी सहमत नहीं कि खाद्यान्न के मामले में भारत कभी आत्मभरित नहीं हो सकता। कार्यसमिति का निश्चित मत है कि देश खाद्यान्नों के मामले में आत्मभरित हो सकता है, लेकिन शर्त यह है कि खाद्यान्न उत्पादन की समस्या के प्रति यथार्थवादी और व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाया जाए और इस उद्देश्य से द्वितीय पंचवर्षीय योजना में आवश्यक संशोधन करके इस बात को पर्याप्त महत्व दिया जाए। कार्यसमिति को इस बात पर भी दुःख हुआ कि खाद्यान्न जांच समिति ने देश के पशुधन की संख्या घटाने के उद्देश्य से कुछ कदम उठाने की सिफारिश की है। सच तो यह है कि दूध और उससे बने पदार्थ न केवल सहायक खाद्य के रूप में काम में आते हैं बल्कि ये भारत में पोषण के भी मुख्य स्रोत हैं। कार्यसमिति का निश्चित मत है कि देश के पशुधन के सुधार और संरक्षण के विशाल और समन्वित कार्यक्रम को स्थान दिये बिना कोई भी खाद्य नीति पूर्ण नहीं हो सकती।

फिर भी समिति को खुशी है कि जनसंघ ने खाद्यान्न जांच समिति को दिये गये अपने ज्ञापन में खाद्यान्न समस्या का सामान्य रूप से विश्लेषण करते हुए मूल्य आदि को स्थिर करने के जो कुछ सुझाव दिये और सिफारिशें की थीं, उन्हें खाद्यान्न जांच समिति ने स्वीकार कर लिया। समिति ऐसा महसूस करती है कि भारत की जनता और सरकार को इन पर गंभीरता से विचार करना चाहिए।

[24 नवम्बर, 1957; हैदराबाद, के०का०स०]

58.08. गोहत्या-निषेध

गौ भारत का मानबिन्दु और देश की अर्थव्यवस्था का आधार है। अतएव गोवंश का सर्वप्रकारेण संरक्षण एवं संवर्धन एक राष्ट्रीय कर्तव्य है।

स्वतंत्रता के पूर्व से ही काश्मीर, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान, सौराष्ट्र, कच्छ, मध्य भारत आदि प्रदेशों में गोहत्या पर कानूनन प्रतिबन्ध था। अपेक्षा थी कि देश के स्वतंत्र होने के बाद सम्पूर्ण देश में गोवध पर पाबन्दी लगा दी जाएगी। किन्तु जनता की यह आशा पूरी नहीं हुई। परिणामस्वरूप देश के कोने-कोने में गोहत्या बन्दी की मांग के समर्थन में आन्दोलन किया गया। आन्दोलन के प्रभाव से उत्तर प्रदेश, पंजाब, बिहार, मध्य प्रदेश तथा मैसूर की सरकारों ने अपने-अपने राज्यों में गोहत्या-निषेध के विधेयक पारित किये। उड़ीसा तथा आन्ध्र में उक्त विधेयक विचाराधीन हैं और मुंबई राज्य के कृषि मंत्री ने यह कानून बनाने का आश्वासन दिया है।

यह सम्मेलन इस प्रस्ताव द्वारा मांग करता है कि देश के जिन राज्यों में अभी तक गोहत्या को प्रतिबन्धित नहीं किया है वे शीघ्रातिशीघ्र इस दिशा में पग उठायें और जिन प्रदेशों में यह कानून बने हुए हैं वहां की सरकारों से भी अनुरोध है कि वे इसका कड़ाई से पालन करवायें।

इस सम्मेलन को यह मालूम करके अत्यन्त चिन्ता हुई कि पंजाब से सर्वोत्तम नस्ल की गाय कलकत्ता तथा अन्य बड़े नगरों में ले जायी जाकर बर्बाद की जा रही हैं तथा गोचर भूमियों के टूटने के कारण गाय और बछियां आवारा फिरती हैं जिन्हें कत्ल करने के लिए पाकिस्तान और उत्तर प्रदेश ले जाया जाता है। अतः यह सम्मेलन पंजाब सरकार से आग्रह करता है कि कलकत्ते जाने वाली गायों की निकासी को रोकें तथा गोचर भूमियां छोड़कर जो गाय आवारा फिरती हैं उनकी व्यवस्था करें।

[5 अप्रैल, 1958; अम्बाला, छठा सा०अ०]

58.11. गोहत्या-निषेध पर सर्वोच्च न्यायालय

विभिन्न राज्यों में पारित गोहत्या निरोध कानूनों के संबंध में उच्चतम न्यायालय के फैसले से उत्पन्न स्थिति पर कार्यसमिति ने विचार किया। समिति के विचार से वृद्ध एवं अपाहिज गायों और बैलों को कत्ल करने को कानून-सम्मत बताकर इस फैसले से ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी गई है कि जिन मूल्यों एवं उद्देश्यों से प्रेरित एवं प्रभावित होकर राज्य सरकारों ने गोहत्या पर रोक लगायी, वह सब व्यर्थ गया।

अतः उच्चतम न्यायालय के फैसले के बाद यह आवश्यक हो गया है कि संविधान में राज्य की नीति के निदेशक सिद्धान्त के 46वें अनुच्छेद में संशोधन किया जाए। जब तक ऐसा संशोधन नहीं किया जाता तब तक राज्य सरकारें या तो अध्यादेश जारी करें या फिर अपने कानूनों में ऐसे संशोधन करें जिससे बूढ़ी गायों और बैलों का काटा जाना गैर-कानूनी ठहराया जा सके।

कार्यसमिति बंबई, मद्रास, मैसूर, आंध्र, केरल, उड़ीसा और बंगाल की राज्य सरकारों से, जिन्होंने अब तक कानून बनाकर गोहत्या पर रोक नहीं लगायी, मांग करती है कि वे इस आशय के कानून यथाशीघ्र पास करें। समिति अपनी सब शाखाओं से भी अनुरोध करती है कि इन लक्ष्यों को पूरा करने के उद्देश्य से जनमत तैयार करने के लिए वे आवश्यक कार्यक्रम हाथ में ले।

[19 जुलाई, 1958; बम्बई, के०का०स०]

58.20. खाद्य आन्दोलन

कार्यसमिति सखेद अनुभव करती है कि भारत शासन ने खाद्य समस्या को सुलझाने में दूरदर्शिता तथा व्यवहार बुद्धि से काम नहीं लिया। जिस प्रकार की द्वितीय पंचवर्षीय योजना बनाई गई है उसकी क्रियान्विति में खाद्य-मोर्चे पर कठिनाइयां उपस्थित होंगी, इससे शासन को प्रारम्भ से ही अवगत होना चाहिए था और इस सम्बन्ध में उसे पूर्व चेतावनी भी दी गई थी।

देश के भिन्न-भिन्न भागों में जो जन-आन्दोलन हुए हैं उन्होंने शासन का ध्यान वर्तमान खाद्य संकट की गम्भीरता की ओर आकृष्ट किया है। किन्तु शासन ने अभी तक जो नीति अपनाई है वह केवल तात्कालिक प्रश्नों को सुलझाने का प्रयास मात्र है। जनसंघ आवश्यक समझता है कि हमें इस सम्बन्ध में एक दूरगामी नीति निश्चित कर उसे व्यवहार में लाने के लिए एक स्थायी व्यवस्था करनी चाहिए। खाद्य समस्या के चार मुख्य पहलू हैं :

(1) खाद्योत्पादन में वृद्धि,

(2) विक्रयार्थ पर्याप्त गल्ले की प्राप्ति,
(3) वितरण की सुव्यवस्था, और
(4) मूल्यों का स्थिरीकरण ।

भूमि-सुधार का समन्वित कार्यक्रम—शासन को इन सभी का विचार कर वित्तीय एवं मुद्रा सम्बन्धी नीतियां, भूमि-सुधार, सिंचाई, उर्वरक, अच्छे बीज आदि की योजनाओं का समन्वित विचार करना चाहिए । इस दृष्टि से जनसंघ आवश्यक समझता है कि :

(1) भूमि-सुधारों का एक समन्वित कार्यक्रम तैयार कर उसे तुरन्त कार्यान्वित किया जाए;
(2) लघु-सिंचाई योजनाओं के ऊपर बल दिया जाए;
(3) सिंचाई-दरों का इस प्रकार निर्धारण किया जाए कि कृषक को सिंचाई के साधनों का उपयोग करने के लिए प्रोत्साहन मिले;
(4) फसल के समय बाजार में उचित मूल्य पर शासन गल्ला खरीदे;
(5) सस्ते गल्ले की दुकानों की स्थायी व्यवस्था हो, जिनके द्वारा एक निश्चित आय-मर्यादा के व्यक्तियों को खाद्यान्न प्राप्त होने की आश्वस्ति रहे, अनाज की दूसरी दुकानें भी चलती रहें; और
(6) सामान्य व्यापार-प्रवाह का विचार कर खाद्यान्न-क्षेत्रों का निर्धारण हो, जो समय-समय पर मनमाने ढंग से परिवर्तित न किये जाएं ।

भारतीय जनसंघ सदैव से इस बात का हामी रहा है कि खाद्य-समस्या को सर्वदलीय सहयोग से सुलझाना चाहिए । शासन ने हाल में ही इस आवश्यकता को अनुभव करते हुए विभिन्न स्तरों पर इस प्रकार की समितियां गठित की हैं । जनसंघ समझता है कि उन्हें अधिक व्यापक तथा प्रभावी बनाया जाए ।

[12 अक्तूबर, 1958; दिल्ली, के०का०के०]

58.25. खाद्यान्न व्यापार

जनसंघ इस बात पर खेद प्रकट करता है कि जनता को उचित मूल्य पर खाद्यान्न उपलब्ध कराने के लिए स्थायी और लाभप्रद नीति निश्चित करने में सरकार विफल रही है ।

उसे यह जानकर तो और भी आश्चर्य हुआ कि राष्ट्रीय विकास परिषद ने खाद्यान्न व्यापार से सम्बद्ध महत्वपूर्ण प्रश्न के विभिन्न उलझनपूर्ण पहलुओं जैसे वित्त-व्यवस्था, प्रशासनिक ढांचा, खाद्यान्न के उत्पादक और वितरक, किसान व व्यापारी आदि के बारे में विचार किये बिना अचानक यह फैसला कर लिया कि खाद्यान्न व्यापार का समाजीकरण किया जाए । जनसंघ महसूस करता है कि

यह फैसला कीमतों को स्थिर रखने के महत्वपूर्ण प्रश्न का हल खोजने में सरकारी विफलता को छिपाने के लिए किया गया और इस समस्या का सुविचारित तर्क-संगत हल खोजने से इसका कोई वास्ता नहीं । इस योजना को क्रियान्वित करने के लिए कम से कम 350 करोड़ रु० की आवश्यकता होगी और इसके लागू करने से 30 हजार थोक व्यापारी तथा अनाज के 30 लाख खुदरा दुकानदार बेरोजगार हो जाएंगे । इसके अलावा इस योजना को लागू करने से अनिवार्य वसूली और राशनिंग व्यवस्था को भी अपनाना होगा जिसका युद्ध के वर्षों में और युद्धोत्तरकाल में देश को बड़ा कटु अनुभव हुआ है ।

इन व्यावहारिक कठिनाइयों के अलावा एक बड़े महत्वपूर्ण क्षेत्र में अफसर-शाही चलाने से लोकतंत्र को जो खतरा हो सकता है—इसकी भी उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए ।

भारतीय जनसंघ महसूस करता है कि नीचे लिखे सुझावों के आधार पर निश्चित कदम उठाकर इस समस्या को प्रभावशाली ढंग से हल किया जा सकता है :

(1) सरकार को देश के विभिन्न भागों में अनाज का इतना पर्याप्त भंडार रखना चाहिए जो कम से कम एक साल के लिए काफी हो । इन भंडारों की पूर्ति और प्रबन्ध का दायित्व प्रदेश सरकारों को सौंपा जाना चाहिए ।

(2) सरकार को कमी वाले क्षेत्रों में उचित मूल्य पर अनाज बेचने वाली दुकानों की ऐसी स्थायी व्यवस्था करनी चाहिए कि अभाव की स्थिति में समूचे पीड़ित क्षेत्र की आवश्यकता पूरी करने के लिए उनका विस्तार किया जा सके । प्रत्येक परिवार को उसकी सदस्य संख्या के आधार पर कार्ड से एक निश्चित मात्रा में अनाज दिया जाए जिससे उचित मूल्य पर अनाज बेचने वाली दुकानों का दुरुपयोग रोका जा सके । उचित मूल्य पर अनाज बेचने वाली दुकानें निजी व्यापार की पूरक मात्र हों उनको विस्थापित करने वाली सिद्ध न हों ।

(3) चावल की बहुतायत वाले पड़ोसी देशों, जैसे बर्मा, इंडोचीन, थाईलैण्ड आदि के साथ निर्धारित न्यूनतम मात्रा पर चावल मिलते रहने के दीर्घ-कालीन समझौते किये जाएं । खरीदे जाने वाले चावल की कुल मात्रा को अल्प-कालीन मांग के आधार पर विभाजित कर दिया जाए और मात्रा घटाने या बढ़ाने के बारे में निर्धारित समय पर विचार होता रहे ।

(4) खाद्यान्नों के बारे में क्षेत्रीय व्यवस्था को व्यापार के नैसर्गिक प्रवाह के आधार पर, कमी तथा बहुतायत वाले क्षेत्रों का ध्यान रखते हुए संशोधित किया जाए ।

(5) पूर्व निर्धारित एक निश्चित स्तर से ऊपर यदि मूल्य चले जाएं तो सरकार को अपने भंडार से अनाज बाजारों में आधारभूत एक मूल्य पर बेच

कर व्यापारियों और उचित मूल्य की दुकानों द्वारा जनता तक पहुंचाने का प्रबन्ध करना चाहिए और फसल के समय यदि भाव निर्धारित न्यूनतम भाव से नीचे चले जाएं तो उसे स्वयं मंडियों में अनाज खरीदना चाहिए।

(6) इस बीच किसान को सहायता—जैसे सहकारी समितियों या अन्य माध्यमों से रसायनिक खाद, उन्नत किस्म के बीज, ऋण आदि—देने की प्रशासनिक व्यवस्था में विधिवत सुधार किया जाना चाहिए जिससे सभी क्षेत्रों में अनाज की पैदावार बढ़े। राज्य सरकारों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए कि वे इस लाभ को आज की अपेक्षा अधिक सफलता से करें।

(7) जब यह पता चले कि चढ़ते भावों के समय व्यापारी चोरी-छिपे भंडार बना रहे हैं तब सटोरियों को बैंक से ऋण मिलने पर रोक लगा कर, खरीद की दर और भंडार-व्यय के हिसाब से मूल्य देकर जमाखोरों के भंडार जब्त करने आदि के उपाय फौरन किये जाने चाहिएं।

[28 दिसम्बर, 1958; बंगलौर, सातवां सा०अ०]

58.32. जोत-सीमा

भूमि-सुधार की आवश्यकता को यद्यपि सार्वजनिक रूप से स्वीकार किया गया, तथापि विभिन्न प्रदेशों की सरकारें इस संबंध में ढिलमिल और देरी की नीति अपना रही हैं। इस संबंध में जो कानून बने या बनाये जा रहे हैं उनसे कोई वास्तविक सुधार होने के बजाय किसान के भूमि-हितों के प्रति और अधिक अनिश्चितता की स्थिति पैदा हो गई है। जनसंघ भूमि के पुनर्वितरण के सिद्धान्त को स्वीकार करता है। फिर भी वह अनुभव करता है कि परिवार के जोत की अधिकतम सीमा इतनी रखने का सिद्धान्त कि उससे साल में 3,600 रु० की आय हो सके, ऐसा है जिसमें न तो खेतीवाली और खेती-योग्य पड़ती जमीन की उपलब्धि का ख़याल रखा गया और न ही इन बातों की ओर ध्यान दिया गया कि ग्रामीण जनता की आवश्यकता और क्षमता क्या है, भूमि-विकास की सुविधाओं और सामर्थ्य में कितना अन्तर है अथवा समता के सिद्धान्त का तकाजा क्या है। इस सम्बन्ध में दिए गए सुझावों को अव्यावहारिक समझा जाता है और उनके खिलाफ व्यापक असंतोष बढ़ा है। इन कानूनी उपायों का अन्तिम लक्ष्य ग्रामीण क्षेत्रों में किसान के स्वामित्व के आधार पर एक नयी सामाजिक व्यवस्था की रचना करना नहीं बल्कि किसान को अस्थायी तौर पर जमीन देकर दूसरे दौर में सहकारी या सामुदायिक फार्म स्थापित करने के उद्देश्य से उसे मिटा देना है। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की भूमि-सुधार उपसमिति की सिफारिशों से यह स्पष्ट है। उसने सुझाया है कि जोत की अधिकतम सीमा लागू करने के बाद जो भूमि प्राप्त हो उसे

किसानों में बांटने के बजाय सहकारी फार्म बनाने के लिए इस्तेमाल किया जाए। योजना आयोग और प्रधानमंत्री भूमि के सहकारीकरण का कार्यक्रम तेजी से लागू करने पर जोर दे रहे हैं, उससे भी यह स्पष्ट है।

भारतीय जनसंघ ऐसा महसूस करता है कि भूमि सुधार का प्रश्न एक व्यावहारिक सवाल है और इस पर किसी वाद से बंधकर विचार नहीं किया जाना चाहिए। आवश्यकता एक ऐसा व्यापक और सुसंगठित सुधार कार्यक्रम अपनाने की है, जिसके उद्देश्य बिचौलियों को खत्म करना, पट्टेदारी निश्चित करना, उचित लगान बांधना, चकबन्दी, जोतों को खंडित होने से बचाना, आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद जोतों का निर्माण, खेती के तरीकों में सुधार करना, पड़ती जमीन को खेती-योग्य बनाना, भूमि का पुनर्वितरण करना जिसके आधीन भलीभांति सिंचित जोत की सीमा 30 एकड़ अथवा इतनी हो कि प्रति वर्ष औसतन 6,000 रु० से 10,000 रु० तक की आय हो सके।

जनसंघ इस बात को कतई पसन्द नहीं करता और इसका विरोधी है कि प्रदेश सरकारों को अधिकार दिया जाए कि वे चाहें तो कुछ जमीनों पर जोत की अधिकतम सीमा लागू न करें, क्योंकि इस अधिकार का प्रयोग राजनीतिक स्वार्थ पूरे करने के लिए किया जा सकता है।

सहकारी खेती का विरोध—जनसंघ सहकारी खेती के खिलाफ है, क्योंकि उसका विश्वास है कि :

(1) इसकी अंतिम परिणति सामुदायिक खेती में होगी, भूमि का आज का स्वामी किसान भूमिहीन मजदूर बन जाएगा, व्यक्तिगत स्वतंत्रता खत्म हो जाएगी और लोकतंत्र के बदले तानाशाही प्रवृत्ति मजबूत होगी।

(2) सहकारीकरण इस प्रबल आर्थिक आवश्यकता के खिलाफ बैठेगा कि भूमि से अधिक से अधिक उपज ली जाए। इस संबंध में दुनिया भर में सहकारिता का अनुभव बहुत उत्साहवर्धक नहीं।

हां, जनसंघ इस बात पर जोर देना चाहेगा कि वास्तविक किसान को उत्पादन बढ़ाने के लिए न लाभ न घाटे के आधार पर सभी सहायक एवं पूरक सेवाएं उपलब्ध कराने के लिए सेवा सहकारिताओं को अधिक से अधिक बढ़ावा दिया जाए।

[28 दिसम्बर, 1958; बंगलौर, सातवां सा०अ०]

58.34. गोरक्षा के लिए संविधान संशोधन

गाय हमारी राष्ट्रीय संस्कृति का प्रतीक है। इसलिए गोहत्या पर कानूनी रोक लगाने की मांग हमारी राष्ट्रीय आजादी की लड़ाई के साथ-साथ चली।

भारत के संविधान में इसके लिए कोई व्यवस्था न होना हमारी परम्परा के विरुद्ध है। हाल में ही उच्चतम न्यायालय के इस निर्णय के बाद से कि काम के अयोग्य बैलों और सांड़ों को काटने पर रोक लगाना संविधान विरुद्ध है, यह और जरूरी हो गया है।

अतः, जनसंघ मांग करता है कि मौलिक अधिकारों से सम्बद्ध अध्याय में संशोधन एवं उसमें एक अनुच्छेद और जोड़कर समूचे गोवंश की हत्या पर पाबन्दी लगा दी जाए।

[28 दिसम्बर, 1958; बंगलौर, सातवां सा०अ०]

59.01. कृषि-गठन

इस वर्ष जनवरी में कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन में भूमि-सुधार सम्बन्धी पारित प्रस्ताव ने इस संदेह और आशंका की पुष्टि की है जिसे जनसंघ ने दिसम्बर में अपने बंगलौर अधिवेशन में पारित प्रस्ताव द्वारा व्यक्त किया था कि कांग्रेस कृषि स्वामित्व के अधिकार को समाप्त कर उन्हें सहकारी खेती में जकड़ देना चाहती है। *'जो जोतेगा उसकी भूमि'* का नारा लगाकर किसानों में जो आशा उत्पन्न की गई थी कांग्रेस दल ने इस प्रकार उसके प्रति विश्वासघात किया है। अब कांग्रेस के प्रस्ताव में कहा गया है कि अधिकतम जोत की सीमा निर्धारण करने के बाद बची हुई भूमि का स्वामित्व किसानों और खेतिहर मजदूरों को न दिया जाकर पंचायतों में निहित होगा। पंचायतें सहकारी खेती का गठन करेंगी जिन पर भूमिहीन किसानों को सदस्य बनाया जाएगा।

कांग्रेस प्रस्ताव द्वारा सहकारी खेती में कृषकों के स्वामित्व के अधिकार सुरक्षित रखने की झूठी और भ्रांन्तिमूलक बात भी कही गई है। परन्तु सरकारी कागजों में स्वामित्व का यह उल्लेख केवल दिखावा-मात्र रहेगा क्योंकि स्वामी को उनकी जमीनों पर स्वामी के समान अपनी जिम्मेदारी और इच्छानुरूप व्यवस्था और बेचने के हक नहीं रहेंगे। वास्तव में यह सहकारी खेती रूस और चीन की सामूहिक खेती से भिन्न नहीं है।

कांग्रेस के नागपुर प्रस्ताव की टीका—अतः जनसंघ को कांग्रेस के नागपुर प्रस्तावों द्वारा स्वीकृत सम्पूर्ण भूमि-सुधार व्यवस्था का जिसे प्रधानमंत्री निरन्तर एवं आग्रहपूर्वक प्रतिपादित कर रहे हैं सिद्धान्ततः विरोध करना होगा। जनसंघ घोषणा करता है कि ग्रामों की समस्त भूमि को सहकारी खेती के ढांचे में ढालना कृषि स्वामित्व के सिद्धान्त के विरुद्ध है। इससे गांवों में प्रजातंत्र के आधार सदैव के लिए समाप्त हो जाएंगे। कांग्रेस के प्रस्ताव में जो यह प्रावधान किया गया है कि सहकारी खेती के पूर्व, विभिन्न प्रकार की सेवाओं के लिए तीन वर्ष की अवधि

में सहकारी समितियों का आयोजन किया जाएगा—इससे स्थिति में कोई अन्तर नहीं पड़ता। जनसंघ विपणन, ऋण आदि के क्षेत्र में सहकारिता की आवश्यकता और उपयोगिता को स्वीकार करता है। किन्तु यह मानता है कि यह समितियां स्वतंत्र कृषि के लिए और उसकी आनुषांगिक होंगी न कि उसको सहकारी खेती में बदलने का साधन। कांग्रेस की सहकारी खेती की योजना के दुष्परिणाम की ओर जनसंघ दुर्लक्ष्य नहीं कर सकता। अतः आवश्यक है कि सम्पूर्ण देश में जनजागरण और प्रचार किया जाए तथा गांव-गांव में समितियां स्थापित कर ग्रामीण जनता को अपनी खेती की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए संगठित किया जाए।

भूमि-सुधारों के प्रश्न को हमें यथार्थवादी दृष्टिकोण से देखना होगा। उनका उद्देश्य किसान को लाभकर जोत का, मालिक बनाकर खेती के उत्पादन में वृद्धि होना चाहिए। इसके लिए विभाजन और अपखंडन पर रोक तथा जोतों की चकबन्दी, उचित भू-राजस्व का निर्धारण तथा किसान को जोत के ऊपर निश्चित एवं स्थायी अधिकार की व्यवस्था करनी होगी।

मालगुजारी के उचित निर्धारण तथा जोतदार की पट्टेदारी की सुरक्षा करने की संक्रियाओं का जनसंघ समर्थन करता है और उन्नत बीज, ऋण, उर्वरक, सेवाओं की उपलब्धि आदि के द्वारा कृषि को सरकारी सहायता दिये जाने का भी हामी है।

जोत सीमा—भूमि का अधिकतम उपयोग करने के हेतु जहां पड़ती एवं बंजर जमीन को तोड़ना आवश्यक है वहां वर्तमान कृषि भूमि का न्यायोचित पुनर्वितरण भी करना होगा। इस हेतु जनसंघ कांग्रेस द्वारा निर्धारित अधिकतम जोत की मर्यादा से, जो 3,300 रु० वार्षिक आयवाली भूमि होगी, सहमत नहीं है। जनसंघ का मत है कि अधिकतम जोत की मर्यादा 30 एकड़ अच्छी सिंचाई की भूमि या उसके समकक्ष भूमि हो जिससे प्रतिवर्ष 6,000 रु० से 10,000 रु० आय होनी चाहिए।

जनसंघ व्यावहारिक दृष्टि से निम्नलिखित कार्यक्रम प्रस्तुत करता है :

(1) भूमि के भावी अधिग्रहण की अधिकतम मर्यादा सभी राज्यों में निश्चित की जाए।

(2) किसानों को स्थायी पट्टेदारी के अधिकार देकर उचित लगान तय किया जाए।

(3) इस बात की व्यवस्था की जाए कि किसान और भूमिहीन मजदूर आर्थिक जोत बनाने के लिए आवश्यकतानुसार जमीन खरीद सकें या/और अपने खेत पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर सके।

(4) खेतीहर मजदूरों की उचित मजदूरी निश्चित की जाए।

(5) अधिकतम जोत से ऊपर वाले किसानों को 3 वर्ष की अवधि में, मर्यादा से अधिक भूमि को बेचने की अनुमति दी जाए। जो किसान ऐसी भूमि को खरीदना चाहें वे किस्तों में मूल्य को चुका सकें तथा उन्हें सहकारी ऋण समितियों, भूमि-बन्धक बैंकों अथवा सरकार से इसके लिए रुपया उधार देने की व्यवस्था की जाए।

(6) अपखंडन पर रोक और चकबन्दी के द्वारा आर्थिक जोतों के विकास की योजना बनाकर उन्हें, अविलम्ब कार्यान्वित किया जाए।

(7) क्रय, विक्रय, ऋण और औजार आदि के लिए सहकारी समितियों की व्यवस्था की जाए। उन्हें सरकारी कर्मचारियों एवं दलीय प्रभाव से मुक्त रखा जाए।

[15 मार्च, 1959; दिल्ली, के०का०स०]

59.07. भारत-पाकिस्तान नहरी पानी समझौता

विभाजन से सिंधु बेसिन का 80% सिंचित भाग और अधिकांश नहरें पाकिस्तान के हिस्से में गईं। भारत के हिस्से में पूर्व-पंजाब और राजस्थान की आवश्यकता पूर्ति के लिए सिर्फ 3 नदियां आईं। जब पूर्व पंजाब की इन 3 नदियों—सतलज, व्यास और रावी—के पानी का सिचाई के लिए पूरा उपयोग करने का भारत की ओर से प्रयत्न शुरू हुआ तब पाकिस्तान ने शोर मचाना आरम्भ किया, हालांकि विभाजन के कारण उत्पन्न स्थिति में इसका कोई औचित्य नहीं था। लेकिन भारत सरकार ने पाकिस्तान को खुश करने की अपनी नीति के अनुसार, मौका दिया कि वह इसे भारत और पाकिस्तान के बीच का झगड़ा बनाए। इस विवाद में बीच-बचाव के लिए और विवाद को हल करने के लिए विश्व बैंक की मध्यस्थता को स्वीकार किया गया।

विश्व बैंक ने फैसला दिया कि सतलज, व्यास और रावी के पानी का, जिनमें सिंधु बेसिन का सिर्फ 20% जल आता है, उपयोग करने का एकमात्र अधिकार भारत को होना चाहिए। 3 पश्चिमी नदियों के जल का उपयोग करने के लिए पाकिस्तान को अपनी नहरें और बाँध बनाने चाहिएं और पाकिस्तान के इन निर्माण कार्यों का आंशिक व्यय भारत को देना चाहिए। तब यह तय किया गया कि भारत को इस काम के लिए 60 से 80 करोड़ रु० तक देने होंगे।

पाकिस्तान में एक नहर को दूसरी नहर से मिलाने वाली कड़ी के निर्माण का खर्च भारत से वसूल करना सर्वथा अनुचित था। लेकिन, विश्व बैंक के फैसले को मानने से पाकिस्तान ने इनकार कर दिया। इस बीच भारत अपने हितों की उपेक्षा करके भी पाकिस्तान को पानी देता रहा और पाकिस्तान नहरों, बांधों आदि के खर्च के अनुमान को बढ़ाता गया।

इधर हाल के महीनों में इस विषय पर कुछ गुपचुप बातचीत हुई और ऐसा जान पड़ता है कि कोई समझौता भी हो गया है। अब तक प्राप्त सूचनाओं के अनुसार प्रस्तावित समझौते में पाकिस्तान में नहरें, बांध आदि बनाने का भारत पर और भारी बोझ डलवाने—करीब तीन अरब रुपये—की व्यवस्था की गई है। इसमें यह भी कहा गया है कि पाकिस्तान में वैकल्पिक व्यवस्था हो जाने के बाद भी भारत अपनी नदियों से पाकिस्तान को 1965 तक पानी देता रहेगा।

कार्यसमिति प्रस्तावित समझौते की इन व्यवस्थाओं को अनुचित एवं भारतीय हितों के प्रतिकूल समझती है। इस सुझाव से कि शुरू में कोई पश्चिमी देश यह राशि ऋण के रूप में देगा, हमें कोई संतोष होने वाला नहीं, क्योंकि इससे तो भारत पर बोझ ही बढ़ेगा जिसे आगे पीछे भारत को चुकाना होगा। चूंकि यह प्रश्न ऐसा है कि जो भारत के हितों को बड़े महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करता है, अतः यह आवश्यक है कि समझौते की शर्तों को अंतिम रूप से तय करने से पहले जनता और संसद का विश्वास प्राप्त किया जाए। देश के सामने ऐसी कोई बात न रखी जाए जिसे स्वीकार करने के अतिरिक्त और कोई चारा न हो।

सबसे अनुचित बात तो यह है कि अविभाजित भारत पर 300 करोड़ रु० के राष्ट्रीय ऋण में से ऋण का जो हिस्सा पाकिस्तान के जिम्मे आता है, इस राशि को उसमें मुजरा कर देने के सुझाव को मानने से इनकार कर दिया गया है, हालांकि विभाजन समझौते के अनुसार पाकिस्तान ने अपने हिस्से के ऋण की राशि को भारत को चुका देना मंजूर किया था।

अतः कार्यसमिति भारत की सरकार और जनता को प्रस्तावित समझौते की इन कमियों से आगाह कर देना अपना कर्तव्य समझती है। वह मांग करती है कि नहरी पानी के बारे में जो भी समझौता किया जाए, उसमें—

(1) पाकिस्तान को अब भी दिये जा रहे भारतीय नदियों के पानी को तत्काल मोड़कर देश के भीतर उपयोग की व्यवस्था अवश्य होनी चाहिए।

(2) पाकिस्तान में नहरें बनाने का कोई उत्तरदायित्व भारत पर नहीं होना चाहिए और यह पाकिस्तान का दायित्व रहना चाहिए। फिर भी यदि खर्च का कुछ बोझ भारत पर डाला ही जाता है तो उसे उस राशि में मुजरा कर दिया जाना चाहिए जिसे भारत को पाकिस्तान से लेना है।

[8 जुलाई, 1959; पूना, भा०प्र०स०]

59.08. सहकारी खेती

भारतीय जनसंघ जनता और सरकार को सहकारी खेती के खतरों से पहले ही आगाह कर चुका है। उसका यह निश्चित मत है कि इससे अनाज की पैदावार

बढ़ने के बजाए उस पर बहुत प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा और ग्रामीण जीवन में अनिश्चितता, अस्थिरता, संघर्ष एवं बेरोजगारी बढ़ेगी। इससे किसान की स्थिति चाकर जैसी हो जाएगी, जिससे उसकी स्वतन्त्रता और आत्मनिर्भरता खत्म हो जाएगी तथा लोकतंत्र की जड़ें कटकर तानाशाही के लिए भूमिका तैयार होगी। दुर्भाग्यवश उस चेतावनी का सरकार पर कोई असर नहीं पड़ा है। वह इस संबंध में आग्रह ही नहीं कर रही बल्कि इसे अनिच्छुक किसानों पर जबरन थोप रही है।

अतः भारतीय जनसंघ की प्रतिनिधि सभा सहकारी खेती पर अपने मत को दोहराती हुई जनसंघ की सभी शाखाओं का आह्वान करती है कि वे सहकारी खेती के विरुद्ध जनमत को शिक्षित एवं संगठित करने के लिए जमकर और योजनाबद्ध प्रयास करें। इस संबंध में 1 अक्तूबर से 21 अक्तूबर (*भारतीय जनसंघ का स्थापना दिवस*) तक की 21 दिन की अवधि का विशेष रूप से उपयोग किया जाना चाहिए। प्रतिनिधि सभा देश भर में अपनी शाखाओं का आह्वान करती है कि वे किसान सम्मेलनों व अध्ययन गोष्ठियों का आयोजन करें तथा गांव-गांव में जनसंघ का संदेश पहुंचाने और सहकारी खेती के बारे में जनसंघ के विचारों के अनुरूप जनमत तैयार करने के लिए अन्य पग उठाए।

[8 जुलाई, 1959; पूना, भा०प्र०स०]

61.08. गोरक्षा के लिए संविधान संशोधन

गो भारत का मानबिन्दु एवं हमारे राष्ट्रीय जीवन का केन्द्र है। गोवंश की हत्या पर पूर्ण प्रतिबन्ध हमारी स्वतन्त्रता का अपरिहार्य अंग रहा है। दुःख का विषय है कि भारत का संविधान इसकी व्यवस्था नहीं करता।

पिछले वर्षों में जनमत के दबाव के कारण कुछ प्रदेशों में गोहत्या पर प्रतिबन्ध के सम्बन्ध में विधान बने हैं। किन्तु वे सभी अधूरे हैं तथा उनके कुछ प्रावधान हाल के सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के कारण व्यावहारिक दृष्टि से अप्रभावी हो जाते हैं।

भारतीय जनसंघ की मांग है कि संविधान में संशोधन कर गोवंश की हत्या पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगाया जाए।

[1 जनवरी, 1961; लखनऊ, नवां सा०अ०]

63.20. कृषक के अधिकार और संविधान संशोधन

भारत कृषि-प्रधान देश है। अतः कृषि उत्पादन में वृद्धि और कृषि उपज का उचित मूल्य यहां की राष्ट्रीय आमदनी को बढ़ाने और बहुजन समाज के

जीवन-स्तर को ऊंचा करने के लिए ही नहीं बल्कि वर्तमान औद्योगिक क्षेत्र को टिकाने के लिए भी आवश्यक है। यह भी स्वीकार किया गया है कि आज की अवस्था में विस्तृत सघन खेती के कार्यक्रम के द्वारा ही अधिकतम कृषि उत्पादन सम्भव है। सघन खेती के लिए किसान को पर्याप्त साधन और इस बात की आश्वस्ति मिलनी आवश्यक है कि वह अपने परिश्रम का पूरा फल भोग सकेगा। पिछले दिनों में कृषि-व्यवस्था में अनेक मध्यस्थ पैदा हो गए जिसके कारण किसान को उपज का बहुत बड़ा भाग दे देना पड़ता था और इसलिए कृषि-उत्पादन बढ़ाने के लिए न तो उसके पास साधन रहते थे और न इच्छा ही। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद राज्य-सरकारों ने मध्यस्थों को समाप्त करने और किसानों को स्थायी जोत के अधिकार देने के लिए कानून बनाए। अनेक प्रान्तों में अधिकतम जोत भी निर्धारित की गई है।

आज सरकार संविधान के अनुच्छेद 31 अ, धारा (2) का संशोधन करना चाहती है। जनसंघ ने भूमि-सुधारों का सदैव समर्थन किया है और वह चाहता है कि जोतने वाला भूमि का स्वामी बने। किन्तु उसका मत है कि उपधारा 2 (ए) (3) के द्वारा जो संशोधन किया जा रहा है वह किसान को उसकी भूमि से वंचित करने के उद्देश्य से किया जा रहा है। अतः जनसंघ इस उपधारा को आपत्तिजनक समझता है।

इसके अतिरिक्त सहकारी खेती के नाम पर सरकार सामूहिक खेती लाना चाह रही है। इस पृष्ठभूमि में इस प्रयत्न को सहज भाव से नहीं टाला जा सकता। इससे यह आशंका पैदा होती है कि शासन इस शक्ति का दुरुपयोग कर किसान के भूस्वामित्व एवं कुटुम्ब के आधार पर कृषि व्यवस्था को समाप्त करेगा। अतः भारतीय जनसंघ प्रस्तावित विधेयक के अनुच्छेद 31 (अ), धारा (2) उपधारा (अ), के खण्ड (3) का पूर्णतया विरोध करता है और अपनी सभी शाखाओं को आदेश देता है कि किसानों की भूमि और उसकी उपज के अधिकार की रक्षा के लिए व्यापक जन-आन्दोलन संगठित करें।

[30 दिसम्बर, 1963; अहमदाबाद, ग्यारहवां सा०अ०]

65.06. धनुषकोटि में समुद्री तूफान

गत मास, दक्षिण के समुद्री तट पर, रामेश्वरम्, धनुषकोटि आदि स्थानों पर भयंकर आंधी और समुद्री तूफान की भीषण दुर्घटना के सम्बन्ध में भारतीय कार्यसमिति अन्य देशवासियों के साथ गहरा दुःख अनुभव करती है। इस भीषण तूफान की लपेट में आये बन्धुओं को सरकारी और गैर-सरकारी स्तर

पर हर प्रकार की सहानुभूति और सहायता दी जानी चाहिए। आशा है सरकार इनके शीघ्र पुनर्वास के लिए पूर्ण प्रयत्न करेगी।

[24 जनवरी, 1965; विजयवाड़ा, बारहवां सा०अ०]

65.07. खाद्यान्न क्षेत्र

भारतीय कार्यसमिति, गुजरात शाखा के खाद्यान्न क्षेत्रों के विरुद्ध आन्दोलन चलाने के निश्चय की सराहना करती है। उसे यह जानकारी भी प्राप्त हुई है कि आन्दोलन में गुजरात के 95 प्रमुख कार्यकर्ता इस समय तक गिरफ्तारियां दे चुके हैं। गुजरात सरकार, जो स्वयं खाद्य क्षेत्रों को तोड़ने के पक्ष में है, यह स्वीकार करती है कि इस वर्तमान खाद्य-संकट का बहुत बड़ा कारण यह क्षेत्रीय व्यवस्था है। अतः इस आन्दोलन को दबाने की उसकी नीति और भी अधिक खेदजनक है। भारतीय कार्यसमिति, केन्द्रीय सरकार से साग्रह अनुरोध करती है कि खाद्य क्षेत्रों की इस घातक योजना के विरुद्ध बढ़ती हुई जनभावना को समझें और उसे शीघ्र रद्द करे।

[24 जनवरी, 1965; विजयवाड़ा, बारहवां सा०अ०]

65.08. पन्ना गोलीकांड

बड़े खेद और आश्चर्य का विषय है कि पन्ना में भारतीय जनसंघ के शान्तिपूर्ण प्रदर्शनकारियों पर पुलिस ने गोली चलाई है। उस क्षेत्र में खाद्यान्न की विकट स्थिति की ओर ध्यान आकृष्ट करने और सस्ती कीमत पर गरीब आदमी को गल्ला दिए जाने की व्यवस्था की सरकार से मांग करने के लिए ही यह प्रदर्शन किया गया था। परन्तु कांग्रेस सरकार ने प्रदर्शनकारियों को रोटी देने के बजाय उनका गोलियों से स्वागत किया। भारतीय कार्यसमिति इस गोलीकांड की तीव्र भर्त्सना करती है तथा राज्य सरकार से मांग करती है कि मामले की तुरन्त जांच कराए और दोषी पुलिस अधिकारियों को दण्ड दे।

[24 जनवरी, 1965, विजयवाड़ा, बारहवां सा०अ०]

65.18. खाद्य-स्थिति

पिछले डेढ़ वर्षों से लगातार बिगड़ती हुई खाद्यान्न समस्या अब अत्यन्त विषम स्वरूप धारण करती जा रही है। एक ओर तो कीमतें इतनी बढ़ गई हैं कि अच्छे मध्यम दर्जे के व्यक्ति की भी पहुंच के वे बाहर हैं, दूसरी ओर सरकार

की वितरण व्यवस्था इतनी दोषपूर्ण है कि लोगों को घण्टों पंक्ति में खड़े रहने के बाद भी खाली हाथ लौटना पड़ता है। जो कुछ मिलता है वह इतने घटिया किस्म का है कि अनेक दृष्टि से उसे मानवोपयोग के लिए प्रयुक्त नहीं किया जा सकता। गेहूं और ज्वार की स्थिति बहुत गिर गई है। गेहूं और ज्वार पैदा करने वाले क्षेत्रों में भी उनका मिलना दूभर हो गया है। यदि शीघ्र ही प्रभावी उपाय नहीं किये गए तो अनेक क्षेत्रों में अकाल की स्थिति उत्पन्न हो जाएगी।

वर्तमान स्थिति के लिए शासन पूर्णतः जिम्मेदार है। केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों की अभी तक कोई भी सुनिश्चित और सुस्पष्ट खाद्य-नीति नहीं बन पाई है। यहां तक कि प्रान्त और केन्द्र में कौन इस प्रश्न के लिए मूलतः जिम्मेदार है यह भी वे तय नहीं कर पाये। फलतः केन्द्र और प्रान्त एक दूसरे की विरोधी नीतियां अपनाकर चलते हैं तथा अब तो वे सार्वजनिक रूप से परस्पर दोषारोपण भी कर रहे हैं। प्रान्तों में आवागमन सम्बन्धी पाबन्दियों के लिए यदि केन्द्र की पूर्व अनुमति न ली गई तो अपने संकटकालीन अधिकारों का उपयोग करके, केन्द्र उन्हें रद्द कर देगा—यह घोषणा तो अवश्य की गई है किन्तु केवल खानापूरी मात्र ही वह सिद्ध हुई है।

खाद्यान्न व्यापार निगम अपना कोई तन्त्र नहीं बना पाया है। सरकारों ने लेवी लगाकर अन्न लेने का जो प्रयत्न किया है उससे बाजारों में गल्ला आना रुक गया है। किसानों से जोर-जबर्दस्ती से वसूल करने के भी प्रयत्न असफल हो गए हैं। उल्टे भविष्य के सम्बन्ध में उनके मन में आशंका पैदा हो गई है। नौकरशाही को मनमाने अधिकार मिल गए हैं। इसका परिणाम यह हो रहा है कि अनेक किसान अन्नों के स्थान पर दूसरी प्रकार की फसलें बो रहे हैं।

आवश्यकता है कि स्थिति को सम्हालने के लिए अविलम्ब उपाय किये जाएं। भारतीय जनसंघ का सुझाव है कि :

(1) केन्द्र में एक छोटी-सी उच्चाधिकार सम्पन्न खाद्य-समिति बनाई जाए तथा सम्पूर्ण देश में खाद्य-नीति का निर्धारण उसके अनुसार हो; प्रान्तों को अपनी अलग नीति न बनाने दी जाए।

(2) अन्न के क्षेत्र पूर्णतः समाप्त कर दिये जाएं तथा व्यापार पर लगे सभी प्रतिबन्ध खतम किये जाएं; लेवी तथा सब प्रकार के एकाधिकार समाप्त किये जाएं। आज सरकार ने जो नियन्त्रण लगाए हैं उससे केवल चोर-बाजारी और कृत्रिम अभाव की स्थिति पैदा हुई है तथा भारी मुनाफाखोरी की प्रवृत्ति को बल तथा उसको अवसर मिला है।

(3) खाद्यान्न व्यापार निगम एक व्यापारी के नाते बाजार में आए तथा खरीद और बिक्री के लिए अपनी व्यवस्था करे। उसे किसान के साथ आगामी खरीद के लिए व्यवस्था करनी चाहिए।

(4) सरकारी कर्मचारियों तथा अन्य उद्योग धन्धों के मजदूरों के लिए सस्ते गल्ले की दुकानें खोली जाएं।

[10 जुलाई, 1965; जबलपुर, के०का०स०]

65.22. खाद्य-स्थिति

पिछले डेढ़ वर्ष से खाद्य समस्या विषम से विषमतर होती जा रही है। फसल आने के पहिले उसमें कुछ सुधार नजर आया था किन्तु विभिन्न राज्य सरकारों ने लेवी, क्रय तथा वितरण के सम्बन्ध में जो नियन्त्रणकारी आदेश दिये उससे अनाज के दाम फिर तेजी से बढ़े हैं तथा अनेक क्षेत्रों में अभाव की स्थिति पैदा हो गई है। सरकार की कोई निश्चित, समन्वित एवं राष्ट्रीय नीति नहीं है। मुख्यमंत्रियों की समिति ने जो निर्णय लिये हैं, वे बहुत ही अधूरे एवं अव्यावहारिक हैं। राज्य सरकारें अपनी जिम्मेदारी का निर्वाह नहीं कर पाई हैं। उनके पास आवश्यक तंत्र नहीं हैं। उनकी नीतियों ने व्यापार के सामान्य प्रवाह में रुकावट डाल दी है तथा व्यापारी और किसान दोनों को शंकित कर दिया है। आवश्यकता है कि सम्पूर्ण नीति का पुनर्विचार कर उसका व्यावहारिक आधार पर निर्धारण किया जाए। भारतीय जनसंघ निम्नलिखित सुझाव देता है :

(1) अन्न के क्षेत्र समाप्त कर दिये जाएं, अनाज के आवागमन पर लगे सभी प्रतिबन्ध हटा दिये जाएं।

(2) अन्न का वितरण सम्बन्धी दायित्व केन्द्र की ओर से हो, प्रान्त सरकारें केवल उत्पादन कार्यक्रमों के लिए जिम्मेदार हों।

(3) वसूली की प्रथा समाप्त की जाए। सरकार, सहकारी संस्थाएं तथा खाद्यान्न निगम किसी को भी खरीद का एकाधिकार न हो। खाद्यान्न निगम एक बड़े व्यापारी के नाते बाजार में आए।

(4) निगम द्वारा खरीद के निम्नतम मूल्य घोषित किये जाएं। किन्तु कृषक को बाजार भाव पर अपनी फसल बेचने से न रोका जाए।

(5) भावों को बढ़ने से रोकने के लिए खाद्यान्न निगम व्यापारिक उपायों को काम में लाये। सरकार मौद्रिक एवं वित्तीय नीतियों का सहारा ले। भौतिक नियंत्रण न लगाये जाएं।

(6) बड़े शहरों में राशनिंग लागू किया जाए। किन्तु साथ में कुछ खुली दुकानें भी रहें। अभावग्रस्त क्षेत्रों तथा कम-आय-वाले व्यक्तियों के लिए सस्ते अनाज की दुकानों की व्यवस्था हो। महंगाई भत्ते को महंगाई से जोड़ा जाए अथवा इन वर्गों के लिए सस्ते दामों पर जीवन की आवश्यक वस्तुएं बेचने की व्यवस्था की जाए।

(7) खाद्यान्न पर लगे बिक्री-कर तथा अन्य सब कर, देश के हर भाग में अविलम्ब समाप्त किये जाएं।

[17 अगस्त, 1965; दिल्ली, भा०प्र०स०]

65.27. युद्धोत्तर खाद्य-स्थिति

पाकिस्तान के साथ युद्ध प्रारम्भ होने के पूर्व देश के समक्ष अन्न की समस्या विषम रूप में उपस्थित थी। विभिन्न क्षेत्रों में अवर्षण के कारण फसलों को क्षति हुई है। बाहर से अन्न के मिलने में भी कठिनाई उत्पन्न हो गई है। लड़ाई के समय विभिन्न मंडियों में बिकवाली के कारण मूल्यों में कमी आई थी किन्तु युद्ध-विराम के बाद पुनः मूल्य बढ़ने प्रारम्भ हो गए हैं। अभी युद्ध टला नहीं है। आगे स्थिति और भी गम्भीर हो सकती है। युद्ध के सफल संचालन तथा अर्थव्यवस्था की सुदृढ़ता के लिए यह आवश्यक है कि अन्न के मोर्चे पर भी हम पूरी सतर्कता और सफलता के साथ काम करें। इस हेतु उत्पादक, उपभोक्ता, वितरण और शासन सभी को अत्यन्त मनोयोग एवं दक्षतापूर्वक काम करना होगा। एक ओर अन्न का अधिकतम उत्पादन करना होगा तथा दूसरी ओर जो कुछ उपलब्ध है उसके ठीक वितरण की व्यवस्था करनी होगी तथा अत्यन्त संयम के साथ अपनी आवश्यकताओं को कम करना होगा। आत्मनिर्भरता हमारा लक्ष्य होना चाहिए। वर्तमान संकट की स्थिति में भारतीय जनसंघ निम्नलिखित सुझाव देता है :

(1) कृषकों को अन्नोत्पादन के लिए प्रेरित किया जाए। उनके द्वारा 'धान्यप्रदान' के कार्यक्रम आयोजित किये जाएं। बंजर जमीन को तोड़कर वहां तुरन्त सघन खेती की व्यवस्था की जाए।

(2) एक लाख से ऊपर के नगरों तथा अभावग्रस्त क्षेत्रों में राशन प्रणाली लागू की जाए। राशन की मात्रा कम से कम 6 छटांक रखी जाए। अन्न के क्षेत्र खतम कर दिये जाएं तथा अन्न की कीमतों और उसके लाने लेजाने पर सभी रोक समाप्त कर दी जाए। राशन के बाद चोर-बाजारी, भ्रष्टाचार आदि न फैले इसकी चिन्ता करके सम्पूर्ण व्यवस्था की जाए।

(3) अन्न की खपत कम करने के लिए सब प्रकार के कदम उठाये जाएं। युद्ध में विजय की कामना लेकर सप्ताह में एक दिन 'विजयव्रत' रखा जाए।

[27 सितम्बर, 1965; दिल्ली, के०का०स०]

66.05. खाद्य-स्थिति; कुछ सुझाव

भारतीय कार्यसमिति देश के विभिन्न भागों में बिगड़ती हुई खाद्य स्थिति

पर गहरी चिन्ता प्रकट करती है। पिछले वर्ष अनावृष्टि के कारण खरीफ की फसल बहुत बड़े क्षेत्र में नष्टप्रायः हो गई। रबी के आसार भी कोई बहुत अच्छे नहीं हैं। फलस्वरूप देश भर में अन्न और चारे की भारी कमी हो गई है। कुछ क्षेत्रों में तो अकाल की स्थिति पैदा हो गई है।

प्राकृतिक कारणों से उत्पन्न अभाव को दूर करने के स्थान पर विभिन्न राज्य सरकारों ने पिछले वर्षों में जो अनिश्चित, मनमानी, संकुचित, स्वार्थमयी तथा अदूरदर्शितापूर्ण नीतियां अपनाई हैं उनसे जनता की कठिनाइयां बढ़ी हैं। बंगलौर में कांग्रेस अधिवेशन के समय हुए खाद्य मंत्रियों के सम्मेलन में यह निश्चय किया गया था कि एक राष्ट्रीय खाद्यनीति का निर्धारण किया जाएगा। खेद का विषय है कि उस दिशा में कोई व्यावहारिक पग नहीं उठाए गए। फलतः राज्य व्यापार, राशनिंग, लेवी, गल्ला-वसूली, निम्नतम और अधिकतम मूल्य, अनाज के आवागमन आदि सभी विषयों पर एक अराजकता की स्थिति विद्यमान है। क्षेत्रीय प्रतिबन्धों का तो यह हाल है कि आज विभिन्न प्रकार के अनाजों के आने-जाने पर प्रादेशिक आधार पर ही नहीं कहीं-कहीं तो जिलों और पंचायतों के बीच भी रोक लगा दी गई है। फलतः आज अन्न का व्यापार अस्त-व्यस्त है। किसान अन्नोत्पादन के प्रति निरुत्साहित हो रहा है। उपभोक्ता का संकट भी बढ़ा है। मूल्यों में वृद्धि हो रही है और उपलब्धि कठिनतर हो गई है।

भारतीय जनसंघ बलपूर्वक अपने सुझावों को दुहराता है कि :

(1) एक राष्ट्रीय खाद्यनीति का निर्धारण कर उसका दृढ़तापूर्वक और प्रभावी रूप से पालन किया जाए। आवश्यकता है कि अनाज की खरीद और बिक्री, केन्द्र का विषय हो। राज्य सरकारों पर अन्नोत्पादन की वृद्धि की जिम्मेदारी डाली जाए। बड़े पैमाने पर विदेशी अनाज के आयात के कारण उत्पादन बढ़ाने और देश को आत्मनिर्भर बनाने के प्रयत्नों में कमी नहीं आनी चाहिए।

(2) खाद्यान्न के क्षेत्र अविलम्ब समाप्त कर दिए जाएं और अन्न के आवागमन पर जिले और अन्य स्तरों पर लगाए गए प्रतिबन्ध हटा लिये जाएं।

(3) खाद्यान्न निगम सभी प्रदेशों में अपनी शाखाएं खोले। वह अन्न के व्यापार का एकाधिकार न लेकर एक प्रतिस्पर्धी व्यापारी के रूप में बाजार में अन्न की खरीद तथा बिक्री के लिए व्यापक पैमाने पर अपना तन्त्र निर्माण करे।

(4) लेवी, जबरिया गल्ला वसूली, और खरीद के एकाधिकार सम्बन्धी कानून खत्म कर दिए जाएं।

(5) सस्ते गल्ले की दुकानों के साथ-साथ पी०एल०-480 के अन्तर्गत आयातित गेहूं के कुछ भाग को बाजारों में बिक्री के लिए लाया जाए। इससे दबा गल्ला बाहर निकलेगा और मूल्य स्थिर होंगे।

भारतीय जनसंघ सरकार को सचेत करता है कि अन्न के प्रश्न को दलबन्दी के दृष्टिकोण से न देखे और इसके मूल में निहित सम्भावनाओं की गंभीरता का विचार करके प्रभावी ढंग से सुलझाने का यत्न करे। यदि जनता की कठिनाइयों के प्रति सरकार संवेदनशील न रही तो हमारा यह प्रजातन्त्रीय कर्तव्य हो जाता है कि देश में भुखमरी और अराजकता को फैलने से रोकने के लिए हम शान्तिपूर्ण तरीकों से जनमत का प्रबल संगठन कर शासन को सही नीतियां अपनाने के लिए विवश करें।

[15 जनवरी, 1966; कानपुर, के०का०स०]

66.09. खाद्य मंत्रालय का नया कार्यक्रम

भारतीय जनसंघ निरन्तर बिगड़ती हुई खाद्य स्थिति पर चिन्ता प्रकट करता है। रबी की फसल आशा से कुछ अच्छी होने तथा विदेशों से विपुल मात्रा में अन्न के आयात के उपरान्त भी देश के विभिन्न भागों में अभी भी अभाव की स्थिति बनी हुई है। कुछ क्षेत्रों से भुखमरी के समाचार भी मिले हैं। इस स्थिति के लिए शासन की वितरण व्यवस्था मुख्यतः जिम्मेदार है। बार-बार घोषणा करने के उपरान्त भी शासन एक राष्ट्रीय खाद्यनीति का निर्धारण नहीं कर पाया। राज्य सरकारें मनमानी कर रही हैं। तर्क और जन-भावनाओं के विपरीत होते हुए भी कुछ राज्य सरकारों की हठवादिता के कारण अन्न के क्षेत्र बने हुए हैं। अन्न-वसूली, लेवी, तथा खरीद के एकाधिकार आदि ने खाद्यान्न व्यापार को अस्त-व्यस्त कर दिया है। राशन व्यवस्था भी सभी बड़े नगरों और अत्यधिक अभाव के क्षेत्रों में लागू नहीं की गई और जहां चल रही है वहां राशन की मात्रा अपर्याप्त और व्यवस्था दोषपूर्ण है। अनेक राज्यों में अनौपचारिक राशन व्यवस्था के अन्तर्गत चलाई गई सस्ते अन्न की दुकानें भी बन्द कर दी गई हैं।

उर्वरक-आयात—केन्द्रीय खाद्य मन्त्रालय ने जिस नये कार्यक्रम की घोषणा की है उसकी सफलता भी सन्देहास्पद है। कुछ सघन क्षेत्रों में नये किस्म के बीज उगाने की योजना है। उसके लिए काफी मात्रा में उर्वरक और दूसरी सामग्री दी जाएगी। इतनी मात्रा में उर्वरक प्राप्त करने के लिए विदेशों से उसका आयात बढ़ाया जा रहा है और दूसरी ओर विदेशी कम्पनियों को उनकी शर्तों पर उर्वरक के कारखाने खोलने की छूट दी जा रही है। इसका परिणाम यही होगा कि आज तो हम गेहूं-चावल के लिए विदेशों की ओर देखते हैं, कल उर्वरक के लिए भी पराश्रित हो जाएंगे। जनसंघ का मत है कि स्थानिक साधनों, जैसे खाद, कम्पोस्ट आदि पर अधिक बल दिया जाए। उर्वरकों वाली खेती के लिए सिंचाई की बहुत आवश्यकता है। सिंचाई की सुविधाएं सर्वत्र समान नहीं हैं। फलतः क्षेत्रीय वैषम्य

बढ़ेगा और चारों ओर से खींचकर कुछ ही क्षेत्रों के लिए उर्वरक देने के कारण औसत पैदावार में कमी आएगी ।

जनसंघ की मांग है कि :

(1) अन्न के क्षेत्र समाप्त कर दिए जाएं । हाल में पंजाब, दिल्ली तथा उत्तर प्रदेश को मिलाकर गेहूं का एक क्षेत्र बनाने का निर्णय-योग्य दिशा में एक कदम है किन्तु जब तक सम्पूर्ण देश को एक इकाई नहीं माना जाएगा, इस प्रकार के काम चलाऊ प्रबन्धों से समस्या का समाधान नहीं होगा ।

(2) खाद्य निगम सभी राज्यों में अपनी शाखाएं खोले । वह बाजार में एक प्रतिस्पर्धी व्यापारी के नाते से खरीद और बिक्री के लिए आये । उसे किसी भी प्रकार का एकाधिकार न दिया जाए । अन्न की खरीद और वितरण का दायित्व निगम पर ही हो । राज्य सरकारें यह काम न करें । किसान को प्रोत्साहन मूल्यों की गारंटी दी जाए । इन न्यूनतम मूल्यों की घोषणा फसल की बुवाई के पहिले की जाए तथा उन मूल्यों पर निगम द्वारा खरीद की व्यवस्था हो ।

(3) लेवी की पद्धति और जबरिया गल्ला वसूली की प्रथा समाप्त की जाए ।

(4) जहां राशन व्यवस्था लागू है वहां उसकी मात्रा कम से कम 2,400 ग्राम प्रति व्यक्ति प्रति सप्ताह हो । परिश्रम करने वालों को प्रति इकाई 3,400 ग्राम दिया जाए ।

[1 मई, 1966; जलन्धर, तेहरवां सा०अ०]

66.20. सर्वदलीय गोहत्या निरोध समिति का आन्दोलन

गौ भारत का मानबिन्दु है । भारतीय इतिहास में केवल स्वराज्य काल में ही नहीं अपितु मुगलों के शासन में भी अकबर के राज्य काल तक गोहत्या पर प्रतिबन्ध रहा । अंग्रेजी राज के विरुद्ध स्वतन्त्रता के आन्दोलन में गोवंश की हत्या पर पाबन्दी की मांग सदैव प्रमुख रूप से रही तथा देश के नेताओं ने जनता को बताया था कि गोरक्षा के लिए अंग्रेजी राज्य की समाप्ति आवश्यक है । यह दुःख का विषय है कि स्वराज्य प्राप्ति के बाद कांग्रेस शासन ने इस वचन का पालन नहीं किया, प्रत्युत कोई न कोई बहाना करके इस विषय को टालते रहे । स्वराज्य प्राप्ति के तुरन्त बाद यह आश्वासन दिया गया कि संविधान के द्वारा गोहत्या पर प्रतिबन्ध लगाया जाएगा । किन्तु संविधान में इसका उल्लेख-मात्र राज्य की नीति के निर्देशक सिद्धान्तों (अनुच्छेद 48) में किया गया । यह आशा दिलाई गई थी कि इस निर्देश के अनुसार शीघ्र ही कानून बनाया जाएगा । जब 1952 में देशभर में हस्ताक्षर संग्रह करके इस कानून की मांग की गई तो

मामला राज्य सरकारों पर टाल दिया गया । कुछ राज्यों ने काफी आन्दोलन के बाद कानून भी बनाये । किन्तु उनकी कतिपय धाराओं को सर्वोच्च न्यायालय ने अवैध घोषित कर दिया, जिससे आज वे लंगड़े और अप्रभावी हो गए हैं । साथ ही जब तक देश के दूसरे भागों में गोहत्या चलती रहे तब तक एक-आध राज्य का कानून गोवंश की रक्षा में सहायक नहीं हो सकता । भारत सरकार द्वारा 1948 में बनाई गई समिति ने भी यही स्वीकार किया था । अतः आवश्यक है कि संविधान में संशोधन कर गोवंश की हत्या पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगाया जाए ।

उक्त मांग को लेकर सर्वदलीय गोरक्षा महाभियान समिति द्वारा देशभर में आन्दोलन चलाया जा रहा है । पिछले कई महीनों से दिल्ली में सत्याग्रह, धरना और भूख हड़ताल के द्वारा जनभावनाओं की अभिव्यक्ति हो रही है । पं० रामचन्द्र शर्मा वीर को अनशन करते हुए 70 दिन से अधिक हो गए । उनके पुत्र श्री धर्मेन्द्र भी अनशन पर बैठे हैं । सहस्त्रों की संख्या में साधु, महात्मा जेल यात्रा भुगत रहे हैं । आगामी गोपाष्टमी से जगद्गुरु शंकराचार्य जी (गोवर्धनपीठ), सन्त प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी तथा मुनि सुशीलकुमार जी ने अनिश्चित काल के लिए अनशन का संकल्प प्रकट किया है । देश के कोने-कोने से लक्षावधि सत्याग्रही इस आन्दोलन को बल देने के लिए आगे आ रहे हैं । भारतीय जनसंघ सभी गोभक्तजनों का अभिनन्दन करता है और सर्वदलीय गोरक्षा महाभियान समिति को पूर्ण सहयोग का आश्वासन देता है ।

यह अत्यन्त ही खेद की बात है कि अब भी केन्द्रीय शासन अपनी पुरानी टालमटोल की नीति से काम ले रहा है । तथा राज्यों का सहारा लेकर अपनी जिम्मेदारी को टाल रहा है । राज्य संविधान में संशोधन नहीं कर सकते । यह काम तो केन्द्र में संसद को ही करना होगा । संविधान में संशोधन किये बिना राज्य सरकारों के कानूनों से गोहत्या बन्दी की मांग पूरी नहीं होगी । शासन की उपेक्षा वृत्ति से इस प्रश्न पर जनक्षोभ बढ़ता जा रहा है । गो के विषय में जनता की भावनाएं बहुत गहरी हैं । यदि किसी भी अवसर पर जनरोष बल पकड़ गया तो उसके गंभीर परिणाम होंगे, जिनके लिए शासन पूर्णतः जिम्मेदार होगा । अतः यह प्रतिनिधि सभा बलपूर्वक शासन से मांग करती है कि वह विवेक से काम ले तथा संसद के वर्तमान सत्र में संविधान में संशोधन कर गोहत्या पर रोक लगाए ।

[2 नवम्बर, 1966; नागपुर, के०का०स०]

66.22. अकाल की छाया : कुछ कदम

देश के विभिन्न भागों में विशेषतः बिहार, पूर्वी उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश व राजस्थान में सूखे के कारण खरीफ की फसल प्रायः नष्ट हो गई है तथा जमीन

में नमी के अभाव में रबी की संभावनाएं भी कम हो गई हैं। फलतः एक बड़े पैमाने पर अकाल की छाया मंडरा रही है। खाद्य ही नहीं पीने के पानी की कमी स्थान-स्थान पर पैदा हो रही है। पशुओं के लिए चारे का भी भारी अभाव हो गया है।

वर्तमान स्थिति के लिए अनावृष्टि के साथ ही शासन की नीतियां भी काफी अंशों में जिम्मेदार हैं। गत वर्ष पाकिस्तान के साथ संघर्ष के समय विदेशों से अन्न के आयात की स्थिति अनिश्चित होने पर संपूर्ण देश में आत्मनिर्भरता तथा अन्नोत्पादन की वृद्धि के लिए युद्धस्तर प्रयास का वातावरण बना था। किसान को सब प्रकार की सहायता देने की घोषणा की गई थी। किन्तु बाद में यह नीति बदल दी गई। सिंचाई के लिए किसानों को पम्प देने का काम भी धीमा हो गया। कृषि की नई नीति के नाम पर समस्त साधन कुछ ही सिंचाई के क्षेत्रों में डाले गए। धान का 'ताइचुंग नेटिव' बीज बड़े पैमाने पर दिया गया किन्तु इस बीज की खेती के लिए कीटाणुनाशक औषधियों के प्रयोग तथा अन्य सतर्कताओं का आवश्यक ज्ञान किसानों को नहीं दिया गया। फलतः बड़े क्षेत्र में ताइचुंग की फसल मारी गई। उनके क्षेत्रों में लगातार दो वर्षों से फसल खराब हो गई है। जो कुछ पैदा हुआ था वह भी शासन द्वारा अब लेवी की वसूली की योजनाओं के अन्तर्गत किसान से ले लिया गया है। परिणामस्वरूप आज देहातों में भी ऐसे बहुत ही थोड़े किसान हैं जिनके पास खाने को अन्न बचा हो। फसल की खराबी के कारण खेतिहर मजदूरों को आजकल काम भी नहीं मिल रहा है। इससे उनकी क्रय-शक्ति भी नहीं रही है। आवश्यकता है कि इस भीषण अकाल के संकट का निराकरण करने के लिए व्यापक उपाय अपनाए जाएं।

यह अत्यन्त खेद का विषय है कि विभिन्न राज्यों और क्षेत्रों में जो राहत और सहायता के कार्य प्रारम्भ हुए हैं उनका गुट तथा दलीय दृष्टि से उपयोग किया जा रहा है। इस प्रकार की शिकायतें केवल विरोधी दलों के कार्यकर्ताओं ने ही नहीं अपितु कांग्रेस के मंत्रियों ने भी की हैं। भारतीय जनसंघ शासक दल तथा अधिकारियों की इस प्रवृत्ति की निन्दा करता है। जनसंघ का मत है कि यह संकट इतना गंभीर और व्यापक है कि उसका निराकरण सभी के सहयोग की अपेक्षा रखता है। दलीय आधार पर भेदभाव अनुचित ही नहीं अमानवीय भी है। भारतीय जनसंघ का सुझाव है कि :

(1) विभिन्न स्तरों पर सर्वदलीय समितियां बनाई जाएं।
(2) जहां फसल काफी मात्रा में खराब हो गई है वहां तुरन्त अकाल की घोषणा कर सभी सुविधाएं दी जाएं।
(3) राहत कार्य बड़े पैमाने पर आरम्भ किये जाएं।
(4) जो लोग अपाहिज तथा अक्षम हैं उन्हें निःशुल्क भोजन देने की व्यवस्था की जाए।

(5) जहां फसल खराब हो गई है वहां लगान में छूट दी जाए। तकावी तथा अन्य ऋणों की वसूली बन्द की जाए और विद्यार्थियों की फीस भी माफ की जाए।
(6) सिंचाई के छोटे अस्थायी साधन तुरन्त उपलब्ध किये जाएं।
(7) विभिन्न राज्यों में प्रचलित अकाल संहिताओं में संशोधन कर उन्हें आज की आवश्यकताओं के अनुरूप बनाया जाए।

भारतीय जनसंघ अपनी सभी शाखाओं को आदेश देता है कि वे शासन की राहत संबंधी सभी योजनाओं में सहयोग दे और अपनी ओर से सहायता कार्य आयोजित करें।

[2 नवम्बर, 1966; नागपुर, के०का०स०]

67.05. बिहार के अभावग्रस्त क्षेत्रों के लिए अपील

अखिल भारतीय जनसंघ की कार्यसमिति बिहार प्रदेश तथा देश के अन्य भागों में उत्पन्न अकाल की परिस्थिति पर चिन्ता प्रकट करती है।

आज लगभग सारा बिहार अकाल की चपेट में आ गया है। अनावृष्टि के कारण पिछली दो फसलें—रबी तथा खरीब की—नष्ट हो चुकी हैं। अन्नाभाव के कारण लोगों का कालकवलित होना आरम्भ हो गया है। पशुओं को चारा नहीं मिल रहा है। कुएं सूखते जा रहे हैं। आगामी छः माह तक यह संकट उत्तरोत्तर बढ़ता जाएगा। भारतीय जनसंघ की यह कार्यसमिति बिहार तथा अन्य क्षेत्रों के इस संकट को राष्ट्रीय संकट मानती है तथा इसका सामना करने के लिए देश की जनता तथा जनसंघ की समस्त शाखाओं का आह्वान करती है। कार्यसमिति का यह मत है कि इस समय सभी शाखाएं अन्न, धन आदि एकत्रित करें तथा अविलम्ब बिहार भेजना प्रारम्भ करें।

[14 मार्च, 1967; दिल्ली, के०का०स०]

67.08. अकाल-स्थिति

भारतीय प्रतिनिधि सभा देश की लगातार बिगड़ती हुई खाद्य स्थिति पर चिन्ता व्यक्त करती है। इसके लिए जहां लगातार दो वर्षों तक चलती आई अनावृष्टि उत्तरदायी है वहां यह भी एक खेदजनक सत्य है कि सरकार की नीतियों ने प्राकृतिक कोप के परिणामों को कम करने के स्थान पर स्थिति को क्षेत्रीय अथवा स्थानीय हितों तथा केवल अल्पकालीन दृष्टि से देखने के कारण समस्या को अधिक उलझाया है। इस समय देश के एक बड़े भाग में अकाल

पड़ गया है और अनेक स्थानों से भुखमरी के हृदयद्रावक समाचार आ रहे हैं। यह अत्यन्त खेद का विषय है कि इसके उपरान्त भी इस भयंकर समस्या का सामना करने के लिए एक राष्ट्रीय खाद्य नीति का निर्धारण नहीं किया गया और हाल में ही इस हेतु बुलाये गए खाद्य एवं मुख्य-मंत्रियों का सम्मेलन भी इस दृष्टि से सफल नहीं हुआ।

भारतीय जनसंघ का यह दृढ़ मत है कि दूरगामी एवं समग्र देश की दृष्टि से विचारित एक सुस्पष्ट नीति के निर्धारण और उसके प्रभावी कार्यान्वियन के बिना खाद्य समस्या कुछ समय के लिए टलती भले ही नजर आये किन्तु हल नहीं हो पाएगी। इसके लिए आवश्यक है कि निम्न सुझावों पर अविलम्ब आचरण किया जाए।

(1) खाद्य समस्या सम्पूर्ण देश की समस्या है न कि कुछ क्षेत्रों अथवा प्रान्तों की। इस मूल मान्यता को स्वीकार करते हुए उत्पादन की जिम्मेदारी राज्य सरकारों पर और उचित वितरण की केन्द्र सरकार पर डाली जाए।

(2) खाद्यान्न के वितरण की क्षेत्रीय योजना को समाप्त करके सारे देश को एक क्षेत्र माना जाए और जिलों तथा अन्य छोटे स्तरों पर भी अन्न के आवागमन पर कोई प्रतिबन्ध न रखे जाएं।

(3) बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, दिल्ली आदि बड़े नगरों को जो अपनी अधिक क्रयशक्ति के कारण आसपास के इलाकों से अन्न खींचकर वहां कीमतें बढ़ा देते हैं तथा अत्यन्त अन्नाभाव के अथवा अकालग्रस्त क्षेत्रों को परिसीमित करके इन दोनों प्रकारों के लिए विशेष व्यवस्था की जाए। बाकी सारे देश में अन्न के आवागमन और क्रय-विक्रय को खुला रखकर खाद्य निगम के माध्यम से बाजार में खरीद व बिक्री के द्वारा कीमतों को विनियमित किया जाए। लेवी, जबरिया गल्ला वसूली, और खरीद के एकाधिकार को समाप्त कर दिया जाए। यदि लेवी आवश्यक ही हो तो वह अनाज के व्यापारियों से ली जाए ताकि कृषक की खाद्यान्नोत्पादन की प्रेरणा पर आघात न हो। अनाज पर लगा बिक्री-कर हटाया जाए।

(4) श्रमिक तथा निर्धन वर्ग के लिए आयातित तथा खाद्य निगम द्वारा खरीदे गए अनाज की बिक्री के वास्ते सस्ते गल्ले की दुकानें रखी जाएं। विदेशी अन्न का वितरण ऐसी गैर-सरकारी मशीनरी से किया जाए जो लोगों की गरीबी का लाभ उठाकर उनका मत परिवर्तन न करे। सरकारी कर्मचारियों तथा निश्चित-आय-वाले वर्गों के लिए महंगाई-भत्ता सस्ते अनाज के रूप में दिया जाए जिसमें होने वाला घाटा सरकार अथवा मालिक पूरा करें। इसका कुछ आनुषांगिक लाभ कीमतों की वृद्धि को रोकने में भी होगा और स्फीति के कुचक्र को तोड़ने में सहायता मिलेगी।

भारतीय जनसंघ का विश्वास है कि इस प्रकार की नीति से जहां कृषक को उत्पादन में वृद्धि करने की प्रेरणा मिल सकेगी और इस प्रकार उत्पादन वृद्धि के द्वारा समस्या का दीर्घकालीन हल सम्भव होगा, वहां अल्पकाल में वितरण की ऐसी व्यवस्था बन सकेगी जिसमें समाज के दुर्बल वर्गों को राहत मिलेगी और देश के विभिन्न भागों में संकुचित के स्थान पर एक देशव्यापी दृष्टिकोण का विकास होगा तथा नियन्त्रणों की भरमार में पनपने वाले भ्रष्टाचार और तस्कर व्यापार की समाप्ति हो सकेगी।

[21 अप्रैल, 1967; दिल्ली, भा०प्र०स०]

67.19. कोयना-भूकम्प

भारतीय जनसंघ कोयना क्षेत्र में भूकम्प से हताहत व्यक्तियों के प्रति अपना शोक और संवेदना प्रकट करता है और पीड़ित परिवारों को विश्वास दिलाता है कि प्राकृतिक प्रकोप की इस घड़ी में सारा देश उनके साथ है।

[26 दिसम्बर, 1967; कालीकट, चौदहवां सा०अ०]

67.24. सरकारी गोरक्षा समिति की मन्द गति

देश स्वतंत्र होने के बाद जनता में आशा पैदा हुई थी कि भारत के स्वाभिमान, गौरव और सुखी तथा समृद्ध जीवन के महान प्रतीक स्वरूप गोवंश की रक्षा और संवर्धन के लिए तत्काल कदम उठेंगे और गो-हत्या पर कानूनन प्रतिबन्ध लगाकर सामाजिक आकांक्षाओं की पूर्ति की जाएगी।

किन्तु शासन ने इस प्रश्न को टालने की नीति अपनाई और वर्षों तक इस प्रश्न पर बार-बार जनमत-प्रकटीकरण, सत्याग्रह तथा अनशन आदि करने की नौबत आई।

गत वर्ष 7 नवम्बर, 1966 को इस राष्ट्रीय जन-आन्दोलन का जो महान प्रभावी कार्यक्रम लोकसभा के समक्ष प्रदर्शन के रूप में हुआ उसका आदर करने के बदले शासन ने प्रदर्शन में सम्मिलित साधु-सन्यासियों, अबलाओं-वृद्धों और अन्य शान्त प्रदर्शनकारियों पर (जिनकी संख्या कम से कम 7 लाख थी) गोली वर्षा की, घोड़े दौड़ाये और अनेक अत्याचार किये तथा आंदोलन को बदनाम करने के लिए अप-प्रचार के अस्त्र का भी दुरुपयोग किया। लाठी और गोली से जनमत को कुचलने में असमर्थ होने पर भारत-शासन ने गोवंश की रक्षा और संवर्धन के प्रश्न पर रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए एक समिति की नियुक्ति की है।

किन्तु जनता देख रही है कि इस समिति की कार्यवाही को जिस मन्द चाल

से चलाने का प्रयत्न हो रहा है, उससे यह आशंका सार्थक होती है कि भारत सरकार की, इस राष्ट्रीय प्रश्न पर, आज भी नीयत साफ नहीं है ।

जनसंघ का यह स्पष्ट मत है कि यदि अविलम्ब गोवंश की हत्या पर सम्पूर्ण प्रतिबन्ध नहीं लगाया जाएगा तो देश की सांस्कृतिक ही नहीं अपितु आर्थिक और सामाजिक दुरावस्था भी उत्तरोत्तर बढ़ती जाएगी । जिस देश में कभी दूध-घी की नदियां बहती थीं वहां अब बच्चों के लिए भी दूध का दर्शन दुर्लभ हो चला है । यह स्थिति असहनीय है ।

जनसंघ का यह चौदहवां अधिवेशन शासन से मांग करता है कि अपने द्वारा नियुक्त समिति की रिपोर्ट शीघ्रतम तैयार करने की नीति शासन अपनाए, कदम उठाये तथा व्यवस्था करे और गोवंश की हत्या पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगाने की घोषणा करे ।

[26 दिसम्बर, 1967; कालीकट, चौदहवां सा०अ०]

68.10. फरक्का बांध

फरक्का में गंगा नदी पर बांध बनाकर हुगली नदी में पर्याप्त पानी लाने और उसकी उचित गहराई बनाए रखकर कलकत्ता बंदरगाह को चालू रखने की आवश्यकता दीर्घकाल से अनुभव की जाती रही । यह बांध बनाने का सुझाव विभाजन से बहुत पहले कुछ ब्रिटिश विशेषज्ञों ने रखा था । इससे पाकिस्तान के हितों पर कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि सिंचाई तथा अन्य कार्यों के लिए पाकिस्तान को गंगा के जल की बहुत कम आवश्यकता है । छठे दशक के मध्य में जब भारत सरकार ने इस परियोजना को हाथ में लिया तब पाकिस्तान चाहता था कि उसे लगभग 3,800 घनफुट जल प्रति सैकेंड (cusecs) मिलते रहने का विश्वास दिलाया जाए और भारत को इसमें कोई आपत्ति नहीं थी ।

किन्तु, इधर हाल में पाकिस्तान ने नई-नई आपत्तियां उठाना आरम्भ कर दिया है । उसने फरक्का बांध से मिलने वाले पानी की मांग 3,800 क्यूसेक से बढ़ाकर 49,000 क्यूसेक कर दी है । स्पष्ट है कि पाकिस्तान यह सब राजनीतिक कारणों से कर रहा है । उत्तरी बंगाल को दक्षिणी बंगाल से इस बांध के द्वारा जोड़ने के भारत के प्रयत्न में वह बाधा डालना और कलकत्ता बंदरगाह को नष्ट करना चाहता है । उसका रवैया तो नांद में बैठे कुत्ते जैसा है ।

एक ओर तो वह फरक्का बांध के सम्बन्ध में ऐसी निराधार आपत्तियां उठा रहा है और दूसरी ओर पूर्वी बंगाल में ऐसी कई परियोजनाएं पूरी करने में जुटा है, जिनके बन जाने से बहुत बड़ा भारतीय क्षेत्र पानी में डूब जाएगा तथा और भी कई तरह से भारत के हितों को हानि पहुंचेगी ।

भारत सरकार न केवल इन परियोजनाओं के बारे में पाकिस्तान को प्रभावशाली ढंग से विरोध-पत्र भेजने में विफल रही, बल्कि सबसे बुरी बात तो यह है कि फरक्का बांध के संबंध में भी वह पाकिस्तानी दबाव के आगे झुकती जा रही है । बांध परियोजना का सर्वेक्षण करने के लिए पाकिस्तान को विशेषज्ञ भेजने की अनुमति और बांध-निर्माण के लिए क्षेत्र के चुनाव से पाकिस्तान में यह धारणा बनी है कि भारत सरकार पर दबाव डालकर इस परियोजना को रुकवाया जा सकता है । या फिर उसके बदले किसी अन्य क्षेत्र में पाकिस्तान के लिए बहुत ज्यादा छूट प्राप्त की जा सकती है ।

कलकत्ता बन्दरगाह तथा सैनिक दृष्टि से महत्वपूर्ण पूर्वी क्षेत्र में भारत के आम हितों की दृष्टि से भी यह जरूरी है कि बांध का निर्माण कार्य अब और ज्यादा विलम्ब किये बिना पूरा किया जाए । अतः कार्यसमिति भारत सरकार से अनुरोध करती है कि वह अपना दब्बूपन छोड़कर फरक्का बांध के प्रश्न पर पाकिस्तान के प्रति दृढ़ता की नीति अपनाए ।

[4 जून, 1968; गौहाटी, के०का०स०]

68.15. व्यापक बाढ़ और सूखा

गत दो वर्षों के भीषण अकाल की स्थिति में से निलकर आज जब देश भरपूर उपज के सुखद परिणामों का अनुभव करने को ही था उसी समय भारी पैमाने पर आई हुई बाढ़ों और उनके कारण फसलों की भीषण हानि के साथ-साथ व्यापक सूखे से उत्पन्न परिस्थिति का सामना उसे करना पड़ रहा है । आंध्र तथा मैसूर के अधिकांश तथा हरियाणा का बड़ा भाग तथा दक्षिणी महाराष्ट्र आज सूखे से पीड़ित है । गुजरात के चार और उड़ीसा के सात जिले भी प्रभावित हैं । राजस्थान का सारा सीमावर्ती प्रदेश वर्षों से सूखाग्रस्त है । उत्तर प्रदेश व मध्य-प्रदेश में भी इस संकट की आशंकाएं दिखाई दे रही हैं । इस स्थिति ने एक बार फिर बड़े दारुण ढंग से सिद्ध कर दिया है कि अब तक कृषि उत्पादन में जो कुछ सफलता मिलती रही है वह प्रकृति के अनुग्रह का प्रसाद अधिक रही है और हमारी योजनाओं का फल कम । वास्तव में सिंचाई, बाढ़-नियंत्रण, आदि एक से अधिक उद्देश्यों को लेकर बनाई गई बहुमुखी परियोजनाओं पर अरबों रुपया खर्च करने के पश्चात देश पर बाढ़ों तथा सूखे का एक साथ आया हुआ प्रकोप एक विडम्बना से कम नहीं है । गत वर्षों में वनों का जो विनाश हुआ है उसने और पानी के स्वाभाविक प्रवाह व निस्सरण के मार्गों को ध्यान में रखे बिना बनाई गई रेल लाइनों, नहरों व सड़कों तथा दोषपूर्ण चकबन्दी ने बाढ़ों की समस्या को उग्रतर कर दिया है । साथ ही साथ भारी भरकम तथा देखने में चमत्कारिक बांधों व नदी

घाटी योजनाओं के चाव में, स्थानीय प्रेरणा से उठाई जा सकने वाली छोटी सिंचाई योजनाओं, नलकूपों के निर्माण, तालाव, पोखरों की सफाई व सुधार आदि कार्यों की उपेक्षा ने सिंचाई की समस्या के हल को दृश्य-भविष्य से परे ही बनाये रखा है।

जनसंघ पहले से ही नलकूपों व सिंचाई के अन्य छोटे साधनों पर बल देता रहा है। यदि इस ओर समय पर ध्यान दिया गया होता तो आज की स्थिति ही उत्पन्न न होती। चौथी योजना की भूमिका में इनकी ओर अधिक ध्यान देने का आश्वासन दिया गया है परन्तु वह कितना क्रियान्वित होता है यह देखना बाकी है। हाल के अनुभवों से इस सम्बन्ध में शंका उत्पन्न होती है कि सरकार खाद्य और कृषि के मौलिक विषय को निपटाने के लिए अभी तक न तो सही दृष्टि अपना सकी है और न पर्याप्त क्षमता प्राप्त कर पाई है। परिवहन में तथा भंडार करने की ठीक व्यवस्था न होने के कारण, ऐसे देश में आज हजारों टन अनाज की बरबादी जो कल तक एक-एक दाने के लिए मोहताज था और जिसने इस वर्ष भी भारी मात्रा में खाद्यान्न का आयात किया है, यह सबके लिए लज्जा का विषय है। यही नहीं ऐसे निर्णय भी लिये जाते दिखाई देते हैं जो कृषि उत्पादन की दृष्टि से लाभकर नहीं हो सकते। उदाहरणार्थ, जहां 1968-69 की वार्षिक योजना में देहात के विद्युतीकरण से जुड़ी हुई छोटी सिंचाई की ओर अधिक ध्यान देने का दावा है वहां राष्ट्रपति शासन के द्वारा उत्तर प्रदेश तथा बिहार में बढ़ाई गई बिजली की दरों से यह आशंका होती है कि ये दावे खोखले हैं और सरकार अभी भी इस प्रश्न के यथार्थ रूप से कोसों दूर है। आन्ध्र प्रदेश में बिजली देने के लिए 1000 रु० के सरकारी कर्जे के बांड खरीदने की शर्त लगाना भी ऐसी ही मनोवृत्ति का द्योतक है जो विद्युतीकरण को निरुत्साहित करेगी। चालू वर्ष की योजना में सामुदायिक विकास के लिए लगभग 22 करोड़ रु० का प्रावधान किया गया है। अब तक का अनुभव यह है कि इस नाम पर किया गया खर्च राजनैतिक हेतु से लोक-धन का अपव्यय मात्र है। आज की सर्व-स्वीकृत स्थिति में इस व्यय का कोई औचित्य नहीं दिखाई देता।

केन्द्रीय जल शक्ति आयोग में पृथक बाढ़-विभाग—बाढ़ और सूखे की वर्तमान दोहरी आपत्ति में कार्यसमिति का यह सुविचारित मत है कि वर्षानुवर्ष होने वाले विनाश का केवल तात्कालिक विचार करके पीड़ित जनों को राहत मात्र देना ही पर्याप्त नहीं है। आवश्यक है कि सरकार केन्द्रीय जल व शक्ति आयोग में एक पृथक बाढ़ विभाग बनाये जो इस समस्या का हल करने का प्रयत्न करे। देश के जल साधनों का उचित उपयोग और कृषि की वर्षा-निर्भरता से मुक्ति के लक्ष्यों की पृष्ठभूमि में ही स्वाभाविक रूप से इसका विचार करना होगा। इसी प्रकार बाढ़ प्रतिरोध कार्य के लिए विशेष दस्ते प्रशिक्षित करके तैयार करने होंगे जो आवश्यकतानुसार अविलम्ब पहुंचाये जा सकें।

सूखा आयोग—दूसरी ओर सदैव सूखाग्रस्त रहने वाले क्षेत्रों की समस्या का समाधान करने के लिए प्रतिनिधि-सभा की मांग है कि सरकार एक सूखा आयोग स्थापित करे जो सूखाग्रस्त क्षेत्रों का सर्वेक्षण करके उनके लिए उपाय योजना करे और उनके कार्यान्वयन के लिए एक स्थायी व्यवस्था बनाये। अकाल संहिता बहुत पहले बनायी गई थी और आज की परिस्थिति के लिए वह सर्वथा अपर्याप्त और अवास्तविक है। किसी क्षेत्र को अकालग्रस्त घोषित करने की शर्त से लेकर राहत केन्द्रों में दी जाने वाली मजदूरी और वृद्ध तथा अक्षम लोगों को दी जाने वाली खुराक तक सभी बातों का पुनर्विचार आवश्यक है। पशुधन की हानि को रोकने के लिए घास-चारे की व्यवस्था करना भी अनिवार्य है। कार्यसमिति का मत है कि इस महत्वपूर्ण विषय की अब और अधिक उपेक्षा न करके सरकार को शीघ्र ही सुस्पष्ट और सुनिश्चित पग उठाने चाहिए।

अभी तात्कालिक रूप में, जो क्षेत्र बाढ़ग्रस्त हैं, वहां निम्न पग अविलम्ब उठाये जाएं :

(1) खड़े पानी को पम्पों के द्वारा निकालने की व्यवस्था की जाए ताकि रबी फसल की बुवाई की जा सके।

(2) प्रभावित क्षेत्रों में पानी के कारण जिन कारखानों की मशीनें खराब हो गई हैं तथा कच्चा माल नष्ट हो गया है, वहां मशीनों व माल संबंधी सहायता देकर उन्हें चालू करवाया जाए।

(3) सभी बाढ़ तथा सूखाग्रस्त क्षेत्रों में पशुधन की रक्षा के लिए चारे की व्यवस्था की जाए। मालिया व आबियाना तुरन्त माफ किया जाए तथा सभी प्रकार के सरकारी कर्जों की वसूली रोक दी जाए। साथ ही लोगों को काम देने के लिए नहरों व सड़कों का निर्माण, तालाब-जोहड़ों की सफाई, खुदाई, आदि सार्वजनिक कार्य अविलम्ब आरम्भ किये जाएं।

(4) जहां सूचना मिलने के पश्चात भी स्थानीय अधिकारियों की ओर से समय पर आवश्यक कार्यवाही न करने के कारण हानि हुई है, वहां ऐसी लापरवाही करने वालों के विरुद्ध जांच करके उन्हें दण्डित किया जाए।

[7 सितम्बर, 1968; इन्दौर, भा०प्र०स०]

69.10. अकाल-स्थिति

भारतीय जनसंघ देश के विभिन्न भागों में लगातार अवर्षण से उत्पन्न गम्भीर स्थिति पर गहरी चिन्ता प्रकट करता है। अन्न तथा जल के अभाव में मानव तथा पशुधन दोनों ही अत्यधिक पीड़ित तथा संकटग्रस्त हैं। कुछ प्रदेशों से व्यापक भुखमरी तथा पशुओं की अपार प्राणहानि के समाचार मिले हैं।

हरियाणा प्रदेश के हिसार, महेन्द्रगढ़, रोहतक तथा गुड़गांव जिलों में सूखे के कारण चारे तथा पेयजल की गम्भीर स्थिति है। इसी प्रकार मैसूर राज्य के 19 में से 12 जिलों की 50 प्रतिशत आबादी सूखे से प्रभावित है। आंध्र प्रदेश भी सूखे के संकट से अछूता नहीं रहा। वहां भी श्रीकाकुलम व रायलसीमा जिलों तथा अनन्तपुर जिले के दो तालुकों की पूरी फसल नष्ट हो गई है। उड़ीसा प्रदेश की स्थिति तो और भी भयंकर है। वहां के कुछ जिलों में पिछले तीन वर्षों से अकाल की स्थिति बनी हुई है। इसका यदि तत्काल समाधान नहीं किया गया तो स्थिति बहुत ही भयंकर हो जाने की संभावना है।

बिहार प्रदेश सूखे की चपेट में हर वर्ष आता है। सूखे की स्थिति से निपटने के स्थायी समाधान के अभाव में हर वर्ष इस प्रदेश को विषम परिस्थिति का सामना करना पड़ता है। दो वर्ष पूर्व के अकाल ने तो सम्पूर्ण प्रदेश में एक भयंकर स्थिति पैदा कर दी थी। यह संतोष की बात है कि संयुक्त विधायक दल की तत्कालीन सरकार ने प्रदेश में सिंचाई के छोटे साधनों का व्यापक विस्तार करके अवर्षण से उत्पन्न स्थिति का समाधान करने के लिए स्थायी उपाय योजना की। खेद है कि शासन के परिवर्तन के साथ ही इस दिशा में अवरोध उत्पन्न हुआ जिसके परिणामस्वरूप स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आ सका। चारे के अभाव में पलामू जिले के पशु काल के मुंह में पड़े हैं तथा वहां की अधिकांश जनता अखाद्य पदार्थों को खाकर मृत्यु की प्रतीक्षा कर रही है।

उत्तर प्रदेश की स्थिति भी किसी अन्य प्रदेश से कम गम्भीर नहीं है। इलाहाबाद, मिर्जापुर, गाजीपुर, जौनपुर तथा वाराणसी के अधिकांश क्षेत्रों में हाहाकार मचा हुआ है। पीने का पानी तथा सस्ते अनाज के अभाव में जनता भटक रही है। पशुओं की स्थिति तो अत्यन्त ही दयनीय बन चुकी है।

तमिलनाडु में भी सूखे की स्थिति का व्यापक प्रभाव है। ऋतु-वर्षा के अभाव में पूरे प्रदेश में विशेषकर चियालपेट, उत्तर आरकोट, कोयम्बटूर, रामनाड जिलों में फसलें नष्ट हो गई हैं और पीने के पानी की समस्या खड़ी हो गई है। पशुधन को जीवित रखना कठिन प्रतीत होता है। इस कारण अब बहुत ही सस्ते मूल्यों में व्यापक रूप से उसका विक्रय शुरू हो गया है।

राजस्थान प्रदेश और विशेष रूप से उसके मरु क्षेत्र में तो अकाल स्थायी रूप से डेरा डाले बैठा है। राज्य के किसी न किसी भाग में हर वर्ष सूखे की स्थिति बनी रहती है। लेकिन इस वर्ष के अकाल ने तो अकालों के पुराने इतिहास को भुला दिया। राज्य के 26 जिलों में से 23 जिले तथा 32,000 ग्रामों में से 26,000 ग्राम अकाल से प्रभावित हैं। अधिकांश क्षेत्रों में फसल बोई ही नहीं गई और जहां थोड़ी बहुत बोई गई वह भी वर्षा के अभाव में नष्ट हो गई। राज्य के मरु क्षेत्रों में जनता का सहारा उसका पशुधन है परन्तु इस बार अकाल के कारण चारे तथा पीने के पानी के अभाव में लाखों पशुओं की मृत्यु हो गई। मौत का यह क्रम अब मनुष्यों पर आरम्भ हुआ है। अपौष्टिक खाद्य पदार्थ, पीने के मीठे पानी के अभाव में खारे पानी का उपयोग, कड़कती धूप में शारीरिक शक्ति के अनुपात से अधिक श्रम, उस श्रम की मजदूरी में अनुचित कटौती तथा उसके भी विलम्ब से भुगतान के कारण अब मनुष्य के जीवित रह सकने का सामर्थ्य समाप्त प्राय हो चुका है। कमजोरी में बीमारियों का प्रकोप बढ़ रहा है। परिणामस्वरूप, बाडमेर, बीकानेर तथा जैसलमेर जिलों में हजारों व्यक्तियों की मृत्यु हो गई और सैकड़ों प्रतिदिन मर रहे हैं। पाकिस्तान की सीमा पर स्थित जिलों के गांव खाली हो रहे हैं।

अकाल व सूखे की उपरोक्त स्थिति से यह स्पष्ट है कि विभिन्न राज्य सरकारों ने योजनाबद्ध विकास के नाम पर अरबों रुपयों का व्यय करने के उपरान्त भी, इस समस्या के समाधान हेतु स्थायी व्यवस्था नहीं की। इतना ही नहीं विकास की दृष्टि से भी यह क्षेत्र राज्यों के अन्य भागों की तुलना में पिछड़े रह गए। इस पिछड़ेपन की स्थिति में सूखे का प्रभाव वहां के जन-जीवन के लिए एक स्थायी संकट बना हुआ है। इस संकट का स्थायी समाधान केवल तात्कालिक राहत कार्यों से होना संभव नहीं है। उसके लिए स्थायी पग उठाया जाना आवश्यक है। वर्तमान स्थिति में किसान एवं ग्रामीण क्षेत्रों के पिछड़े वर्ग की दशा तो अत्यन्त ही दयनीय हो चुकी है। इस स्थिति का प्रभाव उत्पादन पर तो पड़ेगा ही परन्तु चारे व पानी के अभाव में लाखों पशु ही नहीं बल्कि इस कड़कड़ाती धूप में पीने के पानी के अभाव, तथा अपौष्टिक खाद्य पदार्थों के कारण उत्पन्न बीमारियों के प्रकोप से हजारों व्यक्तियों की भी मृत्यु होगी।

भारतीय जनसंघ केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों को यह चेतावनी देता है कि यदि तत्काल आवश्यक तथा प्रभावी कार्यवाही नहीं की गई तो स्थिति भयंकर बन जाएगी तथा शांति एवं व्यवस्था बनाये रखना भी कठिन हो जाएगा। जनसंघ इस सम्बन्ध में निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत करता है :

(1) चौथी पंचवर्षीय योजना में देश के सूखाग्रस्त क्षेत्रों के स्थायी समाधान हेतु एक अलग से योजना बनाई जाए तथा उसके लिए पर्याप्त धनराशि निर्धारित की जाए।

(2) राजस्थान नहर को राष्ट्रीय योजना के रूप में शीघ्रातिशीघ्र पूरा करवाया जाए। इससे न केवल राजस्थान के एक बहुत बड़े भाग में सूखे का संकट समाप्त होगा बल्कि प्रतिरक्षा की दृष्टि से भी इसका महत्वपूर्ण योगदान होगा। इसी प्रकार नर्मदा जल योजना के विवाद का शीघ्र ही निपटारा करवाकर सभी प्रति संबंधित प्रदेशों को उसके द्वारा मिलने वाले लाभ को तुरन्त उपलब्ध करवाया जाए।

(3) लघु सिंचाई योजना और विशेष रूप से नलकूप लगाने के कार्य को बड़े पैमाने पर हाथ में लिया जाए।

(4) पीने के पानी के लिए काफी संख्या में कुओं की खुदाई तथा गहरे कुओं से पानी निकालने हेतु बिजली की उपलब्धि की तुरन्त व्यवस्था की जाए।

(5) पशुधन के बीमे की योजना आरम्भ की जाए तथा चारे के लिए 'चारा बैंक' की स्थापना की जाए।

(6) जिन ग्रामों में पीने के पानी का अभाव है वहां पर ट्रक या रेल वैगनों के द्वारा तुरन्त पर्याप्त पानी पहुंचाया जाए।

(7) अकालग्रस्त क्षेत्रों में सब व्यक्तियों को सस्ते दामों पर पर्याप्त अन्न की उपलब्धि कराई जाए।

(8) महामारियों की रोकथाम के लिए तत्काल कदम उठाये जाएं।

[25 अप्रैल, 1969; बम्बई, पन्द्रहवां सा०अ०]

72.08. जोत-सीमा और समन्वित आर्थिक कार्यक्रम

चौथी योजना का मध्यावधि आंकलन—चतुर्थ पंचवर्षीय योजना का मध्यावधि आंकलन गहरी विफलता की एक लम्बी कहानी है जिसमें विफलताओं की स्पष्ट स्वीकारोक्ति के अलावा कुछ भी सराहनीय नहीं है। इसके बावजूद कि आर्थिक नियोजन के प्रारम्भ से लेकर आज तक हमारी धनराशि लगाई गई है, अर्थव्यवस्था अक्षरशः अस्त-व्यस्त हो गई है। हमारी विकास-दर संसार के विकासशील देशों में प्रायः सबसे नीची है।

सन् 1971-72 में बचत की दर 1960-61 की तुलना में 33 प्रतिशत घट गई, जबकि पूंजी निवेष में नाम-मात्र की वृद्धि हुई। बेरोजगारी एक खतरनाक सीमा तक बढ़ गई है। सरकार समस्या से खिलवाड़ करने में लगी है और उसके विशेषज्ञ बेरोजगारी के रूप और उसके विभिन्न प्रकारों की व्यवस्था करने का प्रयास कर रहे हैं। मूल्यों में निरन्तर वृद्धि हुई है और उनमें स्थिरता लाने की बात सदैव की भांति दिवा-स्वप्न बनी हुई है। प्राथमिक उपभोग की आवश्यक वस्तुओं जैसे दाल, सूती कपड़ा, खाद्य-तेल, कॉफी आदि की प्रति-व्यक्ति उपलब्धि आज उतनी भी नहीं है जितनी कि तृतीय योजना की समाप्ति पर थी।

सरकार का दावा है कि स्वावलम्बन की दिशा में वह आगे बढ़ रही है जबकि सचाई यह है कि गत वर्ष की तुलना में इस वर्ष प्राप्त होने वाली विदेशी सहायता में 75 करोड़ रु० की वृद्धि हुई है, यह इस बात का उदाहरण है कि सरकार किस प्रकार आत्मवंचना का शिकार हो रही है। मध्यावधि मूल्यांकन में स्वावलम्बन की यह व्याख्या की गई है कि 1980-81 के बाद शुद्ध *सहायता* की आवश्यकता नहीं होगी।' सरकार का यह इरादा भी इससे बेनकाब हो जाता है कि 1980 में भी वह 650 करोड़ रु० की कथित सहायता पाने का प्रयत्न कर रही है और उसे स्वीकार करने के लिए तैयार है। स्पष्ट है कि सरकार न तो इस कटु पाठ को सीख सकी है कि कोई सहायता बिना शर्तों की नहीं होती और न देश की विकास क्षमता में ही उसका कोई विश्वास है।

भारतीय जनसंघ का यह सुविचारित मत है कि अर्थव्यवस्था का उपर्युक्त चित्र किसी एक असंतुलन अथवा किसी दूसरे दवाब का परिणाम नहीं अपितु इस बात का प्रमाण है कि आर्थिक नियोजन की मूल व्यूह-रचना विफल हो गई है। यह भारतीय जनसंघ के इस दृष्टिकोण को उचित सिद्ध करता है कि भारत में नियोजन की आत्मा स्वदेशी होनी चाहिए और उसे अपने साधनों के अनुसार एक विशिष्ट ढांचे का विकास करना होगा। नियोजन रोजगार-अभिमुख होना चाहिए और उसका आधार मध्यम दर्जे की प्रौद्योगिकी (Technology) हो जिसमें कुटीर तथा छोटे उद्योगों और लघु सिंचाई योजना को प्राथमिकता दी जाए।

यह खेद का विषय है कि दोषपूर्ण नियोजन के कारण से जो विफलता हुई है उन्हें ठीक करने के लिए कोई कार्यवाही नहीं की गई बल्कि पुरानी प्राथमिकताओं को 'साहसी' नियोजन के नाम पर आगे बढ़ाया जा रहा है। चतुर्थ योजना का मूल्यांकन इसका अपवाद नहीं है। इसमें स्वयं-सिद्ध स्वीकारोक्तियां और कोरे उपदेशों की भरमार है। किन्तु योजना के पुनर्निर्धारण—जिसके बिना समूचे प्रयास का विफल होना पूर्व निश्चित है—के संकल्प का कोई संकेत नहीं है।

एक सीमा रेखा शाश्वत नहीं—इन दिनों कृषि भूमि पर सीमा लगाने के सम्बन्ध में एक तीव्र विवाद चल रहा है। जनसंघ अपने जन्म-काल से ही भूमि-सुधार के साधन के रूप में जोत की अधिकतम सीमा लगाए जाने का पक्षपाती रहा है। जोत की अधिकतम सीमा के निर्धारण करने का समर्थन हमने इसलिए किया है कि कृषि भूमि का अधिकतम उपयोग हो सके और समानतर वितरण के द्वारा कृषक वर्ग में रोजगार के अवसर बढ़ सकें। 1957 के अपने चुनाव घोषणा-पत्र में हमने अच्छी सिंचित 30 एकड़ की अथवा उपज के आधार पर तत्सम् सीमा स्वीकार की थी।

खेद का विषय है कि कांग्रेस सरकार द्वारा भूमि सम्बन्धी क्रांतिकारी सुधारों की बड़ी-बड़ी घोषणाएं करने के पश्चात भी व्यवहार में प्रायः कुछ नहीं किया गया है। बहुत से राज्यों में (सत्तारूढ़ दल के भीतर) धनी किसानों की लॉबी के प्रभाव के कारण परिवार के स्थान पर प्रति व्यक्ति का आधार स्वीकार करके 100 एकड़ से भी अधिक भूमि रखने की अनुमति दे दी गई है। इसके अतिरिक्त यन्त्रीकृत फार्मों और 'प्रगतिशील किसानों' के नाम पर (इसका चाहे जो अर्थ हो) दी गई

छूट से कानून केवल तमाशा बनकर रह गया है। फिर, जो भी कानून बनाये गये हैं उन्हें ईमानदारी से लागू नहीं किया गया है। परिणामस्वरूप भूमिहीन को भूमि नहीं मिल पाई। अपनी इस विफलता को छिपाने के लिए वर्तमान भू-सीमा को घटाने का प्रश्न कांग्रेस दल द्वारा खड़ा किया गया है। जनसंघ किसी एक भू-सीमा को सदा के लिए पवित्र नहीं मानता। परन्तु उसे राजनीतिज्ञों के हाथ का खिलौना भी नहीं बनाया जाना चाहिए। *अधिकतम सीमा के लिए खेती से प्राप्त होने वाली शुद्ध आय का उचित अनुमान ही एक युक्तिसंगत आधार हो सकता है।*

वर्तमान स्थिति में भू-सीमा के कानूनों में बहुत-सी कमियां और असमानताएं हैं। कई प्रदेशों में परिवार को इकाई माना गया है तथा दूसरों में अन्य कुछ को। कुछ प्रदेशों में 30 एकड़ से (जो जनसंघ ने लगभग 15 वर्ष पूर्व स्वीकार की थी) काफी ऊंची सीमा निश्चित की गई है। इन प्रदेशों में भूमि-सीमा को कम करके एकरूपता लाने की स्पष्ट आवश्यकता है।

जनसंघ का विश्वास है कि विभिन्न क्षेत्रों में बढ़ते हुए उत्पादन, परिवर्तित लागत प्रणाली तथा रुपये की घटती कीमत का विचार करते हुए, हर प्रदेश में भूमि की सीमा 1500 रु० प्रति मास की शुद्ध आय दे सकने वाले क्षेत्र के अनुसार प्रति परिवार (जिसमें तीन नाबालिग बच्चे सम्मिलित हों) निश्चित की जानी चाहिए।

संविधान (29वां) संशोधन—इस संदर्भ में जनसंघ का मत है कि संविधान में 29वां प्रस्तावित संशोधन आर्थिक दृष्टि से बुरा, राजनीतिक दृष्टि से अनुचित तथा नैतिक दृष्टि से अवांछनीय है। स्पष्टतः इसका उद्देश्य छोटे किसान से भूमि के उस भाग को लूटना है जो अब तक अधिकतम सीमा के अन्तर्गत है किन्तु जो नये परिवर्तन के बाद सीमा से अधिक हो जाएगा। यह स्मरण रखना होगा कि यह कुठार बड़े जमींदार पर नहीं पड़ेगा। वर्तमान संशोधन छोटे किसान पर एक आघात है जिसे संविधान के अनुच्छेद 31 के अन्तर्गत जोत की अधिकतम सीमा के भीतर ली गई भूमि के लिए बाजार भाव पर क्षतिपूर्ति पाने का अधिकार है।

मूल्य, रोजगार और वितरण—जबकि सरकार छोटे किसान के लिए अपना कुठार पैना कर रही है और अदालत में न्याय प्राप्त करने के उसके मूलभूत अधिकार का अपहरण कर रही है, उसने अतिरिक्त खेती-योग्य भूमि को बांटने के लिए कोई कार्यवाही नहीं की है। इस सम्बन्ध में और अधिक देर भूमिहीनों के धैर्य का बांध तोड़ देगी। उनका दबा हुआ असंतोष एक देशव्यापी आन्दोलन के रूप में उभर सकता है। इस वर्ष के बजट प्रस्तावों से भी स्पष्ट है कि 'मूल्यों, रोजगार तथा आमदनी के वितरण' के सम्बन्ध में एक स्पष्ट नीति का निर्धारण करने की सरकार में न तो परिकल्पना ही है और न आवश्यक संकल्प-शक्ति ही विद्यमान है।

उर्वरकों, विद्युतचालित पम्पों और मशीनी तेलों पर कर लगाकर और ट्रैक्टरों के मूल्यों में रहस्यमय रीति से बढ़ोतरी करके सरकार ने खेती में आधुनिक साज-सामान के उपयोग को अधिक महंगा बना दिया है। इसके अतिरिक्त गेहूं की वसूली का मूल्य घटाने का भी प्रयत्न किया गया जबकि उत्पादन मूल्य में वृद्धि के कारण गेहूं का मूल्य ऊंचा करने का औचित्य स्पष्ट है।

मिट्टी के तेल पर लगाया गया कर जो गरीब की रोशनी और रसोई की आग पर लगाया गया कर है, कड़े विरोध के बावजूद वापस नहीं लिया गया है। खाद्यान्नों को राजकीय सहायता में कमी का (जबकि इस बात का कोई प्रयत्न नहीं किया जा रहा है कि खाद्य निगम द्वारा अनाज के रख-रखाव पर होने वाले व्यय में कमी हो) यही नतीजा होगा कि किसान को बिना किसी प्रकार का लाभ पहुंचाये उपभोक्ता के लिए दाम ऊंचा हो जाएगा। इस्पात पर जो भारी उत्पादन शुल्क लगाया गया है उसके तथा माल-भाड़े की ऊंची दरों के कारण लागतों और मूल्यों में वृद्धि होगी व निर्माण तथा अन्य उद्योग निरुत्साहित होंगे, रोजगार देने वाली गतिविधियों में बाधा पड़ेगी और सभी परियोजनाओं के अनुमान अस्त-व्यस्त हो जाएंगे। दूसरी ओर अनुत्पादक व्यय में कटौती करने की दिशा में मितव्ययिता के महत्व का मौखिक बखान करने के अतिरिक्त, कोई और कार्यवाही नहीं की गई है। न सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों को, जिनमें से कुछ अब तक अपनी समूची पूंजी तक खा चुके हैं, सक्षम बनाने के लिए कोई प्रभावी पग उठाए गए हैं।

चीनी नीति—सरकार की चीनी सम्बन्धी नीति गोलमाल का एक और उदाहरण है जिसके कारण सामान्य उपभोक्ता तथा गन्ना उत्पादक का चीनी उद्योग के ऐसे तत्वों द्वारा शोषण हुआ है जो सभी प्रकार के तरीके अपनाने में कुशल हैं और जिनका सत्तारूढ़ दल के साथ गठबन्धन है।

भारतीय जनसंघ अनुभव करता है कि आज निम्नलिखित उपायों को अपनाने की नितान्त आवश्यकता है :

(1) उद्देश्यों, व्यूहरचना तथा पूंजी-निवेश की प्राथमिकताओं की दृष्टि से चौथी योजना में मूलगामी परिवर्तन किया जाए जिनसे प्रत्येक व्यक्ति को काम, अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा, निःशुल्क चिकित्सा की सुविधा, पीने का पानी और रहने का स्थान उपलब्ध हो सके तथा छोटी सिंचाई योजनाओं, छोटे ग्रामीण व गृह-उद्योगों तथा आणविक प्रणाली के विकास के लिए अधिक साधन देकर उत्पादन और रोजगार को अधिकतम किया जा सके।

(2) विकास की दर को 10 प्रतिशत तक बढ़ाने, पूर्ण आत्म-निर्भरता लाने तथा समाज के विभिन्न वर्गों में आमदनी के विषम अनुपात को कम करके 1 : 20

के अनुपात में लाने के लिए पग उठाना।

(3) कुछ क्षेत्रों में उद्योगों के केन्द्रीकरण को रोकने के लिए उपाय किये जाएं और इस प्रकार आर्थिक विकास में क्षेत्रीय असंतुलन को घटाया जाए।

(4) किसी परिवार को 2,000 रु० मासिक से अधिक व्यय करने की छूट न हो।

(5) यन्त्रीकृत फार्मों, उद्यानों, सहकारी समितियों और 'प्रगतिशील किसानों' को भूमि सीमा कानून से दी गई छूट समाप्त कर दी जाए।

(6) सभी सरकारी अतिरिक्त जमीन आगामी 15 अगस्त तक भूमिहीनों और अलाभकर जोतवाले किसानों में बांटने के लिए कदम उठाये जाएं।

(7) शहरी सम्पत्ति पर 1,000 वर्ग गज भूमि तथा 2 लाख रु० निर्माण-व्यय की सीमा लागू करने के लिए पग उठाए जाएं।

(8) काम के अधिकार को मौलिक अधिकारों में सम्मिलित किया जाए और जिसे काम न दिया जा सके उसे बेरोजगारी भत्ता दिया जाए।

(9) शिक्षितों की बेरोजगारी दूर करने के लिए उन्हें औद्योगिक प्लॉट, भवन व कच्चा माल, कोटे, परमिट व लाइसेंस देने में प्राथमिकता दी जाए तथा स्कूल, चिकित्सा-केन्द्र व मकान बनाने की विशाल योजनाएं प्रारम्भ की जाएं।

(10) कर-प्रणाली में सुधार किया जाए जिससे आम परेशानी घटे, आय-कर छूट की सीमा बढ़े, ऊंची आमदनी पर लगे हुए करों की अपहरणकारी दरों की समाप्ति हो जिनकी वजह से करों की केवल चोरी को बढ़ावा मिलता है, तथा वांचू समिति द्वारा सुझाये गए अन्य उपायों को अपनाया जाए जिनसे काले धन की समस्या से निपटा जा सके।

(11) ग्रामीण क्षेत्रों में सार्वजनिक निर्माण के विशाल कार्यक्रम को हाथ में लिया जाए जिसमें 1,500 करोड़ रु० व्यय हो और जो आगामी 10 वर्षों में पूर्ण रोजगार उपलब्ध कराने की दिशा में प्रथम पग का काम करे।

(12) मूल्यों को स्थिर रखना और इसके लिए उत्पादन से सम्बन्धित गतिविधियों पर लगे हुए सभी नौकरशाही बंधनों को कम करना और निर्णय करने में जो विलम्ब होता है उसे समाप्त करना; घाटे की वित्त-व्यवस्था और राज्यों के अधिविकर्ष (Overdrafts) को नियंत्रित करना तथा जमाखोरों और मुनाफाखोरों की रोकथाम करके विभिन्न मालों के समुचित वितरण की व्यवस्था करना।

(13) सभी मजदूरों व कर्मचारियों के लिए 'आवश्यकताओं पर आधारित न्यूनतम वेतन' की गारण्टी करना और मजदूरी को उत्पादकता की वृद्धि के साथ जोड़ना।

(14) हरिजनों, वनवासियों, गिरिजनों, भूमिहीन किसानों व कारीगरों को आसान दर और व्यक्तिगत गारण्टी पर ऋण व अनुदान देने की विशाल योजना बनाई जाए। महंगाई को देखते हुए हरिजन तथा वनवासी छात्रों की छात्र-वृत्तियों की राशि बढ़ाई जाए।

(15) ग्रामीण गृह-उद्योगों तथा छोटे उद्योगों के क्षेत्र सुरक्षित कर दिये जाएं और बड़े उद्योग उनमें प्रवेश न करें।

[7 मई, 1972; भागलपुर, भा०प्र०स०]

72.15. अकाल-स्थिति

भारतीय जनसंघ की कार्यसमिति देश में अकाल-स्थिति के सम्बन्ध में विभिन्न प्रदेशों के प्रतिनिधियों द्वारा प्रस्तुत रिपोर्टों पर विचार करने के पश्चात, उत्पन्न स्थिति का सामना करने हेतु निम्न सुझाव देती है तथा अविलम्ब उनकी क्रियान्विति की मांग करती है:

(1) अकाल से उत्पन्न भयावह स्थिति का सामना युद्ध-स्तर पर किया जाए;

(2) यह एक राष्ट्रीय संकट है, जिसके निवारण के लिए केन्द्र से लेकर प्रखण्ड-स्तर तक सर्वदलीय समितियों का गठन हो;

(3) राहत कार्य के रूप में स्थायी लाभ देने वाली परियोजनाएं हाथ में ली जाएं;

(4) सारे देश के लिए नई अकाल संहिता (Famine Code) का निर्माण किया जाए;

(5) राहत कार्य के लिए कम से कम दैनिक मजदूरी 4 रु० प्रति व्यक्ति दी जाए। स्त्री-पुरुषों के समान कार्य के लिए समान मजदूरी हो तथा राहत कार्यों के निकट ही आवश्यक वस्तुओं की आपूर्ति का प्रबन्ध हो;

(6) अपाहिज तथा निराश्रित व्यक्तियों के उदर-भरण का भार शासन उठाए।

(7) पशुधन की रक्षा के लिए पशु शिविर स्थापित किये जाएं;

(8) विदेशों से प्राप्त सहायता सामग्री का वितरण शासन के माध्यम से हो। इस बात की कड़ी निगरानी रखी जाए कि स्थिति का लाभ उठाकर धर्मान्तरण न होने पाए।

[20 नवम्बर, 1972; जयपुर, के०का०स०]

अध्याय 3

औद्योगिक विकास श्रम और रोजगार

जनसंघ औद्योगीकरण का समर्थक है, क्योंकि वह चाहता है कि भारत एक शक्तिशाली और आत्मनिर्भर राष्ट्र बने। सरकारी नीति से उसका मतभेद औद्योगीकरण के सार और स्वरूप के बारे में है (सिद्धान्त और नीतियां)। इस संबंध में पिछले 22 वर्ष से जनसंघ की मान्यता यह रही है कि भारत के लिए जिस प्रौद्योगिकी (Technology) का चयन किया गया, वह सही नहीं थी और अर्थतन्त्र की वर्तमान कठिनाइयों का यही कारण है।

जनसंघ की मान्यता है कि प्रौद्योगिकी का चयन देश की समग्र उपलब्धियों पर आधारित होना चाहिए। गरीब देश होने के कारण हम अपने साधनों को बर्बाद नहीं कर सकते। कौन-सी प्रौद्योगिकी उपयुक्त है, इसका निर्णय इस तथ्य को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए था कि भारत में श्रम-शक्ति का बाहुल्य है और पूंजी का अभाव है (सिद्धांत और नीतियां)। ऐसा करने के बजाय सरकार ने प्रौद्योगिकी का चयन विदेशी औद्योगिक सहयोग और विदेशी सहायता के कारणों से प्रभावित होकर किया। परिणाम यह हुआ कि देश में औद्योगिक ढांचा श्रम-बचत और पूंजी-घनत्वकारी आधार पर निर्मित हुआ। यही कारण है कि बेरोजगारी और विदेशी ऋण वृद्धि पर हैं।

दल की औद्योगिक नीति तीन स्तम्भों पर निर्मित की गई है :

(i) सब उपभोक्ता-उद्योग निजी भारतीय हाथों में और लघु उद्योग क्षेत्रों में होंगे।
(ii) समस्त निर्माण वस्तुओं के उद्योग, भारी-उद्योग क्षेत्रों में (और आमतौर पर सार्वजनिक क्षेत्र में) होंगे।
(iii) निजी क्षेत्र को, आधुनिकीकरण और आयात प्रतिस्थापना (import substitution) में सहायता देने के लिए सभी आवश्यक अनुसंधान और विकास संबंधी जानकारी, सरकारी वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं और संस्थानों द्वारा निःशुल्क प्रदान की जाएगी (घोषणा-पत्र—1967)।

जनसंघ ने अपने वक्तव्यों और घोषणाओं द्वारा स्पष्ट कर दिया है कि लघु उद्योग का अर्थ छोटे पैमाने पर उत्पादन नहीं बल्कि अधिक हाथों द्वारा अधिक उत्पादन है (घोषणा-पत्र—1957)। उसने इस बात पर भी जोर दिया है कि लघु उद्योग का अर्थ पुरानी-धुरानी प्रौद्योगिकी से चिपके रहना नहीं बल्कि प्रगतिशील, श्रम-प्रयोक्ता व पूंजी-बचतकारी प्रौद्योगिकी अपनाना है (घोषणा-पत्र—1972)। दल यह भी चाहता है कि लघु उद्योग को (जिसे किसी विदेशी मुद्रा की आवश्यकता न हो) लाइसेंसों के बंधनों से मुक्त कर दिया जाए (घोषणा-पत्र—1971)।

संक्षेप में जनसंघ की औद्योगिक नीति को इन शब्दों में प्रस्तुत किया जा सकता है :

"विकेन्द्रीकरण, स्वदेशी और श्रम-शक्ति का विशद उपयोग हमारे औद्योगिक विकास का मूलाधार होना चाहिए। इससे बेरोजगारी, असमानता और विदेशी मुद्रा की तंगी दूर होगी और प्रत्यक्ष माप की दृष्टि से हमारी उपलब्धियां भी अधिक होंगी (घोषणा-पत्र—1967)।

राष्ट्रीयकरण के बारे में जनसंघ विवेकसम्मत दृष्टिकोण अपनाने में विश्वास करता है (घोषणा-पत्र—1957)। आधारभूत और प्रतिरक्षा उद्योगों का राष्ट्रीयकरण होना चाहिए (घोषण-पत्र—1962)। परिवर्तित परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए विदेशी बैंकों का, विदेश व्यापार के बीमे का तथा साम्यवादी देशों के साथ व्यापार का राष्ट्रीयकरण किया जाना चाहिए (घोषणा-पत्र—1967, प्रस्ताव 69.18)।

अपनी स्थापना के दिन से ही जनसंघ ने व्यक्तिगत अथवा नौकरशाही एकाधिकार का जोरदार विरोध किया है (घोषणा-पत्र—1951) सार्वजनिक क्षेत्र का लेखा-जोखा देने की भी उसने मांग की है (घोषणा-पत्र—1971)। भारतीयों के लिए निजी व व्यक्तिगत पहल तथा उद्यम का समर्थन दल ने किया है और अब इस दृष्टि से दल का मत है कि विदेशी कम्पनियों का पूर्ण भारतीयकरण होना चाहिए (प्रस्ताव 69.18 और 70.06) एवं निर्बाध अन्तर्राज्यीय व्यापार के मार्ग में सभी पाबन्दियां न्यूनतम कर देनी चाहिए (घोषणा-पत्र—1954)।

देश की विशाल जनशक्ति को जनसंघ देश की सम्पत्ति मानता है—बोझ नहीं। इसलिए उसने विदेशों से प्रेरित उस प्रौद्योगिकी को अपनाने का सतत् विरोध किया है, जो श्रम-शक्ति के उपयोग में बचत पर आधारित है, क्योंकि इस प्रौद्योगिकी का विकास उन देशों में हुआ जहां श्रम-शक्ति का अभाव है। दल ने श्रम करने के अधिकार को मौलिक अधिकार स्वीकार किया और बेरोजगारों को मुआवजा देने की मांग की है (घोषणा-पत्र—1957)। उसने बेरोजगारी दूर करने के उपायों की रूपरेखा भी प्रस्तुत की है (घोषणा-पत्र—1971)।

यूनियन बनाना श्रमिकों का अधिकार है—इसे जनसंघ ने प्रारम्भ से ही माना है (घोषणा-पत्र—1957)। हड़ताल के अधिकार को भी इसी प्रकार शुरू से ही स्वीकार किया गया है (सिद्धान्त और नीतियां)। लेकिन, उसने वर्ग-संघर्ष के अभारतीय दृष्टिकोण का विरोध किया है (घोषणा-पत्र—1954) तथा दूसरों की अपेक्षा सबसे पहले इस मत का प्रतिपादन किया कि कारखानों के निदेशक-मण्डल में श्रमिकों और प्रबन्धकों को प्रतिनिधित्व दिया जाना चाहिए (घोषणा-पत्र —1962)। दल ने कृषि-क्षेत्र में भी न्यूनतम वेतन कानून को बनाने और बोनस दर बढ़ाकर 8·33 प्रतिशत करने की बात कही है (प्रस्ताव 71.07)। इस सम्बन्ध में पूर्ण वक्तव्य गाजियाबाद के प्रस्ताव 71.09 में प्रस्तुत है।

53.08. बेरोजगारी; कुछ सुझाव

देश में पिछले दस वर्ष में समाज के सभी स्तरों पर, विशेषत: मध्यमवर्ग में बेरोजगारी तेजी से बढ़ी है। आशा थी कि स्वतंत्रता के बाद इस बुराई को रोकने के लिए कुछ प्रभावशाली पग उठाए जाएंगे। लेकिन, दुर्भाग्य से केन्द्र और प्रान्तों में कांग्रेस सरकारों ने जो नीतियां अपनाईं उनसे इस समस्या को हल करने में सहायता नहीं मिली बल्कि यह और अधिक उलझ गई। पंचवर्षीय योजना से भी इस समस्या को हल करने में मदद नहीं मिली। योजना आयोग ने जो ग्यारह सूत्री कार्यक्रम प्रस्तुत किया वह भी अपर्याप्त है, क्योंकि उसमें समस्या को हल करने के लिए किसी साहसी उपचार का सुझाव नहीं। बेरोजगारी की बढ़ती समस्या को तभी हल किया जा सकता है जब हमारी शिक्षा-प्रणाली का और सामाजिक एवं आर्थिक ढांचे का नवीकरण किया जाए। इस बीच इस संकट का सामना करने के लिए नीचे लिखे पग तत्काल उठाये जाने चाहिएं :

(i) साक्षरों में फैली बेरोजगारी को दूर करने और पढ़े-लिखे बेरोजगारों की विशाल सेना की शक्ति को दिशा मोड़ देने के लिए सरकार को तत्काल समूचे देश में बड़े पैमाने पर अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के लिए उपाय करने चाहिए। इससे बहुत से पढ़े-लिखे बेरोजगारों को रोजगार मिलने के अलावा देश के ग्राम पुनर्निर्माण में सहायता मिलेगी। माध्यमिक शिक्षा को व्यावसायिक आधार प्रदान करने के लिए अविलम्ब पग उठाए जाने चाहिए और तकनीकी शिक्षा के लिए आसानी से सुलभ सुविधाओं का विस्तार किया जाना चाहिए। पढ़े-लिखे युवकों में श्रम के प्रति सम्मान जगाने के लिए माध्यमिक और कालेज-स्तर पर किसी न किसी प्रकार के श्रम को शिक्षा का अनिवार्य अंग बनाया जाना चाहिए। दसवीं कक्षा और स्नातक परीक्षाओं के बाद, सामान्य श्रम के अनिवार्य पाठ्यक्रम की व्यवस्था की जानी चाहिए और उपाधि प्राप्त करने के लिए इस पाठ्यक्रम को पूर्ण करना अनिवार्य होना चाहिए।

(ii) सरकारी और निजी क्षेत्र में अल्प-वेतन-भोगी कर्मचारियों को निकालने की नीति—जबकि उच्च-वेतन-भोगी अधिकारियों की संख्या प्रतिदिन बढ़ रही है—को समाप्त करना चाहिए। उच्च वेतन पाने वाले कर्मचारियों के वेतन में आनुपातिक कमी करके रोजगार के अवसर बढ़ाये जाने चाहिएं। बेरोजगारी के बीमें की योजना शुरू की जानी चाहिए जिससे लोगों के मन में सुरक्षा की भावना

जम सके ।

(iii) ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी रोकने के लिए सरकार को अकाल पीड़ित सहायता कार्यक्रम की तरह निर्माणात्मक और पूंजीगत परियोजनाएं शुरू करनी चाहिएं जिससे बेरोजगारों को उपयोगी ढंग से राष्ट्र के निर्माण में लगाया जा सके; इस तरह की परियोजनाओं पर व्यय की गई राशि से यह लाभ होगा कि देश में रहन-सहन के स्तर में ग्राम सुधार होगा ।

(iv) बड़े औद्योगिक नगरों की ओर गांव के लोगों की भारी भगदड़ को रोकने के लिए (क्योंकि इससे शहरों में बेरोजगारों और रोजगार में न लगाये जा सकने वाले लोगों के कारण नयी और गम्भीर आर्थिक एवं सामाजिक समस्याएं पैदा हो रही हैं) गांवों में जीवन को सुधारने तथा पुराने कुटीर उद्योगों (जैसे हथकरघा उद्योग) की रक्षा करने तथा नये उद्योग आरम्भ करने के लिए सुनियोजित प्रयास किये जाने चाहिएं ।

(v) बड़े औद्योगिक नगरों में अकुशल श्रमिकों के लिए तकनीकी प्रशिक्षण-सुविधाओं का प्रबन्ध किया जाना चाहिए । इससे औद्योगिक बेरोजगारी मिटाने में काफी सहायता मिलेगी ।

इन प्रयत्नों से भी अधिक महत्वपूर्ण यह है कि देश में श्रम करने की भावना जगायी जाए । सरकार की आर्थिक और सामाजिक नीतियों के कारण इस समय देश में निराशा की भावना बढ़ रही है । लोगों का उत्साह ठंडा पड़ता जा रहा है । जब तक जनता में इस उत्साह को नहीं जगाया जाता तब तक वह उन समस्याओं का—जो आज राष्ट्र के सामने हैं और जिनकी चपेट में पड़कर जनता स्वयं पिस रही है—सामना करने में अपना श्रेष्ठतम योगदान नहीं दे सकती ।

[15 अगस्त, 1953; प्रयाग, भा०प्र०स०]

53.12. बुनकरों को राहत

भूख से पीड़ित बुनकरों को, जिनकी संख्या एक करोड़ से कम नहीं, पर्याप्त राहत पहुंचाने के लिए केन्द्र और प्रदेश सरकारों को तत्काल पग उठाने चाहिएं । इस उद्देश्य से :

(1) बुनकरों को व्यक्तिगत रूप से तकावी के रूप में ऋण दिये जाएं और बुनकर सहकारी समितियों को और अधिक वित्तीय सहायता दी जाए ।

(2) धोतियों और साड़ियों का उत्पादन हथकरघों के लिए ही सुरक्षित कर दिया जाए ।

(3) विदेशों से सूती कपड़े के आयात पर आवश्यक रोक लगायी जाए ।

(4) सरकारी देखरेख में हथकरघा उद्योग उत्पादनों के बिक्री-केन्द्र खोले जाएं, और

(5) हथकरघा उत्पादकों को बिक्री-कर से मुक्त रखा जाए ।

[15 अगस्त, 1953; प्रयाग, भा०प्र०स०]

54.12. हथकरघा उद्योग

भारत सरकार द्वारा करीब एक करोड़ बुनकरों को पर्याप्त आर्थिक सुविधाएं न देने पर जनसंघ खेद प्रकट करता है । रंगीन साड़ियों के सम्पूर्ण उत्पादन और धोतियों के 40 प्रतिशत उत्पादन को—संरक्षण देने का पग यद्यपि सराहनीय है किन्तु यह अत्यन्त अपर्याप्त है ।

जनसंघ मांग करता है कि हथकरघा उद्योग के सम्पूर्ण उत्पादन को बिक्री-कर से पूरी छूट मिले क्योंकि हथकरघा उद्योग निर्विवाद रीति से देश का एक प्रमुख कुटीर उद्योग है ।

जनसंघ इस बात का भी आग्रह करता है कि सरकारी कार्यालयों में हथकरघा उद्योग से बने हुए कपड़े का प्रतिदिन की आवश्यकताओं में उपयोग किया जाए और केन्द्र तथा राज्य के सरकारी कर्मचारियों की वर्दियां भी इसी कपड़े की बनाई जाएं ।

जनता से भी जनसंघ इस बात का अनुरोध करता है कि वे हथकरघा उद्योग से बने हुए कपड़े का ही अधिक से अधिक उपयोग करें ।

जनसंघ केन्द्रीय सरकार से भी इस बात का अनुरोध करता है कि हथकरघा उद्योग के लिए दूसरे देशों में व्यापक बाजार बनाने की दृष्टि से वहां स्थित भारतीय दूतावासों को योजनाबद्ध तथा सुसूत्र प्रयत्न करने के लिए आज्ञायें दे जिससे विदेशों में भी हमारे देश के हथकरघा उद्योग के कपड़े की खपत हो सके ।

[25 जनवरी, 1954; बम्बई, दूसरा सा०अ०]

55.01. बेरोजगारी

भारतीय जनसंघ का तृतीय सार्वदेशिक अधिवेशन, देश में द्रुतगति से बढ़ रही बेरोजगारी की भीषण समस्या पर गम्भीर चिन्ता प्रगट करता है ।

पंचवर्षीय योजना के चलते बेरोजगारी में वृद्धि इस बात का संकेत है कि हमारे आर्थिक नियोजन में कोई मूलभूत दोष है ।

रोजगार जन्म-सिद्ध अधिकार है—जनसंघ का यह स्पष्ट मत है कि वर्तमान आर्थिक नियोजन का उद्देश्य अधिक से अधिक व्यक्तियों को काम देना होना

चाहिए । जीविकोपार्जन का अधिकार मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है और हमारा उद्देश्य ऐसी अर्थव्यवस्था का विकास करना होना चाहिए जिसमें शासन सब नागरिकों के इस अधिकार को स्वीकार करे और उनके लिए रहन-सहन के न्यूनतम-स्तर की गारण्टी दे ।

योजना आयोग द्वारा संग्रहीत आंकड़ों को यदि सही माना जाए तो नगरों में रहने वाले बेरोजगारी की संख्या 1 करोड़ है जिनमें प्रति वर्ष 5 लाख की वृद्धि हो रही है । गांवों में रहने वाले 28 करोड़ स्त्री-पुरुषों में से तीन-चौथाई वर्ष भर में तीन या चार मास तक और एक-चौथाई 6 मास से 8 मास तक काम करते हैं । वर्ष के शेष समय वे बेरोजगार रहते हैं ।

इन आंकड़ों से यह स्पष्ट है कि केवल भूमि-सुधार अथवा कृषि-विकास से बेरोजगारी का निराकरण नहीं हो सकता । कृषि पर अधिक से अधिक 5·5 करोड़ मजदूर निर्भर रह सकते हैं । अतः 2·5 करोड़ मजदूरों को अविलम्ब काम देने की समस्या सरकार के सम्मुख उपस्थित है ।

ग्रामीण औद्योगीकरण—जनसंघ का यह निश्चित मत है कि ग्रामों में व्याप्त बेरोजगारी के निराकरण के लिए छोटे तथा ग्रामीण उद्योग-धन्धों का जाल फैलाने की आवश्यकता है । गृह उद्योगों की वर्तमान दुर्दशा के लिए शासन उत्तरदायी है, जो उत्पादन की वृद्धि के लिए तो प्रयत्नशील है, किन्तु उसके उचित वितरण के निमित्त हर व्यक्ति को काम देकर समाज की क्रय-शक्ति को बढ़ाने पर आवश्यक बल नहीं दे रहा है । बेरोजगारी के निराकरण के लिए यह आवश्यक है कि देश की अर्थ-नीति को छोटे तथा ग्रामोद्योगों के आधार पर, आर्थिक सामर्थ्य का विकेन्द्रीकरण करते हुए खड़ा किया जाए । इस दृष्टि से छोटे तथा बड़े उद्योगों की सीमा निर्धारित कर तथा छोटे उद्योगों के हितों को प्राथमिकता देकर उसके अनुसार बड़े उद्योगों का संचालन एवं नियंत्रण आवश्यक है, जिससे छोटे उद्योग न केवल प्रतियोगिता में ठहर सकें, बल्कि जनता की बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति भी कर सकें ।

भारतीय जनसंघ अपनी समस्त शाखाओं को आदेश देता है कि वह बेरोजगारों का संगठन कर उन्हें जीविकोपार्जन के जन्मसिद्ध अधिकार की प्राप्ति के लिए संघर्ष करने को तैयार करें ।

(i) इसके लिए प्रदेशों के कतिपय चुने हुए क्षेत्रों में, जिनका निर्णय प्रादेशिक कार्यसमितियाँ करें, बेरोजगारों की गणना करावें, और उनकी बेरोजगारी के वास्तविक स्वरूप का विश्लेषण कर उसे शासन तथा जनता के सम्मुख रखें ।

(ii) शासन को बेरोजगारी की भीषणता से परिचित कराने के लिए बेरोजगारों के प्रदर्शन संगठित करें और मांग-पत्र उपस्थित कर अविलम्ब काम देने पर जोर दें ।

(iii) जनसंघ कार्यालय के अन्तर्गत काम दिलाउ विभाग आरम्भ किया जाए जो बेरोजगारों को पंजीकृत करें और उन्हें काम दिलाने में सहायता दें ।

[1 जनवरी, 1955, जोधपुर, तीसरा सा०के०]

55.02. राष्ट्रीय श्रम-संगठन

भारतीय संस्कृति श्रम की महत्ता को सर्वोपरि मानती है । हमारे समाज का संगठन विभिन्न व्यावसायिक श्रेणियों के आधार पर हुआ है । राष्ट्रोन्नति के लिए इन श्रेणियों का निरन्तर गतिमान होना तथा परस्पर सुदृढ़ संगठन आवश्यक है ।

आज के श्रमिक संगठन, श्रमिक एवं राष्ट्र के हितों के लिए नहीं, अपितु व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा तथा दलगत स्वार्थों की पूर्ति के लिए चलाये जा रहे हैं । अतः जनसंघ अनुभव करता है कि ऐसे राष्ट्रीय श्रमिक संगठन का निर्माण किया जाए जो—

(1) वर्गवाद की भूमिका से ऊपर उठकर राष्ट्रीय एकात्मता की दृष्टि से विचार करे और पूंजीवाद तथा साम्यवाद की अभारतीय प्रवृत्तियों से मुक्त रहे ।

(2) ट्रेड यूनियनों और उनके कार्यकर्ताओं का रचनात्मक दृष्टि से मार्ग-दर्शन करे जिससे वे निम्नलिखित के लिए प्रयत्नशील हों :

(i) श्रमिकों की नौकरी से सम्बन्धित प्रश्नों पर उनके हितों का ध्यान, संरक्षण तथा संवर्धन ।

(ii) श्रमिकों के लिए ट्रेड यूनियन कार्य करने के अधिकार की प्राप्ति तथा उसका रक्षण, काम के घण्टे निश्चित कराने का अधिकार जिसमें अधिक कठोर तथा खतरनाक कामों में लगे हुए श्रमिकों का विशेष ध्यान रखा जाए, जीवन-यापन के लिए आवश्यक मजूरी और जीवन-यापन के व्यय में वृद्धि होने पर उसमें आवश्यक बढ़ोतरी प्राप्त करने का अधिकार, सवेतन अवकाश, नौकरी की सुरक्षा, सामाजिक सुरक्षा (बीमारी, दुर्घटना, वृद्धावस्था, गर्भावस्था, तथा बेरोजगारी के विरुद्ध गारण्टी), निःशुल्क चिकित्सा सहायता, सस्ते तथा उपयुक्त मकानों की सुविधा, काम की गारण्टी अथवा बेरोजगारी का भत्ता, अपने-अपने उद्योग के प्रबन्ध तथा मुनाफे में समान रूप से भागीदार बनने का अधिकार और ट्रेड यूनियन के सभी वैधानिक उपायों की विफलता के पश्चात, अन्तिम हथियार के रूप में, हड़ताल करने का

अधिकार ।

(iii) महिला श्रमिकों के लिए 'समान काम की समान मजूरी' का अधिकार मातृत्व की सुविधाएं तथा सस्ती दर पर बच्चों के लिए दूध एवं पालने की व्यवस्था ।

(iv) बच्चों से श्रम लेने पर प्रतिबन्ध तथा उसका पूर्ण पालन ।

(v) वर्तमान श्रमिक कानूनों के कार्यान्वियन पर बल तथा अन्य उपयुक्त कानूनों का निर्माण ।

(vi) ट्रेड यूनियन कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण की व्यवस्था ।

(3) श्रमिकों में सेवा, एकता तथा त्याग की भावना उत्पन्न करना जिससे वे राष्ट्र तथा उद्योग के प्रति अपने उत्तरदायित्व का पूर्ण पालन कर सकें ।

(4) देश के सभी श्रमिक संगठनों को ऐसे राष्ट्रीय मजदूर संघ में सम्मिलित होने के लिए निमन्त्रित करना, जिसमें उद्योगों के अनुसार यूनियन हों और जिनका संचालन विशुद्ध ट्रेड यूनियन पद्धति से किया जाए ।

[1 जनवरी, 1955; जोधपुर, तीसरा सा०अ०]

57.05. दाशमिक मुद्रा और मीटरी प्रणाली

(i) भारतीय जनसंघ की कार्यसमिति इस बात पर खेद प्रकट करती है कि भारत सरकार ने विज्ञान एवं प्रगतिशीलता के नाम पर मुद्रा और माप-तोल की दाशमिक एवं मीटरी प्रणाली अपनाकर मुद्रा और माप-तोल की प्रचलित प्रणाली को समाप्त करके इस मामले में अव्यवस्था पैदा कर दी । सबसे पहली बात तो यह है कि जो परिवर्तन लाने का प्रयास हुआ वह अनावश्यक था । मुद्रा और माप-तोल की प्रचलित प्रणाली से कोई कठिनाई नहीं हो रही थी और जनता ने इसमें परिवर्तन करने की कोई मांग भी नहीं की थी । दूसरे, 12 या 16 का विकल्प प्रस्तुत करने में न तो कोई विशेष वैज्ञानिकता और न इसमें कोई प्रगतिशीलता छिपी है । दोनों समानरूप से वैज्ञानिक हैं । सच तो यह है कि वर्तमान प्रणाली मुख्यतः 12 और 16 के गुणक एवं विभाजक पर आधारित है और दैनिक जीवन व्यापार में अधिक उपयोगी एवं सुविधाजनक हैं, क्योंकि विभिन्न विभाजकों द्वारा विभाजित होना नितान्त आवश्यक होता है । 10 केवल 2 और 5 से विभाजित हो सकता है, जबकि 12 × 16 का गुणनफल 192 ऐसा है जो 2, 3, 4, 6, 8, 12, 16, 24, 32, 48 और 64 को अपने विभाजक के रूप में स्वीकार करता है । इसके अतिरिक्त आना (इकन्नी) जैसी किसी मध्यवर्ती इकाई (जिसके गुणक और विभाजक दुअन्नी, चवन्नी, अधेली के रूप में उपलब्ध हैं) का होना अनिवार्य है । रुपये और नये पैसे के बीच ऐसी मध्यवर्ती इकाई का न होना बहुत असुविधाजनक

होगा । यही कारण था कि लम्बाई के माप में मील और इंच के बीच की इकाइयों के रूप में फर्लांग, गज और फुट को आवश्यक समझा गया । एक और बात पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है, तोल की वर्तमान इकाइयां सेर-पाव, छटांक, तोला के बीच आपस में वैसा ही अनुपात है जैसा रुपये, चवन्नी, आना और पाई में है । इससे मूल्य का हिसाब शीघ्रता से लगाना आसान होता है । इन समस्त कारणों से स्पष्ट है कि माप-तोल की वर्तमान प्रणाली समय की कसौटी पर खरी उतरी है और अधिक सुविधाजनक है तथा उसमें परिवर्तन आवश्यक नहीं था ।

इस प्रसंग में हिन्दू भावनाओं को प्रभावित करने के आशय से अपील प्रसारित की गई है कि माप-तोल और गणना की दाशमिक या 'दीनारी' प्रणाली हिन्दुओं ने निकाली थी । लेकिन, इस खोज का महत्व दशक को आधार मानने में नहीं (क्योंकि किसी भी अन्य अंक को भी आधारभूत इकाई मानकर यह उद्देश्य पूरा किया जा सकता था), बल्कि 'स्थानिक मूल्य' प्रणाली और शून्य की खोज की दृष्टि से है । फिर यह तथ्य है कि अंकों की गणना के लिए दाशमिक या दीनारी प्रणाली की खोज निकालने के बाद भी भारत में मुद्रा में दाशमिक प्रणाली उन दोषों के कारण नहीं अपनायी गई जिनकी चर्चा ऊपर की गई है । फिर कांग्रेस सरकार हिन्दू परम्पराओं का आदर करने के लिए कभी विख्यात नहीं हुई । आज यदि दाशमिक सिक्के और दाशमिक माप-तोल प्रणाली अपनाने का प्रयास हो रहा है तो इसका उद्देश्य हिन्दू परम्पराओं और भावनाओं का आदर करना नहीं बल्कि इसके पीछे नकल करने और नवीनता लाने की एक ऐसी सनक छिपी है जिसमें जनता के आराम और कठिनाई की कोई चिन्ता नहीं की जाती ।

अतः, कार्यसमिति महसूस करती है कि दाशमिक प्रणाली को (आज की तरह) प्रयोगशालाओं तक ही सीमित रखा जाना चाहिए और उसे सामान्य व्यवहार में नहीं चलाया जाना चाहिए ।

जनसंघ कार्यसमिति मांग करती है कि दाशमिक सिक्के वापस लिये जाएं और रुपया-आना-पाई को पहले की ही तरह जारी रखा जाए ।

(ii) 1 अप्रैल 1957 से नये पैसे का चलन शुरू होने पर वास्तविक व्यवहार में, यह देखा गया कि पुराने पैसे को नये पैसे में बदलने की तालिका काफी उलझनपूर्ण है और प्रत्येक स्तर पर पूर्ण इकाई बनाना आवश्यक होता है । यह प्रक्रिया आमतौर पर जनता के लिए हानिप्रद सिद्ध हो रही है । स्थिति इसलिए और ज्यादा बिगड़ गई है क्योंकि सरकारी विभाग (जैसे, डाक, तार आदि) भी सरकारी परिवर्तन तालिका को स्वीकार नहीं करते बल्कि चालाकी से मूल्य बढ़ा देते हैं । यह इसका सबसे बड़ा प्रमाण है "पासा पड़ा आपका, जीत हुई मेरी" । स्वयं सरकार की इस चालाकी पर, जिसके कारण मुद्रास्फीति (नये सिक्के के चलन के बहाने) हुई, क्योंकि व्यापारी और दुकानदार भी सरकार का अनुकरण कर रहे

हैं, जनता में रोष होना स्वाभाविक है।

कार्यसमिति महसूस करती है कि इन बुराइयों को तत्काल रोका जाए और जब तक यह नया पैसा चलता है जनता को इस तरह से न लूटा जाए।

[20 अप्रैल, 1957; जौनपुर, के०का०स०]

57.10. द्वितीय वेतन आयोग

नई वित्त तथा कर-नीति से जीवनोपयोगी वस्तुओं के मूल्यों में (जो पहले से ही सतत् बढ़ते जा रहे हैं) और अधिक वृद्धि हुई है, जिसके कारण बंधी हुई आय के लोगों के लिए जीवन-निर्वाह करना भी दुष्कर हो गया है। निचली श्रेणी के सरकारी कर्मचारी इस परिस्थिति के विशेषतः शिकार हुए हैं। जीवन चलाने मात्र के लिए भी इनके वेतन में वृद्धि करना अत्यन्त आवश्यक है। ऐसा न करने से उनमें असन्तोष का बढ़ाना स्वाभाविक है जिससे कार्य की क्षमता में अवश्य गिरावट होगी। अतः दूसरे वेतन आयोग की नियुक्ति किये जाने की नितान्त आवश्यकता है जो 250 रु० प्रति मास से कम वेतन पाने वाले कर्मचारियों के वेतन मानों पर पुर्नविचार करे।

इस बीच में महंगाई-भत्ते में समयोचित वृद्धि की जानी चाहिए। साथ ही वर्तमान महंगाई भत्ते को मूल-वेतन में सम्मिलित कर दिया जाए। क्योंकि निकट भविष्य में मूल्य कम होने की ऐसी कोई सम्भावना दिखाई नहीं देती जिससे भत्ते में कमी की आवश्यकता पड़ सके।

[1 जून, 1957; दिल्ली, के०का०स०]

58.33. औद्योगिक सम्बन्ध नीति

ऐसे समय जबकि अधिक से अधिक उत्पादन करना देश की प्राथमिक आवश्यकता है तब बढ़ती औद्योगिक अशांति पर कार्यसमिति गहरी चिन्ता व्यक्त करती है। भारतीय श्रम सम्मेलन के नैनीताल में हुए 16वें अधिवेशन के बाद आशा थी कि औद्योगिक संबंधों में रुचि रखने वाले सभी पक्ष अनुशासन एवं आचरण की सर्वसम्मत संहिता का ईमानदारी से सम्यक पालन करेंगे। लेकिन, बाद की घटनाओं ने इस आशा को निराशा में बदल दिया। उद्योगपति अपने विवेक-सम्मत हित से अपरिचित हैं, श्रमिक अपने राष्ट्रीय दायित्व को नहीं समझ रहे; औद्योगिक संबंधों को सही और न्यायसम्मत ढंग से नियमित करने के अपने दायित्व के प्रति सरकार अन्यमनस्क है, सामान्य जनता राष्ट्रीय महत्व के इस प्रश्न के प्रति उदासीन है और राष्ट्र विरोधी मजदूर नेता जनता के कष्ट से लाभ उठाकर

अपने राजनीतिक उद्देश्य पूरा करना चाहते हैं। जाने अनजाने में ये सब बातें औद्योगिक क्षेत्र की वर्तमान दुःखद एवं दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति के लिए जिम्मेदार हैं।

भारतीय जनसंघ साधारणतः राष्ट्र और विशेषतः श्रमिकों के हित की दृष्टि से एक विशद आर्थिक कार्यक्रम पहले ही प्रस्तुत कर चुका है। इसमें अन्य अनेक बातों के अलावा यह सुझाया गया है कि व्यय-योग्य न्यूनतम और अधिकतम मासिक आय के बीच एक राष्ट्रीय अनुपात निश्चित किया जाए, रोजगार के अधिकार को संविधान के मौलिक अधिकारों की सूची में शामिल किया जाए, स्थायी राष्ट्रीय वेतन परिषद गठित की जाए, मूल्य के ढांचे को नियमित करके श्रमिकों के वेतन को मूल्य-स्तर से इस प्रकार जोड़ा जाए जिससे रहन-सहन के व्यय में होने वाली वृद्धि का उस पर असर न पड़े, सामाजिक सुरक्षा और श्रमिक कल्याण की एक संगठित योजना विकसित की जाए और श्रमिकों की सहभागीदारी का सिद्धान्त लागू किया जाए जिससे वे भी अपनी औद्योगिक इकाई के प्रबन्ध और उसके लाभ में साझीदार बन सकें। नवीकरण के बहाने समय-समय पर श्रमिकों में कमी करने की कोशिशों का भी जनसंघ ने विरोध किया है और सिफारिश की है कि वैकल्पिक रोजगार की व्यवस्था किये बिना छंटनी न करने का सिद्धान्त स्वीकार किया जाए।

बोनस 'विलम्बित वेतन' है—विभिन्न औद्योगिक क्षेत्रों में जनसंघ के कार्यकर्ता श्रमिकों की इस मांग का भी समर्थन करते रहे हैं कि श्रम-भार और श्रम के घंटों का विधिवत नियमन किया जाए, छुट्टी की उचित सुविधा प्रदान की जाए, बोनस का सिद्धान्त विकसित किया जाए और जब तक रहन-सहन-योग्य मजदूरी और वास्तविक मजदूरी में अन्तर है तब तक बोनस को 'विलम्बित वेतन' या 'मजदूरी' समझा जाए, छोटे और कुटीर उद्योगों में न्यूनतम वेतन निर्धारित किया जाए, संगठित उद्योगों में मूल वेतन में पच्चीस प्रतिशत की अन्तरिम वृद्धि की जाए, मजदूर संगठनों को मान्यता देने के कानून में संशोधन किया जाए और समझौते एवं पंच फैसले की विधि एवं व्यवस्था को सुधारा जाए जिससे ये व्यवस्थाएं शीघ्रता से एवं कम खर्च में लाभप्रद बन सकें। उद्योग बन्द होने की स्थिति में जनसंघ ने मांग प्रस्तुत की कि सरकारी सहायता और श्रमिक सहकारी समितियों के माध्यम से बन्द, औद्योगिक इकाइयों को स्वयं श्रमिकों को चलाने का अवसर सरकार दे।

इस प्रकार जबकि श्रमिक हितों की पैरवी सब देशभक्त कर रहे थे तब कार्य समिति को यह जानकर दुःख हुआ कि श्रमिकों पर गैर-जिम्मेदार और तोड़फोड़ पर आमादा नेतृत्व के हावी हो जाने के कारण हाल के महीनों में श्रमिक सामान्य जनता की सहानुभूति खोते जा रहे हैं। यद्यपि सरकार और कई उद्योगपतियों का रवैया आलोचना की परिधि से बाहर नहीं, तथापि श्रमिक भी यदि ऐसे राज-

नीतिक नेताओं के हाथ के खिलौने बनते जाएंगे, जिनकी बाह्य-निष्ठा सर्वविदित है, तो वे अपना ही अहित करेंगे। हमारे श्रमिक यदि इस बात को याद रखते हैं कि उनके हित भी समूचे राष्ट्र के हितों के साथ पूरी तरह जुड़े हैं, तो यह निश्चय ही उचित होगा, लेकिन वे यदि राष्ट्रहित की परवाह न करके अपने वर्गगत हितों पर ही अधिक बल देंगे तो इसका इससे भिन्न और कोई परिणाम नहीं होगा कि वे देश की शेष जनता से अलग-थलग पड़ते जाएंगे। श्रमिकों और राष्ट्र का भी सच्चा हित तभी संभव है जब राष्ट्र विरोधी तत्वों के खतरनाक प्रभाव से श्रमिक पूरी तरह मुक्त हो जाएं और राष्ट्रवादी यूनियनों के राष्ट्रीय महासंघ के रूप में विधिवत् वे संगठित हों। कार्यसमिति, इस विचार के अनुसार ही, सब देशभक्त श्रमिकों का आह्वान करती है कि वे इस धरती की कर्तव्यनिष्ठ एवं अनुशासनप्रिय संतान के रूप में राष्ट्र-निर्माण के प्रति अपनी जिम्मेदारी निभाने के लिए संगठित हों। कार्यसमिति सब उद्योगपतियों से भी अनुरोध करती है कि वे इस बात को समझें कि संतुष्ट श्रमिक किसी भी उद्योग की सबसे बड़ी पूंजी है, श्रमिकों को वे अपना बराबर का भागीदार समझें, लाभ कमाने के उद्देश्य के बजाए सेवा भाव को स्वीकार करें और राष्ट्र-निर्माण के सर्वोच्च दायित्व को निभाने के लिए श्रमिकों के कंधे से कंधा मिलाकर खड़े हों। समिति अनुभव करती है कि सरकारी क्षेत्र के उद्योगों में उचित श्रम संबंधों को स्थापित करके सरकार एक अनुकरणीय मालिक का उदाहरण प्रस्तुत कर सकती है।

औद्योगिक सहायता कोष—समिति सरकार से आग्रह करती है कि तात्कालिक पग के रूप में वह नैनीताल सम्मेलन के निर्णयों को तत्काल लागू कर दे। विशेषतः भविष्य-निधि की वर्तमान दर में वृद्धि करने, कर्मचारी राज्य बीमा कानून के अधीन श्रमिकों को मिलने वाली चिकित्सा सुविधाओं को उनके परिवार के सदस्यों को भी उपलब्ध कराने, अनुशासन और आचरण संहिता लागू करने, प्रबन्ध व्यवस्था में श्रमिकों की साझेदारी से संबद्ध कार्यक्रम लागू करने, भविष्य में तालाबन्दियों को रोकने के लिए रचनात्मक दृष्टिकोण अपनाने और कारखाना बन्द होने की सूरत में श्रमिकों की सहकारी समिति को कारखाने को चलाने के लिए आवश्यक पूंजी की व्यवस्था करने के उद्देश्य से औद्योगिक सहायता कोष की स्थापना तो तत्काल होनी चाहिए।

[28 दिसम्बर, 1958; बंगलौर, सातवां सा०अ०]

66.13. श्रमिक अशान्ति

दुर्भाग्य का विषय है कि भारत सरकार की नीतियां लगातार ऐसी रही हैं कि उनसे औद्योगिक अशान्ति बढ़ती रही है। कर्मचारियों के साथ व्यवहार में

भी वह अच्छे मालिक का आदर्श नहीं रख सकी है। राष्ट्र-विरोधी तत्व इस स्थिति का लाभ उठाकर उत्पादन में बाधा उत्पन्न करते रहे हैं। देश की सुरक्षा के लिए औद्योगिक शान्ति का बना रहना तथा कारखानों में उत्पादन का अधिकतम मात्रा में बढ़ना अत्यन्त आवश्यक है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए जनसंघ निम्नलिखित उपाय सुझाता है :

(1) जनसंघ लगातार मांग करता रहा है कि मजदूरी तय करने के लिए एक स्थायी मजदूरी परिषद (Permanent Wage Board) स्थापित की जाए। चौथी योजना के काल के लिए राष्ट्रीय मजदूरी नीति (National Wage Policy) मजदूरों और मालिकों के प्रतिनिधियों के परामर्श से ही तय की जानी चाहिए। इसके लिए औद्योगिक केन्द्रों पर मजदूर परिवार के आय और व्यय के ब्यौरे की जांच की जाए तथा इस जांच के आधार पर ही अप्रशिक्षित मजदूर की आवश्यकतानुरूप न्यूनतम मजदूरी तय की जानी चाहिए। इस प्रकार निर्धारित न्यूनतम मजदूरी के आधार पर, कार्य का आंकलन करके मजदूरी के भाव निर्धारित किये जाने चाहिए। जीवन-निर्वाह सूचकांक को ठीक प्रकार पुनर्निर्धारित करके वेतन को उसके साथ इस प्रकार स्थायी रूप से जोड़ा जाना चाहिए कि सूचकांक के चढ़ाव के साथ वेतन स्वमेव बढ़ता रह सके।

ऐसा होने तक जीवन-निर्वाह की दृष्टि से बढ़ी हुई महंगाई को पूरा पाटने के लिए निजी और सरकारी, दोनों क्षेत्रों में व्यवस्था की जाए तथा राज्यों के सरकारी कर्मचारियों का महंगाई भत्ता केन्द्रीय कर्मचारियों के बराबर किया जाए।

(2) इस सिद्धान्त को स्वीकार करके बोनस कानून संशोधित किया जाए कि जब तक जीवन-निर्वाह-योग्य मजदूरी और असली-वेतन मजदूरी में अन्तर है तब तक बोनस केवल अस्थगित वेतन या मजदूरी मात्र है तथा असली मजदूरी के 'जीवन-निर्वाह-स्तर' तक पहुंच जाने के पश्चात ही बोनस, मुनाफे में मजदूर के साझे का रूप धारण कर सकता है।

मजदूरी पर काम करने वाले सब मजदूरों को बिना किसी भेद-भाव के बोनस का अधिकार दिया जाना चाहिए।

जहां स्वचालन से छंटनी अथवा मजदूरी की खपत की क्षमता में कमी आती हो वहां पर स्वचालन न किया जाए।

वैज्ञानिकन (Rationalisation) भी मजदूरों के प्रतिनिधियों की सहमति के बिना नहीं किया जाना चाहिए और यदि किया जाए तो 'वैकल्पिक काम के बिना छटनी न करने' के सिद्धान्त के अनुरूप ही उसे लागू किया जाना चाहिए।

अनैमित्तिकरण (decasualisation) तथा स्थायीकरण (confirmation) के नियमों का कठोरता से पालन किया जाए।

संविधान के अनुसार जो अधिकार और संरक्षण सरकारी कर्मचारियों को

उपलब्ध हैं, वह सरकारी निर्णय के अन्तर्गत किसी अन्य संस्था में सेवाएं स्थानान्तरित किये जाने पर भी पहले के अनुसार उसे प्राप्त होने चाहिए।

कपड़ा उद्योग के हजारों मजदूरों के बेरोजगार होने की संभावना को टालने के लिए सरकार को एक ऐसी नीति विकसित करनी चाहिए कि सामान्य श्रम नियमों के निलम्बन के बिना कपड़ा कारखाने अबाध्यरूप से चालू रह सकें।

(4) एक समन्वित सामाजिक सुरक्षा योजना (Integrated Social Security Scheme) का विकास तथा बेरोजगारी बीमा योजना का गठन किया जाए।

(5) मालिकों और राज्य सरकारों की बेरुखी के कारण उनके ऊपर जिम्मेदारी छोड़ने के बजाय केन्द्रीय सरकार को स्वयं पहल करके—कारखानों में मकान तैयार करने की योजना को कार्यान्वित करना चाहिए।

(6) सरकारी विभागों, अन्य नौकरियों, तथा कारखानों में ह्विटले काउन्सिल (Whitley Council) के अनुसार शीघ्र व्यवस्था की जाए।

मजदूर संगठनों को मान्यता देने सम्बन्धी नियमों का पुनर्गठन किया जाए तथा जनतंत्र की भावना के अनुसार आवश्यक है कि हर दो वर्ष में गुप्त मतदान द्वारा मजदूरों का मत लिया जाए।

(7) कुछ उद्योगों को विशेष रूप से छांटकर मजदूरों की साझेदारी देने के सिद्धान्त का व्यावहारिक परीक्षण किया जाए।

(8) खेती के योग्य बन सकने वाली बंजर भूमि, बिना जमीन वाले खेतिहर मजदूरों में वितरित की जाए; वर्तमान मूल्य स्तर के अनुरूप न्यूनतम मजदूरी अधिनियम (Minimum Wages Act) को संशोधित किया जाए, संशोधित कानून सम्पूर्ण ग्रामीण क्षेत्रों में लागू किया जाए तथा बेरोजगारी और अर्ध-बेरोजगारी के निवारण के लिए ग्रामों में अनुषंगी उद्योग स्थापित किये जाएं।

(9) स्वयं अपना काम धंधा करने वाले परम्परागत कारीगरों के लाभ के लिए विपणन की सहकारी समितियों के गठन को सरकारी तौर पर प्रोत्साहित किया जाए।

[1 मई, 1966; जलन्धर, तेरहवां सा०अ०]

69.09. श्रमिक अशान्ति

भारतीय जनसंघ इस बात पर गम्भीर चिन्ता अनुभव करता है कि ऐसे समय में जबकि अधिकतम उत्पादन देश की सर्वप्रमुख आर्थिक आवश्यकता है, औद्योगिक क्षेत्र में बेचैनी बढ़ती जा रही है। जहां जनसंघ एक ओर काम के अधिकार को 'मौलिक अधिकार' के रूप में स्वीकार किये जाने तथा रोजगार देने वाले

नियोजन के अन्तर्गत श्रम-प्रधान परियोजनाओं की मांग करता है वहां दूसरी ओर श्रम-नीति में एक ऐसे परिवर्तन की भी मांग करता है जिससे स्वस्थ औद्योगिक सम्बन्ध विकसित हों और श्रमजीवी वर्ग को हर दृष्टि से न्याय प्राप्त हो सके। जनसंघ मांग करता है कि न्यूनतम वेतन अधिनियम खेतीहर मजदूरों पर भी लागू किया जाए और परम्परागत कारीगरों को अपने औजारों के सुधार तथा बाजार में माल बेचने के लिए सहकारी समितियां खोलने की दृष्टि से सहायता दी जाए। एक समान श्रम-संहिता का विकास किया जाए जिससे जटिल कानूनी प्रक्रियाओं को सरल बनाया जा सके, श्रम कानून के अन्तर्गत विभिन्न तन्त्रों तथा व्यवसायों को समन्वित किया जा सके और औद्योगिक मजदूर को सस्ता तथा शीघ्र न्याय मिल सके। अभिनवीकरण, यंत्रीकरण अथवा स्वचालन की किसी योजना का विचार करते समय इस सिद्धान्त का कठोरता से पालन किया जाए कि बिना दूसरी नौकरी दिये छंटनी नहीं की जाएगी। नौकरी की सुरक्षा, आवश्यकता पर आधारित न्यूनतम वेतन, असली वेतन, काम के बोझ और समय के योग्य नियमन, सामाजिक सुरक्षा, श्रम-कल्याण और औद्योगिक आवास निर्माण की समन्वित योजनाओं, श्रम कानूनों एवं श्रम पंचाटों को लागू किये जाने तथा कारखानों के सहस्वामित्व के स्वाभाविक अधिकार की गारंटी दी जानी चाहिए।

प्रसन्नता का विषय है कि राष्ट्रीय श्रम आयोग ने अपना काम लगभग पूरा कर लिया है। कार्यसमिति आशा करती है कि आयोग ने भारत के मजदूरों की समस्याओं के हर पहलू पर भली प्रकार विचार किया होगा। कार्यसमिति भारत सरकार से आग्रह करती है कि आयोग की सिफारिशों को औद्योगिक क्षेत्र से सम्बन्धित सभी पक्षों की सलाह से लागू किया जाना चाहिए।

कार्यसमिति का विश्वास है कि स्वस्थ मजदूर आन्दोलन प्रजातन्त्र की मूलभूत आवश्यकता है और मजदूरों के ट्रेड यूनियन अधिकारों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप प्रजातंत्र पर कुठाराघात होगा।

आवश्यक सेवा कानून की वापसी—भारत सरकार द्वारा निर्मित बैंकिंग कानून संशोधन अधिनियम की धारा 36 ए०डी० तथा आवश्यक सेवाएं संधारण अधिनियम आदि जैसे, कानूनों के द्वारा मजदूर के जनतंत्रीय अधिकारों पर किये गए आक्रमण की निन्दा करती है तथा मांग करती है कि ये काले कानून तुरन्त वापिस लिए जाएं। यह मानते हुए भी कि सामूहिक सौदेबाजी तथा पंच-निर्णय आदि की समुचित व्यवस्था के द्वारा हड़ताल के अधिकार की उपयोगिता को ही अनावश्यक बना देना सर्वाधिक उचित होगा, कार्यसमिति इस बात पर आग्रह करती है कि मजदूर को हड़ताल करने के उसके जनतंत्रीय अधिकार से वंचित नहीं किया जाना चाहिए। हम अनुरोध करते हैं कि गृह मंत्रालय द्वारा 19 सितम्बर, 1968 की सांकेतिक हड़ताल के पश्चात घोषित इस नीति को ठीक ढंग

से तुरन्त व्यवहार में लाया जाए कि हड़ताल से सम्बन्धित कर्मचारियों के प्रति किसी प्रकार की द्वेष भावना नहीं बरती जाएगी तथा सारे मुकदमें वापिस ले लिए जाएंगे। अब चतुर्थ पंचवर्षीय योजना प्रारम्भ होने वाली है। हम मांग करते हैं कि चतुर्थ पंचवर्षीय योजना काल के लिए रोजगार आमदनी, मूल्य तथा उत्पादन सम्बन्धी राष्ट्रीय नीतियां विभिन्न आर्थिक हितों के साथ परामर्श करके निर्धारिव की जाएं। हमारा यह भी विश्वास है कि बिना कर्तव्य के अधिकार का अस्तित्व नहीं हो सकता तथा यह कि मजदूरों और देश दोनों के हितों में कोई अन्तर नहीं है। हम मजदूरों से भी अपील करते हैं कि वे राष्ट्रीय समृद्धि के निर्माण में अपने योगदान के महत्व को समझें और अनुशासन, कर्तव्यपरायणता तथा लगन के साथ अपने दायित्व का अधिकतम निर्वाह कर राष्ट्रीय सम्पत्ति के निर्माण में योगदान दें।

[25 अप्रैल, 1969; बम्बई, पन्द्रहवां सा०अ०]

72.16. तृतीय वेतन आयोग के प्रतिवेदन में विलम्ब

भारतीय कार्यसमिति तृतीय वेतन आयोग के प्रतिवेदन के प्रस्तुत किये जाने में भारी विलम्ब पर गहरा असंतोष प्रकट करती है। कार्यसमिति को यह संदेह करने का कारण है कि आयोग की रिपोर्ट प्रस्तुत किये जाने में जानबूझ कर देर की जा रही है। कार्यसमिति की मांग है कि सरकार वेतन आयोग को स्पष्ट बता दे कि हर हालत में उसे दिसम्बर 1972 तक अपनी रिपोर्ट पेश कर देनी चाहिए।

सब सरकारी कर्मचारियों को बोनस—कार्यसमिति भारत सरकार द्वारा रेल, डाकतार, आर्डनेन्स फैक्टरी तथा अन्य सरकारी अधिकरणों में काम करने वाले श्रमजीवियों को 8·33 प्रतिशत बोनस से वंचित रखने के निर्णय की निन्दा करती है। कार्यसमिति का मत है कि श्रमजीवी-श्रमजीवी के बीच भेदभाव करने की इस सरकारी नीति ने व्यापक असंतोष को जन्म दिया है, जो किसी भी समय उग्र आन्दोलन का रूप ले सकता है। कार्यसमिति मजदूरों को बधाई देती है कि बोनस के प्रश्न पर उनके संघर्ष का प्रथम चरण सफल हुआ है और शेष बचे हुए मजदूरों तथा कर्मचारियों द्वारा बोनस की प्राप्ति के लिए जो अभियान किया जा रहा है, उसमें उन्हें जनसंघ का पूर्ण समर्थन प्राप्त होगा।

[20 नवम्बर, 1972; जयपुर, के०का०स०]

अध्याय 4

वित्त

भारतीय जनसंघ ने एक ऐसी नयी और स्वतन्त्र अर्थव्यवस्था के विकास की पैरवी की है, जिसके द्वारा भारतीय जीवन-पद्धति के स्थायी मूल्यों के अनुसार भौतिक प्रगति की व्यक्ति के विकास के साथ संगति मिलाई जा सके। इस अर्थव्यवस्था का दार्शनिक आधार पंडित दीनदयाल उपाध्याय के लेख एकात्म-मानववाद में प्रस्तुत है।

दल ने आर्थिक स्वच्छन्दतावाद (*laissez-faire*) के सिद्धांत को अव्यावहारिक बताते हुए अस्वीकार किया है। उसने पूंजीवादी और समाजवादी सिद्धांतों को इस आधार पर अस्वीकार किया है कि उनसे केन्द्रीकरण, एकाधिकार और व्यक्ति का अलगाव बढ़ता है (सिद्धांत और नीतियां)। विकेन्द्रीकरण, राष्ट्रवाद, सामाजिक पुनर्निर्माण एवं आर्थिक न्याय के सिद्धांतों के अनुरूप समता, स्वतन्त्रता और भाईचारे पर आधारित समाज का पक्षपोषण किया है (प्रस्ताव 71.09)। ऐसी अर्थव्यवस्था में श्रमिक का अधिकार मौलिक अधिकार होगा (प्रस्ताव 52.02 और घोषणा-पत्र—1971) प्रत्येक नागरिक के लिए रहन-सहन के न्यूनतम स्तर की गारंटी की जाएगी (प्रस्ताव 52.02, और घोषणा-पत्र—1971); न्यूनतम और अधिकतम व्यय-योग्य आय का अनुपात 1 : 20 की मर्यादा पर लाया जाएगा और फिर उसे घटाकर 1 : 10 का किया जाएगा (घोषणा-पत्र—1954); विभिन्न प्रकार की गतिविधियों में संलग्न श्रमिकों के लिए न्यूनतम वेतन कानून की व्यवस्था होगी और वे प्रबंध व्यवस्था तथा लाभ में साझीदार होंगे (प्रस्ताव 71.09); भूमि और पूंजी के रूप में संपत्ति का कुछ हाथों में जमाव खत्म किया जाएगा (प्रस्ताव 61.04) और संपत्ति के अधिकार को अक्षुण्ण न मानकर उसे सामाजिक स्वीकृति के अंतर्गत रखा जाएगा (सिद्धांत और नीतियां)।

जनसंघ का मत है कि आयोजना के लक्ष्य पूरे करने के लिए वित्तीय और मौद्रिक नीतियां प्रभावशाली माध्यम हैं। इनके बारे में सरकार के इस मध्ययुगीन दृष्टिकोण को उसने गलत माना है कि यह केवल राजस्व बढ़ाने के माध्यम हैं। दल का मत है कि मौद्रिक और वित्तीय नीतियां इस प्रकार निर्धारित की जानी चाहिए (प्रस्ताव 71.09) कि

(i) घरेलू बचत अधिकतम हो,
(ii) आत्मनिर्भरता आए,
(iii) आर्थिक न्याय का लक्ष्य पूरा करने के लिए आय का पुनर्वितरण हो, और
(iv) मूल्यों में स्थिरता आए। इस सम्बन्ध में दल की राय में (प्रस्ताव 71.09) यह कदम उठाए जाने चाहिए :

(1) आयात लाइसेंसों का भ्रष्टाचारपूर्ण तथा प्रतीतात्मक वितरण खत्म हो, (2) आयकर में समानता लागू हो, (3) असाधारण उपभोग को हतोत्साहित किया जाए, और (4) सरकारी खर्च में मितव्ययिता बरती जाए।

हाट मूल्य-व्यवस्था में जनसंघ का विश्वास असीमित नहीं है। किन्तु उसने यह अवश्य कहा है कि जहां यह व्यवस्था अच्छे ढंग से चले वहां इसे लागू किया जाए। कुछ गैर-रूढिवादी विषयों में (उदाहरणस्वरूप आयात लाइसेंसों की बिक्री के मामले में) उसने इस

व्यवस्था को अपनाने की सिफारिश की है ताकि कंट्रोल के दोष दूर किये जा सकें।

जनसंघ ने मूल्य-वृद्धि के खिलाफ सक्रिय आंदोलन चलाए हैं क्योंकि महंगाई से जहां उपभोक्ता को कष्ट हुआ है वहां उत्पादक को कोई लाभ नहीं हुआ। महंगाई के खिलाफ उसने कुछ विशाल प्रदर्शन भी किये जो सफल रहे। ऐसी स्थिति में यह स्वाभाविक ही है कि महंगाई के सवाल पर प्रस्तावों की संख्या सबसे अधिक हो। प्रत्येक प्रस्ताव में तत्कालीन स्थिति-विशेष का विश्लेषण करके बताया गया है कि किसी एक अवधि में कीमतें क्यों चढ़ीं। उदाहरणस्वरूप, 1971 के प्रस्ताव में वर्तमान महंगाई के कारण बताए गए हैं (प्रस्ताव 71.09)। कई प्रस्तावों में मूल्यों में स्थिरता लाने के लिए सिफारिशें भी की गई हैं; इनमें से कुछ हैं :

(1) उचित दर के मूल्यों की दुकानों का जाल फैलाना (प्रस्ताव 63.21);
(2) घाटे की वित्त-व्यवस्था और राज्यों के अधिविकर्ष (Overdrafts) को रोकना (प्रस्ताव 70.06);
(3) सरकार के गैर-विकास व्यय में कटौती करना (प्रस्ताव 63.21);
(4) कर-व्यवस्था में सुधार (घोषणा-पत्र—1957); और
(5) उपभोक्ता के प्रतिरोध-आंदोलन और उपभोक्ता-सहकारिताओं का विकास (प्रस्ताव 71.09)।

जनसंघ का मत है कि 'संपत्ति का अधिकार सामाजिक स्वीकृति से परिचालित और नियंत्रित है', और संपत्ति के अक्षुण्ण एवं अविखंडनीय अधिकार जैसी कोई बात नहीं है' (सिद्धांत और नीतियां)। अतः संपत्ति के स्वामित्व पर दल ने कुछ आमूलचूल परिवर्तनकारी प्रस्ताव पास किये हैं। इनमें से एक वह है जो '1971 के गाजियाबाद प्रस्ताव' के नाम से विख्यात है। इसमें शहरी आवास के लिए भूमि-सीमा एक हजार वर्ग गज और आवास निर्माण व्यय की सीमा दो लाख रुपये निश्चित करने की बात कही गई है (प्रस्ताव 71.09)।

52.02. आर्थिक योजना के लिए उपसमिति

भारत को यदि संवैधानिक तरीके से एवं व्यवस्थित रूप से आगे बढ़ना है तो देश की बिगड़ती आर्थिक स्थिति से उत्पन्न परिस्थिति का भी शीघ्रता से एवं प्रभावशाली हल खोजा जाना चाहिए। जनसंघ अपनी स्थापना के दिन से ही इस बिगड़ती आर्थिक स्थिति के प्रति सजग रहा है और उसने भारत की परिस्थितियों एवं आवश्यकताओं के अनुरूप एक कार्यक्रम तैयार करके इस मामले में देश का नेतृत्व करने का प्रयत्न किया है। इस कार्यक्रम की रूपरेखा जनसंघ के घोषणा-पत्र (1951) में प्रस्तुत है। समिति ऐसा अनुभव करती है कि इस रूपरेखा को और विकसित किया जाना चाहिए जिससे लोगों के सामने वह आर्थिक एवं सामाजिक तस्वीर स्पष्ट हो जाएगी जिसकी जनसंघ कल्पना करता है। अतः कार्यसमिति भारतीय आदर्शों और भारत की विशिष्ट आवश्यकताओं के अनुरूप एक विशद एवं विस्तृत आर्थिक योजना बनाने के लिए एक उपसमिति नियुक्त करने का निर्णय करती है। योजना के मुख्य लक्ष्य यह होंगे :

(1) श्रम-शक्ति एवं राष्ट्रीय साधनों का पूरा उपयोग करते हुए तेजी से उत्पादन एवं राष्ट्रीय संपत्ति बढ़ाना।
(2) समृद्धि का समान वितरण जिससे समाज के विभिन्न वर्गों की आय के बीच विद्यमान भारी असमानता दूर हो सके।
(3) प्रत्येक समर्थ व्यक्ति के लिए रोजगार और सबके लिए रहन-सहन के एक न्यूनतम स्तर की गारंटी करना।
(4) उत्पादन के ऐसे साधनों को सार्वजनिक स्वामित्व के अधीन लाना जो आज चन्द हाथों में है या जो चन्द लोगों में ही सीमित रह सकते हैं।
(5) जमींदारी उन्मूलन और भूमि का पुनर्वितरण।

[10 फरवरी, 1952; दिल्ली, के०का०स०]

52.20. बिक्री-कर विरोधी आन्दोलन

भारतीय जनसंघ का यह सम्मेलन विभिन्न प्रादेशिक सरकारों की कर-नीति को जनहित के प्रतिकूल समझता है। आज जबकि देश की आर्थिक स्थिति गिरती जा रही हो, व्यापार ठप्प हो रहा हो तथा बेरोजगारी बढ़ रही हो, कर-वृद्धि की

योजनाएं न केवल जीवन-निर्वाह के गिरे हुए स्तर को और भी गिरायेंगी वरन् भविष्य के उत्पादन को भी प्रभावित करेंगी। नवीन करों में, विशेषकर बिक्री-कर जो कि कई प्रान्तों में जीवन की आवश्यक वस्तुओं तक पर बहुसूत्री रूप से लगाया गया है, अत्यन्त ही प्रतिगामी है। फलतः स्थान-स्थान पर इसके विरुद्ध आन्दोलन भी प्रारम्भ हुए हैं। जनसंघ इन आन्दोलनों का समर्थन करता है तथा जनता के इन आन्दोलनों के विरुद्ध जो दमन का अवलम्बन किया गया है उसकी निन्दा करता है, विशेषकर सौराष्ट्र में इस सम्बन्ध में चलने वाले सत्याग्रह का जनसंघ अभिनन्दन करता है तथा सौराष्ट्र सरकार की दमन नीति का विरोध करते हुए उससे मांग करता है कि वह जनता की सही मांगों को स्वीकार कर शांति स्थापित करे।

[31 दिसम्बर, 1952; कानपुर, पहिला सा०अ०]

54.09. कुम्भ यात्री-कर

इस वर्ष कुम्भ मेले के अवसर पर तीर्थयात्रियों के ऊपर लगाए गए पूर्णतः अनावश्यक कुम्भ-यात्री-कर के प्रति भारतीय जनसंघ का यह सम्मेलन तीव्र क्षोभ व्यक्त करता है। इस सम्मेलन का यह निश्चित मत है कि तीर्थ के सभी स्थानों पर लगे हुए कर के पश्चात, कुम्भ जैसे महत्वपूर्ण और पवित्र मेले के अवसर पर जबकि पुराने कर भी दूर कर दिए जाने चाहिए थे, पृथक से एक कर लागू करना अत्यन्त अन्यायपूर्ण और अनपेक्षित है। इस कर को लगाने के लिए सरकार द्वारा राष्ट्रपति के अध्यादेश का ऐसी अवस्था में जबकि एक पखवाड़ा पहले तक संसद का सत्र चल रहा था, सहारा लिया जाना सरकार की अलोकतंत्री प्रवृत्ति को व्यक्त करता है। यह पक्षपातपूर्ण आदेश हमारे देश की धार्मिक भावनाओं के बिल्कुल विपरीत है। जनसंघ इसकी तीव्र निन्दा करता है तथा इस अध्यादेश को अविलम्ब वापिस लेने की मांग करता है।

[25 जनवरी, 1954; बम्बई, दूसरा सा०अ०]

55.12. बिक्री-कर

बिक्री-कर सामान्यतः जनसाधारण के लिए दुर्वह तथा प्रतिगामी स्वरूप का होता है। इसलिए जनसंघ इस प्रकार के करों के पक्ष में नहीं है।

यदि वर्तमान परिस्थिति में इस प्रकार का कर आवश्यक ही हो तो उसके व्यावहारिक दोषों का निराकरण कर उसमें नीचे लिखे सुधार करने चाहिएं :

(1) जीवन की आवश्यक वस्तुएं करमुक्त हों;

(2) कुटीर तथा ग्रामोद्योग से निर्मित वस्तुओं पर बिक्री-कर नहीं लगाया जाए;

(3) सब राज्यों में समान दरें लागू की जाएं;

(4) बिक्री-कर बहुसूत्रीय न होकर, एकसूत्रीय हो; और

(5) अन्तर्राज्य बिक्री-कर न लगाया जाए।

केन्द्र शासन उपर्युक्त सुधारों के लिए संविधान में आवश्यक संशोधन करे।

[2 जनवरी, 1955; जोधपुर, तीसरा सा०अ०]

55.15. राजस्थान में बिक्री-कर आन्दोलन

राजस्थान सरकार ने उस प्रदेश में बिक्री-कर विरोधी आन्दोलन को कुचलने के लिए जो दमनकारी पग उठाये हैं, कार्यसमिति उनकी निन्दा करती है। समिति जनता को साधुवाद देती है कि उसने अपनी उचित मांगों के प्रति साहसपूर्ण रवैया अपनाया है। इस आन्दोलन के सिलसिले में जिन लोगों को यातनाएं सहनी और बलिदान करने पड़ रहे हैं, समिति उनके साथ अपनी गहरी सहानुभूति व्यक्त करती है।

समिति राजस्थान सरकार से भी अनुरोध करती है कि जनता की इन उचित मांगों को यथाशीघ्र स्वीकार कर लें—(i) जब तक राज्य सरकार द्वारा नियुक्त विशेषज्ञ समिति की रिपोर्ट नहीं मिल जाती तब तक बिक्री-कर वसूली को स्थगित रखा जाए; (ii) राजस्थान में बिक्री-कर की दर वही हो जो अन्य पड़ोसी प्रदेशों में है; (iii) जीवन की दैनिक आवश्यकता की वस्तुओं और कुटीर तथा हथकरघा उद्योग के उत्पादनों पर बिक्री-कर न वसूल किया जाए; (iv) कई स्थानों पर बिक्री-कर वसूल करने की प्रथा खत्म की जाए।

[15 अप्रैल, 1955; गोकाक, के०का०स०]

56.09. बिक्री-कर प्रतिगामी है

भारत में बिक्री-कर को पहले अस्थायी तौर पर लागू किया गया। अब इसे देश भर में स्थायी किया जा रहा है। पिछले कुछ वर्षों के प्रयोग से स्पष्ट है कि यह प्रतिगामी कर है, जिसका बोझ मुख्य रूप से मध्यम और गरीब वर्ग के उपभोक्ताओं पर पड़ता है। इसके वसूल करने का तरीका व्यापारियों के लिए बेहद कष्टप्रद है और इससे व्यापार में बेईमानी को बढ़ावा और सरकारी कर्मचारियों को भ्रष्टाचार का अवसर मिलता है।

अतः जनसंघ का यह निश्चित मत है कि बिक्री-कर को पूरी तरह समाप्त कर दिया जाए ।

[21 अप्रैल, 1956; जयपुर, चौथा सा०अ०]

57.09. योजना के लिए भारी कर अपघात है

भारत सरकार के नये कर-प्रस्तावों का भार जनता के लिए असह्य हो गया है जिसके विरुद्ध देशभर में व्यापक असंतोष की लहर दौड़ गई है । यह कराधान द्वितीय पंचवर्षीय योजना के नाम पर किया जा रहा है । भारतीय जनसंघ पंचवर्षीय योजना को वज्रलेख नहीं मानता कि जिसमें कोई परिवर्तन ही न किया जा सके । इन करों के कारण जनसाधारण का जीवन असह्य हो जाएगा, जिससे योजना के प्रति उनका रहा-सहा उत्साह भी जाता रहेगा ।

चाय, कॉफी और पोस्ट-कार्ड के मूल्यों में कुछ सुविधा देने के उपरान्त भी करों का बोझ जनसाधारण पर ही पड़ेगा—कारण अधिकांश कर जीवनोपयोगी वस्तुओं पर ही लगाए गए हैं । भोजन, वस्त्र और अन्य जीवनोपयोगी वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि के साथ इन करों का बोझ साधारण आय के लोगों के लिए असह्य हो जाएगा । आय-कर के स्तर को 4,200 रु० से 3,000 रु० पर लाकर साधारण जन पर प्रत्यक्ष कर का भार डाला गया है । रेलवे किरायों पर कर तथा सीमेंट और इस्पात पर उत्पादन शुल्क की वृद्धि, निर्माण, वहन और यात्रा के व्यय में बढ़ोतरी करेगी, जिसका परिणाम जनजीवन पर प्रतिकूल पड़ेगा ।

जनसंघ यह अनुभव करता है कि जहां इन करों से सारी जनता में व्यापक असंतोष उत्पन्न होगा वहां निम्नलिखित कारणों से योजना के क्रियान्वयन के लिए कोई अधिक साधन भी नहीं जुट सकेंगे :

(1) जीवन-यापन और निर्माण की वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि से द्वितीय पंचवर्षीय योजना के सभी अनुमान बढ़ जाएंगे । मजदूरी और माल का व्यय बढ़ जाएगा और इस प्रकार करों से प्राप्त आय का बहुत बड़ा भाग योजना के अनुमानों की वृद्धि में खप जाएगा ।

(2) बढ़े हुए मूल्यों के कारण छोटे सरकारी कर्मचारी और औद्योगिक श्रमिक द्वारा अधिक वेतन की मांग स्वाभाविक है । इस प्रकार बढ़ी हुई आय का बहुत-सा भाग सरकारी कर्मचारियों को वेतन के रूप में चुकाना होगा ।

(3) इन नये करों को उगाहने के लिए जिस तंत्र का निर्माण किया जाएगा उसमें भी बहुत-सा भाग खर्च हो जाएगा ।

(4) जनसाधारण, जिसके संतोष पर योजना की प्रगति निर्भर है, अपने अल्प साधनों के कारण इनका विरोध करेगी । इस प्रकार जो कुछ थोड़ा-बहुत

आर्थिक लाभ होगा वह भी जनक्षोभ के कारण व्यर्थ जाएगा ।

(5) प्रथम पंचवर्षीय योजना का अनुभव, जो 80% व्यय करने के उपरान्त भी केवल 30% ही सफल हुई, यह बताता है कि धन का भारी भाग सरकारी भ्रष्टाचार और अक्षमता के कारण व्यर्थ गया है । यह विश्वास करने का कोई कारण नहीं कि गरीब की गाढ़ी कमाई का पैसा अब आगे ठीक प्रकार से ही व्यय किया जाएगा ।

यदि यह मान भी लिया जाए कि इस धन का सद्व्यय होगा तो भी अज्ञात भविष्य के लिए आज की पीढ़ी की कमर तोड़ देना न्याय नहीं । योजना जनता के लिए है न कि जनता योजना के लिए ।

कराधान की समन्वित प्रणाली—केन्द्रीय सरकार के करों के अतिरिक्त राज्य सरकारें और स्थानीय संस्थाएं भी कर पर कर लादती जा रही हैं । परिणामतः कर-मात्रा असह्य बन गई है । जब तक एक ऐसी समन्वित कर-प्रणाली का विकास नहीं होता जिसमें केन्द्र, राज्य व स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं के कराधान क्षेत्र सुस्पष्ट नहीं हो जाते तब तक ये विविध कर जनता के लिए दुर्वह होंगे और उनके भ्रष्टाचार तथा टैक्सों की चोरी का दुर्गुण समाज के छोटे से छोटे भाग तक फैल जाएगा ।

गरीबों के ऊपर बोझ डालने के पहले सरकार ने अपने सभी साधनों को भी पूरी तरह नहीं जुटाया । उदाहरण के लिए पाकिस्तान से तीन सौ करोड़ (300 करोड़) रु० और बर्मा से 90 करोड़ रु० का ऋण उगाहने के लिए सरकार ने कोई कदम नहीं उठाया—जिससे कि योजना की वित्तीय आवश्यकता, बहुत सीमा तक पूरी हो सकती थी ।

कराधान प्रस्तावों के पक्ष में भारत सरकार द्वारा दिए गए तर्कों से स्पष्ट है कि योजना के लिए साधनों के अभाव ने शासकों को हताश बना दिया है । वास्तविक कठिनाई तो यह है कि योजना हमारे साधनों की तुलना में अत्यधिक महत्वाकांक्षी है । स्थिति की मांग है कि या तो उसे छोटा किया जाना चाहिए अथवा उसकी अवधि बढ़नी चाहिए ताकि राष्ट्र की क्षमता के साथ उसका ताल-मेल बना रहे । वित्तीय दिवालियेपन की बालू की भीत पर महल बनाने से कोई लाभ नहीं । हुआ यह है कि योजना द्वारा एक ऐसा दुष्चक्र आरम्भ हो गया है कि एक ओर मूल्य बढ़ते हैं तो दूसरी ओर मूल्य वृद्धि से उत्पन्न स्थिति का सामना करने के लिए अधिक भारी कर लगाए जाते हैं । यथार्थता की मांग है—'तेते पांव पसारिये, जेती लम्बी सौर' ।

योजना व्यय में कटौती—यदि योजनान्तर्गत कुछ परियोजनाओं को—जैसे कपड़ा, रेशम, चीनी की मिल, आदि को—सार्वजनिक क्षेत्र में रखने के बजाय निजी क्षेत्र को सौंप दिया जाए तो योजना के खर्चे में कमी हो सकती है । विदेशी मुद्रा—

जिसकी कमी योजना के लिए बाधा बन रही है—को बचाने के लिए विलास-सामग्री तथा ऐसी वस्तुओं के आयात पर जो बाद में आ सकती हैं, रोक लगाना चाहिए और देश में स्वदेशी की भावना को जागृत करना चाहिए। स्थिति यह है कि साधारण व्यक्ति तो रोटी को तरस रहा है और देश में विदेशी वस्तुओं की भरमार होती जा रही है।

मितव्ययिता में सरकारी पहल—सबसे अधिक आवश्यकता इस बात की है कि जनता को त्याग और संयम द्वारा भार-वहन करने के उपदेश देने से पहिले, शासन भी मितव्ययिता तथा संयम का आदर्श उपस्थित करे। इस ओर अपनी हार्दिक इच्छा का संकेत अभी तक शासकों से मिला नहीं है।

देश की अपेक्षा है कि राज्यपाल, मंत्रीगण तथा राज्य सरकारें अपने वेतन तथा अन्य व्ययों में स्वयमेव कटौती करें तथा व्यय के उसी स्तर के समीप आयें जो साधारण व्यक्ति का है। देश के आर्थिक विकास के लिए सहायक सादगी के जीवन के लिए स्वस्थ मनोवैज्ञानिक वातावरण बनाने में इससे मदद मिलेगी।

समिति जनसंघ के सभी कार्यकर्ताओं को आदेश देती है कि वे जन-जागरण करते हुए एक जन-आन्दोलन के द्वारा शासन पर इन करों में परिवर्तन के लिए दबाव डालें। इसके अतिरिक्त आज की विषम परिस्थिति को सुधारने के लिए निम्न कार्यक्रम भी अपनाये जाएं :

(1) स्वदेशी का व्यापक आन्दोलन जिससे विदेशी आयात पर देश कम से कम निर्भर रहे।

(2) संयम और बचत के लिए आन्दोलन करना, जिससे बचा हुआ धन, पूंजी के रूप में लगाया जा सके।

जनसंघ के कार्यकर्ता इस सम्बन्ध में जनता के समक्ष अपना आदर्श उपस्थित करें।

[1 जून, 1957; दिल्ली, के०का०स०]

58.03. आर्थिक स्तिथि; कुछ सुझाव

देश के सम्मुख आज एक विषम आर्थिक स्थिति है जो शासन तथा जनता दोनों के लिए गम्भीर चिन्ता का कारण बनी हुई है। खाद्यान्न की कमी, औद्योगिक उत्पादन में गिरावट, बढ़े हुए मूल्य, जनसाधारण की क्रय-शक्ति में ह्रास, बेरोजगारी, वृद्धिशील कराधान, मुद्रास्फीति और विदेशी मुद्रा की समस्याएं, इस विषम स्थिति की परिचायक हैं।

इस स्थिति को यह कहकर नहीं टाला जा सकता है कि वह आर्थिक विकास क्रम का स्वाभाविक परिणाम है। यह तो माना जा सकता है कि एक अर्ध-विकसित

आर्थिक ढांचे को बदलने के प्रयास में कुछ क्षेत्रों पर दबाव पड़े, किन्तु आज के चौमुखे संकट के लिए नियोजन की आधारभूत गलतियां, शासन की अनवधानता और अदूरदृष्टि तथा विभिन्न मंत्रालयों एवं नीतियों में पारस्परिक समन्वय की कमी बहुत मात्रा में उत्तरदायी है।

भारतीय जनसंघ प्रारम्भ से ही इस बात का आग्रह करता है कि हमारे नियोजन में सर्वाधिक बल कृषि-उत्पादन पर होना चाहिए। आज यद्यपि शासन अनुभव कर रहा है कि दूसरी पंचवर्षीय योजना में कृषि को प्राथमिकता न देकर उसने गलती की, किन्तु फिर भी उसके विकास के लिए कोई ठोस और रचनात्मक पग नहीं उठाए जा रहे। जब तक कृषि-विकास के कार्यक्रम और उत्पादन के लक्ष्यों के निर्धारण में प्रत्येक कृषक परिवार, ग्राम और क्षेत्र की क्षमता और आवश्यकता का विचार नहीं किया जाएगा, तब तक वे अयथार्थवादी ही रहेंगे और उनकी पूर्ति में किसको कितना योगदान देना है इसका ज्ञान और आवश्यक प्रेरणा न होने के कारण उन्हें निश्चयात्मक रूप में कार्यान्वित नहीं किया जा सकेगा।

सिंचाई की छोटी योजनाएं, उन्नत बीज, उर्वरक और खाद, पशुधन की रक्षा और विकास तथा कृषक का भूमि पर प्रत्यक्ष स्वामित्व, लगान की न्यायोचित दर और अधिकतम जोत का निर्धारण—जिनके सहारे भारत में सघन खेती का अवलम्बन करके प्रति एकड़ अधिक उपज प्राप्त की जा सकती है—इनकी ओर सरकार का दुर्लक्ष्य रहा है। इसके विपरीत बड़ी-बड़ी सिंचाई योजनाएं, जिनमें सिंचाई की दरें किसानों के लिए असमान-कर-स्तर पर निश्चित की गई हैं, कल्याणकर सहकारिता के नाम पर सामूहिक खेती, किसान के अहित में भूमि-सुधार कानूनों का प्रतिदिन बदलना, अविवेकपूर्ण यंत्रीकरण, भूमि और सिंचाई की अवस्था से बेमेल उर्वरकों का उपयोग, आदि अनेक ऐसी योजनाएं हैं जिनके ऊपर शासन बल दे रहा है किन्तु वे भारतीय कृषि एवं कृषक के लिए अनुपयुक्त एवं हानिकारक हैं।

औद्योगिक क्षेत्र में यद्यपि पिछले पांच वर्षों में प्रगति हुई है, किन्तु कतिपय उद्योगों में विगत कुछ मासों से एक मन्दी आती जा रही है। सार्वजनिक व्यय में वृद्धि के होते हुए यह गिरावट पाश्चात्य अर्थशास्त्र के उन नियमों से विसंगत है जिसे शासन ने अपनी नीतियों का आधार बनाया है और जो भारत के प्रतिकूल हैं। शासन की ऋण और मुद्रा नीतियां, कराधान और औद्योगिक कार्यक्रम एक दूसरे के साथ सुसंगत नहीं हैं। छोटे-छोटे उद्योग जो भारत के औद्योगिक विकास का आधार बन सकते हैं, उपेक्षित रहे हैं। पिछले डेढ़ वर्ष से जो मूल्य बढ़े हैं वे अपने सामान्य स्तर पर नहीं आ पाये हैं। बढ़े हुए मूल्य जहां एक ओर निश्चित आय वाले व्यक्तियों के जीवन-स्तर के लिए कठिनाई उत्पन्न करते हैं तो दूसरी ओर विभिन्न क्षेत्रों और कालखण्डों, तथा कृषि व औद्योगिक वस्तुओं के बीच के

मूल्यों का भारी अन्तर सटोरियों और जमाखोरों को छोड़कर अन्य सभी के लिए त्रासदायक है। शासन एक सुस्थिर मूल्य नीति निर्धारित करने में असफल रहा है। बढ़ते हुए भाव, अधिक वेतन और मजदूरी की मांग, उत्पादन-मूल्य में वृद्धि (अतः भाव वृद्धि), महत्वाकांक्षी योजनाएं और उनके लिए अधिक कर या घाटे की अर्थव्यवस्था तथा मुद्रास्फीति से भाववृद्धि, योजनाओं के अनुमानों में वृद्धि तथा इसलिए और अधिक कर एवं फिर से घाटे की अर्थव्यवस्था—ये ऐसे दुष्चक्र हैं जिनके भंवर में भारत की अर्थनीति फंस गई है। इनसे पार निकलने के लिए सामान्य स्तर पर सुस्थिर मूल्यों की स्थापना को केन्द्र बनाकर ही समस्त नीतियों का निर्धारण करना होगा।

शासन की नीति उसके जनसाधारण के जीवन-स्तर को ऊंचा उठाने और आर्थिक विषमता को कम करने के उद्घोषित सिद्धान्तों के प्रतिकूल है। प्रत्यक्ष करों की तुलना में अप्रत्यक्ष कर, जिनका भार बहुतांश जनता पर पड़ता है, कई गुना बढ़ गये हैं। जीवन के लिए आवश्यक वस्तुएं भी उत्पादन शुल्क, बिक्री-कर, क्रय-कर, आदि से मुक्त नहीं हैं।

शासन का व्यय इस तेजी से बढ़ रहा है कि पिछले दो वर्षों में 225 करोड़ रु० की कर वृद्धि और ऋण के उपरान्त भी 600 करोड़ रु० की घाटे का अर्थ-संधान (deficit financing) करना पड़ा है जो आज की स्थिति में खतरे से खाली नहीं है। विदेशी ऋण, योजना की पूर्ति के लिए आवश्यक हो गए हैं। किन्तु उनके भुगतान की न तो कोई निश्चित व्यवस्था की गई है और न इस बात का विचार किया गया है कि उनका परिणाम हमारी भावी योजनाओं पर क्या पड़ेगा?

इस स्थिति के निराकरण के लिए आवश्यक है कि :

(1) शासन अपने खर्चों में भारी कटौती करे।

(2) सार्वजनिक उद्योगों में नियंत्रक अंश (Controlling Shares) अपने पास रखकर शेष अंश जनता के लिए छोड़ दे।

(3) योजना की अवधि बढ़ाई जाए।

(4) उन योजनाओं को जो तुरन्त फलदायी हैं शीघ्रातिशीघ्र पूरा किया जाए।

(5) योजनाओं की आयात-निर्भरता कम करके उन्हें स्वदेशी माल के सहारे पूरा किया जाए।

(6) 2,000 रु० प्रति मास से अधिक वेतन पाने वाले व्यक्तियों को इससे अधिक की राशि राष्ट्रीय योजना बांड के रूप में दी जाए।

[5 अप्रैल, 1958; अम्बाला, छठा सा०अ०]

59.04. 1959-60 के बजट प्रस्ताव

केन्द्रीय बजट 1959-60 पर विचार करने के उपरान्त भारतीय कार्यसमिति सखेद अनुभव करती है कि वित्तमंत्री ने बजट प्रस्तावों के निर्धारण में न तो देश की आर्थिक स्थिति का विचार किया है और न पिछले अनुभवों से कुछ सीखा है। करों के भारी बोझ को कम करने के स्थान पर 20·70 करोड़ रु० के नये अप्रत्यक्ष कर लगाए गए हैं। ऐसा लगता है कि यह कर जैसे खण्डसारी, डीजल तेल, मोटर टायर तथा नकली रेशम पर उत्पादन शुल्क, आदि, राजस्व प्राप्ति के स्थान पर बड़े उद्योगों के हित में लगाए गए हैं। शासन की छोटे और कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन देने की उद्घोषित नीति से यह बेमेल है। समिति शासन से मांग करती है कि वह इन कर-प्रस्तावों पर पुनर्विचार कर उन्हें त्याग दें।

प्रतिरक्षा व्यय में कटौती—एक ओर जहां शासन के विभिन्न विभागों में अप-व्यय को रोककर मितव्ययिता का कोई प्रयास नहीं किया गया वहां *प्रतिरक्षा व्यय में कटौती, विशेषकर जब भारत विदेशी आक्रमण की आशंकाओं से मुक्त नहीं है, कुछ पेचीदगी भरी है।*

दो हजार रुपये प्रति मास से अधिक का वेतन बांडों में—मूल्यों में वृद्धि के कारण छोटे कर्मचारियों को अस्थायी सहायता देने का शासन ने कोई विचार नहीं किया। समिति अपने पुराने प्रस्ताव को दुहराती है कि 2,000 रु० प्रति मास से ऊपर की आय वाले अधिकारियों को इस मर्यादा से अधिक का भुगतान राष्ट्रीय योजना बांड के रूप में किया जाए। यह आवश्यक है कि बजट में आय और व्यय की खाई को पाटने के लिए भरसक प्रयास किया जाए क्योंकि भारी घाटे की अर्थ-व्यवस्था ने पहले ही मुद्रास्फीति उत्पन्न कर दी है जिसे रोकना होगा।

[15 मार्च, 1959; दिल्ली, के०का०स०]

60.02. आर्थिक स्थिति; कुछ सुझाव

आज जबकि बाहरी आक्रमण का संकट सामने है, देश की आर्थिक स्थिति भी समाधानकारक नहीं है। गत 12 वर्षों में शासन राष्ट्र के आर्थिक विकास पर निरन्तर बल देता रहा है, यहां तक कि उसने सुरक्षात्मक तथा अन्य आवश्यकताओं पर भी ध्यान नहीं दिया; किन्तु शासन द्वारा अपनायी गई मूलतः अशुद्ध नीतियों के फलस्वरूप अर्थव्यवस्था ने गत कुछ वर्षों में इतने दबाव तथा तनाव सहन किये हैं कि सुरक्षात्मक युद्ध का सामना करना तो दूर रहा, वह शान्तिकाल में बढ़ती हुई जनसंख्या को भी नहीं सम्हाल सकती। वर्तमान में निरन्तर स्वयं-वर्धमान अर्थव्यवस्था की बातें करना कोरी आत्म-वंचना है।

लघु उद्योग--यह तो सत्य है कि गत एक वर्ष में औद्योगिक तथा कृषि दोनों ही क्षेत्रों का उत्पादन बढ़ा है और एक वर्ष पूर्व की गिरावट की पृष्ठभूमि में इसे प्रगति माना जा सकता है। किन्तु तनिक विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाएगा कि यह वृद्धि अधिकांश में आकस्मिक है तथा अनियोजित एवं असमन्वित स्वरूप की है। जहां कुछ उद्योगों की उत्पादन क्षमता का उपयोग नहीं हो रहा वहां दूसरी ओर ऐसे उद्योग हैं जिनमें अभाव है। देश के औद्योगिक ढांचे में छोटे और बड़े उद्योगों के बीच सामञ्जस्य स्थापित नहीं किया गया है जिससे बड़े उद्योगों की थोड़ी-सी भी वृद्धि छोटे उद्योगों के लिए अहितकर होती है। अतः नये उद्योगों की स्थापना और पुराने उद्योगों का ह्रास साथ-साथ चल रहा है। जितने व्यक्तियों को काम मिलता है उससे अधिक बेरोजगार होते हैं। पुरानी पूंजी की समाप्ति नयी पूंजी के निर्माण से अधिक है। संयुक्त उत्पादन कार्यक्रम की चर्चा होने के बाद भी गुड़, खंडसारी और चीनी उद्योगों के बीच तालमेल नहीं हो पाया है। कभी एक की और कभी दूसरे की सहायता के अब तक सरकार ने जो प्रयत्न किये हैं उनसे उनके बीच मनमुटाव और असन्तुलन की ही वृद्धि हुई है।

सूती वस्त्रोद्योग की स्थिति भी अच्छी नहीं है। गत वर्ष मंदी के कारण कारखाने बन्द हो गए और छंटनी हुई, तो इस वर्ष उत्पादन में वृद्धि होने के उपरान्त भी कपड़े के मूल्य बहुत बढ़े हैं और आगे भारी अभाव की आशंका उत्पन्न हो गई है। हथकरघा उद्योग की भी यही हालत है।

पिछले वर्ष की तुलना में कृषि उत्पादन अच्छा है फिर भी देश की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बहुत अपर्याप्त है। साथ ही इस वर्ष की अच्छी फसल प्रकृति का प्रसाद है न कि नियोजित प्रयत्नों का परिणाम।

निर्यात में वृद्धि के उपरान्त भी आयात उससे अधिक है और इसलिए विदेशी व्यापार का सन्तुलन प्रतिकूल है। अनेक मित्र देशों से सहायता के कारण हमारा भुगतान सन्तुलन सुधरा है और आज पिछले वर्ष की तुलना में हमारा विदेशी मुद्रा का शेष लगभग 21 करोड़ रु० से अधिक है। किन्तु जब हम यह देखते हैं कि हमारे ऊपर तेजी से विदेशी ऋणों का भार बढ़ता जाता है तो वर्तमान की कठिनाइयों को दूर करने का यह रास्ता हमारे भविष्य के लिए आशंकाएं पैदा कर देता है।

कीमतें शासन की आर्थिक नीतियों का सबसे कमजोर पक्ष रही हैं। शासन उनका स्थिरीकरण नहीं कर पाया है। इस वर्ष थोक मूल्यों के सूचकांक (1952-53=100) 110.7 (जनवरी) से बढ़कर 119.3 (अक्तूबर) तक पहुंच गए हैं। अन्न के दाम तो इतने ऊंचे उठे कि उनका सूचकांक 124 तक पहुंच गया। साधारण परिवारों की कठिनाइयों का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि उपभोक्ता मूल्य सूचकांक अक्तूबर 1959 में 126 (1949=100) थे

ऐसी स्थिति में स्वाभाविक है कि कम और निश्चित आय वाले कर्मचारी अधिक वेतन और भत्तों की मांग करें। शासन ने पहल करके राष्ट्रीय वेतन दरें निश्चित करने के लिए किसी स्थायी विकास की व्यवस्था करने के स्थान पर केवल वही पग उठाए हैं जहां कुछ दबाव पड़ा है, अन्यथा उपेक्षा ही की है। यदि हम मूल्य-वृद्धि के मूल में जाएंगे तो पता लगेगा कि उत्पादन की कमी और प्रति वर्ष बढ़ने वाले घाटे की अर्थव्यवस्था से उत्पन्न मुद्रास्फीति ही इसके कारण हैं। शासन की नीतियां जिनकी जल्दबाजी में घोषणा की जाती है, जो अव्यावहारिक होने के कारण ठीक से क्रियान्वित नहीं होती हैं और निश्चिन्तता से वापस ले ली जाती हैं, बाजार में अभाव का वातावरण पैदा कर देती हैं। हाल में हुई अनाज के मूल्यों में वृद्धि शासन द्वारा घोषित गल्ले के राजकीय व्यापार और अन्न के क्षेत्रों सम्बन्धी अदूरदर्शी नीति के कारण ही है। शासन की मौद्रिक और वित्तीय नीतियां भी इस वृद्धि में सहायक हुई हैं।

बेरोजगारी पूर्वानुसार विकट समस्या बनी हुई है। रोजगार के दफ्तर अधिक उपयोगी सिद्ध नहीं हुए। शासन ने उनका सुधार करने के लिए उनका पुनर्गठन करने के स्थान पर यही कानून बनाया है कि निजी क्षेत्र के लोग भी अपने यहां जगह खाली होने पर इन दफ्तरों को अनिवार्य रूप से सूचित करें। इससे काम दिलाऊ दफ्तरों में कुछ अधिक व्यक्ति भले ही खप जाएं पर बेरोजगारी समस्या पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

सार्वजनिक सेवाओं का पुनर्गठन--देश की स्वतंत्रता और शासन द्वारा समाजवाद की स्वीकृति के कारण कर्मचारियों पर आई नयी जिम्मेदारियों का योग्यता और ईमानदारी के साथ, वे निर्वाह कर सकें इस दृष्टि से सार्वजनिक सेवाओं का पुनर्गठन बाकी है। किन्तु ध्यान रखना चाहिए कि इस काम में कर्मचारियों में असुरक्षा का भाव न उत्पन्न हो जाए तथा सत्तारूढ़ दल के लोग सरकारी कामों पर न लगाए जाएं। नियुक्ति और पद-वृद्धि आदि में जाति और सम्प्रदाय का विचार नहीं होना चाहिए।

भारतीय जनसंघ का मत है कि देश की अर्थव्यवस्था को एक सुदृढ़ आधार पर खड़ा करने के लिए और विकास प्रक्रियाओं के जनन के लिए सरकार को अपनी अर्थनीति में आमूल परिवर्तन करने चाहिए। अर्थक्षेत्र में राज्य के निरन्तर बढ़ते हुए प्रभुत्व को प्रवृत्त करने वाले मतवादी दृष्टिकोण का परित्याग किया जाए और ऐसे अवसर उत्पन्न किये जाएं जिसमें व्यक्ति तथा स्वयंस्फूर्त संगठन अर्थ-रचना के विकास के लिए अधिकाधिक योगदान कर सकें।

शासन को प्रतिरक्षा व मूलभूत उद्योगों तक ही अपने को सीमित रखना चाहिए और शेष उद्योगों को निजी क्षेत्र के लिए छोड़ देना चाहिए। आज सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार की अपेक्षा उनके वर्तमान स्वरूप को सुदृढ़ करने की

आवश्यकता है जिससे वह अपनी उत्पादन क्षमता और सुकार्य बढ़ा सकें।

छोटे यंत्र-चालित उद्योगों को देश के औद्योगिक ढांचे का आधार बनाया जाए। बड़े और छोटे उद्योगों के बीच की प्रतिद्वन्द्विता को समाप्त करने की दृष्टि से उनके उत्पादन क्षेत्रों का स्पष्ट निर्धारण होना चाहिए।

किसान कृषि परिषदें—कृषि को प्राथमिकता दी जाए तथा देश को पंचवर्षीय योजना की अवधि में अन्न की दृष्टि से आत्म-निर्भर बनाने के सब संभव उपाय किये जाएं। किसानों में विश्वास पैदा करने के लिए सहकारी खेती के कार्यक्रम के परित्याग की असंदिग्ध शब्दों में घोषणा की जाए। जोत की अधिकतम सीमा और पुनर्वितरण सम्बन्धी अन्य भूमि-सुधारों को क्रियान्वित करने में शीघ्रता की जाए। हर गांव में उत्पादन वृद्धि की योजनाएं बनाने के लिए किसानों की कृषि परिषदें स्थापित की जाएं।

प्रतिरक्षा व्यय—सैनिक सामग्री प्राप्त करने के लिए प्रतिरक्षा व्यय में बढ़ोतरी आवश्यक है। अन्य कम महत्व की योजनाएं अधिक अनुकूल समय के लिए स्थगित रखी जा सकती हैं। प्रशासन में मितव्ययिता से काम लिया जाना चाहिए।

कर-नीति का निर्धारण इस ढंग से किया जाना चाहिए कि जहां उसके द्वारा विषमता घटे वहां उससे जनता की उत्पादन-क्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव भी न पड़े। प्रतिदिन की आवश्यकताओं पर उत्पादन शुल्क में पर्याप्त कमी की जानी चाहिए।

गल्ले की राजकीय व्यापार नीति का आश्रय लेकर इस क्षेत्र पर शासन का एकाधिकार निर्माण करना उचित नहीं। किन्तु यह आवश्यक है कि मूल्यों के गिरते समय गल्ला खरीदने की तथा अभाव के समय अभावग्रस्त क्षेत्रों में सस्ते अनाज की दुकानें खोलने की शासन व्यवस्था करे।

[25 जनवरी, 1960; नागपुर, आठवां सा०अ०]

61.04. आर्थिक नीति के बारे में वक्तव्य

भारतीय जनसंघ भारत की संस्कृति और मर्यादाओं के आधार पर राष्ट्र के राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक जीवन की रचना करना चाहता है। व्यक्ति और समाज की भौतिक एवं आध्यात्मिक, दोनों प्रकार की उन्नति भारतीय संस्कृति चाहती है। एकांगी उन्नति का विचार अधूरा एवं हमारी सांस्कृतिक परम्परा के प्रतिकूल है। व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं आत्मिक-विकास का समन्वित मार्ग ही भारतीय संस्कृति को अभिप्रेत है। इसी आधार पर 'पुरुषार्थ चतुष्टय' की कल्पना की गई है। हमारे लिए वही अर्थव्यवस्था श्रेयस्कर हो सकती है जो जीवन के सर्वतोमुखी विकास के लिए सहायक हो सके।

चार पुरुषार्थ से समृद्धि—मानव का सुख ही अर्थोत्पादन का प्रमुख लक्ष्य है तथा मानव शक्ति उसका प्रधान साधन है। प्रकृति के साधनों का उपयोग कर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति का प्रयास ही मानव की आर्थिक क्रियाओं का उद्देश्य रहा है। जो इस उद्देश्य की सफल पूर्ति के साथ-साथ मानव के सर्वांगीण विकास में सहायक हो सके, वही उपयुक्त व्यवस्था है। जिस व्यवस्था में आर्थिक क्षमता तो बढ़े किन्तु मानवता के अन्य अंगों के विकास की शक्ति कुंठित हो जाए, वह कल्याणकारी नहीं हो सकती। मानव ही हमारी व्यवस्था का केन्द्र होना चाहिए।

मानव ने अपने विकास-क्रम में तथा अपनी सहायता के लिए अनेक संस्थाओं को जन्म दिया, अनेक विधि व विधानों को स्वीकार किया तथा विज्ञान के अनेक आविष्कार किये। इन सबके अस्तित्व का औचित्य मानव के सुख की वृद्धि की सफलता में ही है। इसी से उनकी मर्यादाएं भी निश्चित होती हैं। व्यक्ति-व्यक्ति; व्यक्ति और समाज—इन सबके पारस्परिक सम्बन्धों का निर्णय भी इसी कसौटी पर करना होगा।

मानव-विकास और मानव-स्वतंत्रता के विचार से पूंजीवादी एवं समाजवादी दोनों ही व्यवस्थाएं अनुपयुक्त हैं। दोनों में अत्यधिक केन्द्रीकरण के कारण व्यक्ति का अस्तित्व विलीन हो जाता है। हमें ऐसी अर्थव्यवस्था चाहिए जिसमें व्यक्ति की अपनी प्रेरणा बनी रहे तथा वह समाज के अन्य व्यक्तियों के साथ अपने सम्बन्धों में मानवता का विकास कर सके। विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था ही इस लक्ष्य को सिद्ध कर सकती है।

रोजगार का अधिकार—मानव जीवन कर्ममय है। कर्म अर्थोत्पादक तथा व्यक्ति और समाज के लिए हितकारक हो यही अर्थव्यवस्था और समाज व्यवस्था का प्रधान लक्षण होना चाहिए। अर्जन का अधिकार व्यक्ति के सम्मानपूर्ण जीवन का अधिकार है।

अर्थव्यवस्था के लक्षण—'काम के अधिकार' के साथ ही अर्जित वस्तु के उपयोग और उपभोग का अधिकार भी जुड़ा है। सम्पत्ति का अधिकार इसी आधार पर स्वीकृत हुआ है। काम की पूरी मजदूरी न मिलने अथवा सम्पत्ति के आधिक्य दोनों से ही कर्म प्रेरणा नष्ट होकर मानव जीवन में विकृतियां आती हैं। अतः धन के अभाव और प्रभाव दोनों को ही रोकना होगा। जहां समाज निष्ठा, धर्म प्रवीणता, दानशीलता, आदि गुण इस लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक हो सकते हैं, वहां विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था भी इसके लिए अपरिहार्य है। अतः भारतीय जनसंघ :—

(1) पुरुषार्थ चतुष्टययुक्त समुत्कर्षशील मानवता को अपनी अर्थव्यवस्था का लक्ष्य स्वीकार करता है;

(2) प्रत्येक सबल और स्वस्थ नागरिक के उपार्जन के अधिकार को

मौलिक अधिकार के रूप में मानता है;

(3) रहन-सहन के न्यूनतम स्तर की गारण्टी तथा अधिकतम अर्थ की मर्यादा आवश्यक समझता है;

(4) विकेन्द्रित उत्पादन पद्धति को इन उद्देश्यों की सिद्धि का प्रमुख साधन मानता है; किन्तु

(5) आधारभूत, उत्पादक एवं प्रतिरक्षा की वस्तुओं के लिए केन्द्रित उत्पादन की पद्धति को अपवाद रूप में ग्रहण करता है।

भारत की वर्तमान अर्थव्यवस्था विश्रृंखलित है। वह न तो व्यक्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकती है और न समाज की प्रतिरक्षा सामर्थ्य की गारण्टी दे सकती है। उसका पुनर्गठन करना होगा।

राष्ट्र के साधनों को न्यूनतम काल में अधिकतम लाभ के लिए प्रयुक्त करने के लिए आर्थिक नियोजन की आवश्यकता है। किन्तु योजना साधन है, साध्य नहीं। उसका निर्माण राज्य की स्थायी निष्ठाओं की मर्यादाओं के अन्तर्गत ही करना होगा। जन-मन में योजना की सिद्धि की आकांक्षा जागृत करने के लिए उसे आदर्शवादी तथा जनता के संभव सामर्थ्य की कल्पना कर, यथार्थ की ठोस भूमिका पर वास्तविकतावादी बनाना होगा। भारत के धर्म के आधार पर, राष्ट्र को स्वावलम्बी बनाने का आह्वान करने वाली योजना निश्चित ही आशुफलदायी हो सकती है।

आर्थिक नीति का आधार—*अधिकतम उत्पादन, समानतर वितरण तथा संयमित उपभोग के आधार पर ही अर्थनीति सुव्यवस्थित रह सकती है। वितरण को उत्पादन और उपभोग के समीकरण का माध्यम मानकर चला जाए तो अर्थ-व्यवस्था में कभी असंतुलन नहीं आएगा।* उत्पादन के उपलब्ध साधनों का अधिकतम फलदायी संयोजन प्रत्येक देश और काल की परिस्थिति पर निर्भर करता है। भारत इस विषय में पाश्चात्य देशों का अनुकरण नहीं कर सकता। हमारे यहां जनशक्ति अधिक है। उसे भार न समझकर पूंजी समझना चाहिए और ऐसी उत्पादन प्रक्रिया विकसित करनी चाहिए जिसमें उसका अधिकतम उपयोग किया जा सके। निश्चित ही यह प्रक्रिया श्रम-प्रधान होगी।

सतर्कता के साथ सीमित विदेशी सहायता—देश के साधनों की कमी को कुछ अंशों में विदेशी पूंजी से पूरा किया जा सकता है। किन्तु विदेशी पूंजी मूलतः विदेशी उत्पादन पद्धति से सम्बद्ध रहती है। अतः उसके आयात से प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष राजनीतिक प्रभाव तथा देश पर आर्थिक भार तो बढ़ेगा ही, साथ ही देश की उत्पादन प्रक्रिया भी विदेशी ढांचे में ढल जाएगी। उत्पादन साधनों की भिन्न स्थिति होने के कारण वह ढांचा हमारे अनुकूल नहीं बैठेगा। हम विदेशी सहायता का उन सीमित क्षेत्रों में ही उपयोग कर सकते हैं, जहां विदेशी उत्पादन

प्रक्रिया अपरिहार्य दिखती हो।

आत्मस्फूर्त अर्थतन्त्र—कृषि, उद्योग, व्यापार और सेवायें—चारों का संतुलित विकास एक गतिशील अर्थव्यवस्था के लिए आवश्यक है। ये सब एक दूसरे के लिए पूरक हैं। इनका हम टुकड़ों में विचार नहीं कर सकते। वे एक दूसरे पर निर्भर हैं। कृषि के विकास के बिना उद्योगों का विकास संभव नहीं। उद्योगों के लिए कच्चा माल तथा तैयार माल का सबसे बड़ा बाजार कृषि-क्षेत्र से ही प्राप्त हो सकता है। बिना उद्योगों के अकेली कृषि, जनसंख्या का भार वहन नहीं कर सकती।

सघन खेती—भारत में कृषि उत्पादन की वृद्धि सघन खेती से ही सम्भव है। इसके लिए कृषक की सम्पूर्ण सामर्थ्य, श्रम और साधन खेती में जुटाने होंगे। किसान को खेत का मालिक बनाये बिना यह सम्भव नहीं। साथ ही खेत न तो इतने छोटे हों कि खेती अलाभकर हो जाए और न इतने बड़े कि सम्हल न पाये और सघन खेती न हो सके। अतः एक ओर जोत की अधिकतम मर्यादा तथा दूसरी ओर लाभकर जोत की व्यवस्था करनी चाहिए।

कृषि को अदेवमातृका बनाने के लिए सिंचाई की व्यवस्था हो। बड़े बांधों के स्थान पर छोटे बांध तथा कुएं व नलकूप आदि की पद्धति भारत के लिए उपयुक्त है। यांत्रिक खेती भारत की जनसंख्या तथा भूमि की व्यवस्था के बहुत अनुकूल नहीं है। अतः अच्छे हल और बैलों की व्यवस्था है। गोहत्या पर प्रतिबन्ध तथा गोवंश सुधार के प्रयत्न होने चाहिए। उर्वरक के स्थान पर खाद अधिक लाभप्रद होगी।

बड़े-बड़े खेत, उनका स्वामित्व तथा प्रबन्ध चाहे व्यक्तिगत हो अथवा सहकारी या सरकारी, प्रति एकड़ अधिकतम उत्पादन नहीं प्राप्त कर सकते। अतः एक कुटुम्ब के, मर्यादा में स्वामित्व की तथा उसके द्वारा खेती ही सर्वाधिक उपयुक्त व्यवस्था है। कृषि के साधनों की उपलब्धि तथा बिक्री के लिए सहकारी संस्थाएं उपयोगी रहेंगी।

ग्रामीण औद्योगीकरण—कृषि और उद्योगों का समन्वय करने के लिए गांवों में छोटे-छोटे यंत्रचालित उद्योगों को प्रारम्भ करना चाहिए। नगरों में उद्योगों के केन्द्रीकरण से अन्य समाज सेवाओं पर भारी व्यय होने के कारण, वे सामाजिक दृष्टि से अलाभकर होते हैं। साथ ही उनका कृषि के ऊपर कोई हितकारी परिणाम नहीं पड़ता।

पूंजी और श्रम की साझेदारी—छोटे यन्त्रचालित उद्योग ही देश के औद्योगीकरण का आधार हों। बड़े उद्योग आधारभूत तथा उत्पादक वस्तुओं के लिए स्थापित किये जाएं। आधारभूत उद्योग राज्य के स्वामित्व में तथा शेष, पूंजी और श्रम की साझेदारी में चलें।

श्रम की प्रतिष्ठा मानव-मूल्यों की प्रतिष्ठा है। श्रमिक को संगठन और सामूहिक रूप से पारिश्रमिक निश्चित कराने का अधिकार है। उसके हड़ताल के अधिकार को जनसंघ स्वीकार करता है, किन्तु उसका उपयोग अंतिम शस्त्र के रूप में ही करना चाहिए। इस अधिकार के उपयोग की आवश्यकता न पड़े, इस हेतु शासन को योग्य तन्त्र का निर्माण करना चाहिए।

मूल्य और वेतन—अर्थव्यवस्था के सुव्यवस्थित विकास के लिए सुनियोजित मूल्य-नीति का निर्धारण आवश्यक है। किन्तु उसके लिए भौतिक नियंत्रणों का उपयोग यथासंभव नहीं करना चाहिए। औद्योगिक तथा कच्चे माल के मूल्यों तथा मूल्यों और वेतन के बीच समस्तरता बनाये रखने के लिए शासन को आंशिक व्यापार का अवलम्बन तथा राष्ट्रीय वेतन-मण्डल की नियुक्ति करनी चाहिए।

मौद्रिक और वित्तीय नीतियां—मूल्यों का स्थिरीकरण, सबको काम की व्यवस्था, अधिकतम विनियोजन तथा समानतर वितरण ही मौद्रिक एवं वित्तीय नीतियों का आधार हो सकता है। निर्धारित न्यूनतम आय वाले व्यक्ति प्रत्यक्ष करों से मुक्त रहें तथा उनके व्यवहार में आने वाली वस्तुएं भी सामान्यतः कर मुक्त होनी चाहिए।

[1 जनवरी, 1961; लखनऊ, नवां सा०अ०]

61.13. मूल्य-चक्र

भारतीय कार्यसमिति देश में बढ़ते हुए मूल्य एवं अधिकाधिक बेरोजगारी के फलस्वरूप उत्पन्न स्थिति पर, जिसमें जनसामान्य के लिए जीवन-निर्वाह करना कठिनतर होता जा रहा है, चिन्ता व्यक्त करती है। जनसंघ का मत है कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत अपनायी गई आर्थिक नीतियां इस स्थिति के लिए कारणीभूत हैं। दुःख का विषय है कि तृतीय पंचवर्षीय योजना के निर्धारण में भी इन नीतियों के बदलने अथवा उक्त समस्याओं का प्रभावी रूप से समाधान करने का कोई विचार नहीं किया गया है। प्रत्युत् उसके आधार और प्रकार के आंकलन एवं उसके लिए साधनों के जुटाने के अनुमान से मूल्य-वृद्धि और जीवन-स्तर में गिरावट होना अवश्यंभावी है। इसका प्रमाण इस वर्ष केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा लगाए गए भारी करों और उनके फलस्वरूप बढ़ी हुई महंगाई से मिलता है। यदि अप्रत्यक्ष करों का भार इसी प्रकार बढ़ता गया तो लोगों के लिए जीवन दूभर हो जाएगा।

मूल्यों की अस्थिरता न केवल जन-जीवन के लिए कठिनाइयां उत्पन्न करती है, अपितु योजना के अनुमानों को बढ़ाकर उसकी सिद्धि में भी अकल्पित बाधाएं पैदा करेगी। महंगाई के कारण एक ओर मूल्य और मजदूरी में होड़ लग जाती है

तो दूसरी ओर स्थिर आय वाले व्यक्तियों का जीवन-स्तर नीचे गिरता चला जाता है। इसका परिणाम आर्थिक क्षेत्र में ही नहीं, सामाजिक तथा प्रशासनिक क्षेत्र में भी हानिकारक होता जा रहा है। यदि शीघ्र ही इस स्थिति को संभालने का प्रयत्न नहीं किया गया तो उसके गम्भीर परिणाम हो सकते हैं। कुछ लोग मूल्य वृद्धि को रोकने के लिए 'भौतिक नियन्त्रणों' का सुझाव दे रहे हैं। किन्तु जनसंघ का मत है कि उनसे मूल्य वृद्धि के रुकने के स्थान पर चोर-बाजार पैदा हो जाता है जिससे उपभोक्ता को तो वास्तविक लाभ नहीं होता बल्कि उत्पादक घाटे में रह जाता है। प्रशासनिक सेवाओं की वर्तमान अवस्था में उनको अच्छी तरह तथा न्यायपूर्वक लागू करना भी कठिन है। फलतः भ्रष्टाचार की वृद्धि और उससे मूल्यों की और अधिक बढ़ोतरी अवश्यंभावी है। भारतीय जनसंघ का मत है कि मूल्यों के स्थिरीकरण तथा रोजगारी-वृद्धि के लिए शासन को योजनाओं के आकार, विनियोग तथा प्राथमिकताओं में और अपनी मौद्रिक एवं वित्तीय नीतियों में मौलिक रूप से परिवर्तन करना होगा। अतः कार्यसमिति अपनी शाखाओं को आदेश देती है कि वे बढ़ते हुए अप्रत्यक्ष करों, बेरोजगारी एवं मूल्य वृद्धि के प्रश्नों पर लोकशिक्षण एवं लोकमत प्रदर्शन का कार्यक्रम हाथ में लें और शासन को उसकी अशुद्ध नीतियों का परित्याग कर योजना को तदनुरूप ढालने के लिए विवश करें।

[22 अप्रैल, 1961; पटना, के०का०स०]

62.02. 1962-63 के केन्द्रीय और प्रान्तीय बजट प्रस्ताव

चुनावों के उपरान्त केन्द्र एवं प्रान्तों में जो बजट प्रस्तुत किये गए हैं उनमें भारी पैमाने पर नये करों का प्रस्ताव किया गया है। केन्द्रीय बजट में 71 करोड़ रु० के तथा प्रदेशों के बजट में भी इतनी ही राशि के कर या तो लगा दिए गए हैं या आगामी मासों में लगाने की घोषणाएं की गई हैं। रेलवे का यात्री किराया और माल भाड़ा भी इस वर्ष बढ़ा दिया है जिससे लगभग 30 करोड़ रु० वार्षिक की आमदनी कूती गई है। सार्वजनिक उद्योगों से अधिकाधिक मुनाफा कमाने की नीयत के अन्तर्गत उनके उत्पादनों के दाम भी क्रमशः बढ़ाये जा रहे हैं। यह मूल्य किसी प्रतियोगिता के अधीन पण्य-व्यवस्था के आधार पर निश्चित नहीं किये जाते, अपितु शासन द्वारा मनमाने तौर पर तय कर दिये जाते हैं। उनमें क्रमशः कर का तत्व अधिकाधिक प्रवेश करता जा रहा है।

कराधान जांच आयोग—भारतीय जनसंघ का मत है कि कराधान की यह नीति जनहित एवं अर्थव्यवस्था के समुचित विकास, दोनों ही दृष्टि से गलत है। सुस्थिर मूल्यनीति का निर्धारण, जो कि योजना की सफलता तथा सामान्यजन के जीवन-स्तर को टिकाये रखने के लिए नितान्त आवश्यक है, शासन की मौद्रिक एवं वित्तीय

नीतियों का प्रमुख लक्ष्य होना चाहिए। किसी न किसी प्रकार से धन एकत्र करने की लालसा में शासन ने सन्तुलित आर्थिक विकास एवं योजना के लक्ष्यों को पूर्णतः भुला दिया है। नये करों से न तो विनियोजन को प्रेरणा मिलती है और न आर्थिक विषमताएं ही कम होती हैं। उत्पादन शुल्क एवं बिक्री-कर का (जो जीवन की आवश्यक वस्तुओं पर भी भारी मात्रा में लगाये जा रहे हैं) परिणाम मूल्यवृद्धि में हो रहा है। केन्द्र, प्रान्त और स्थानीय निकायों की कराधान नीति एवं आर्थिक योजनाओं के बीच कोई तालमेल नहीं बचा है। आवश्यकता है कि इस दुर्व्यवस्था को दूर किया जाए। प्रतिनिधि सभा का मत है कि एक कराधान जांच आयोग नियुक्त करके सम्पूर्ण कर-पद्धति को एक तर्कशुद्ध आधार पर खड़ा किया जाए।

भारतीय प्रतिनिधि सभा जनसंघ की सभी शाखाओं का आह्वान करती है कि वह नये दुर्वह करों, रेल किराये की वृद्धि तथा लगान में प्रस्तावित वृद्धि के विरोध में जनता के क्षोभ को संगठित रूप से प्रकट करें। शासन से हमारी मांग है कि वह अपनी कर-नीति पर पुनर्विचार करे तथा जनसामान्य पर बोझ डालने वाले करों में कमी करके जनता को राहत दे।

[24 मई, 1962; कोटा, भा०प्र०स०]

62.09. नये करों के विरुद्ध आन्दोलन

कार्यसमिति ने विभिन्न प्रदेश सरकारों द्वारा लगाए गए नये और प्रतिगामी करों के विरुद्ध विभिन्न प्रान्तीय घटकों द्वारा छेड़े गए आन्दोलनों के बारे में प्रतिवेदन सुनने के बाद, अपनी सहमति प्रकट की और निर्देश दिया कि इन प्रयत्नों को और तेज किया जाए और इस भारी एवं अनुचित बोझ के विरुद्ध जनता के विरोध को संगठित रूप से इस तरह बढ़ाया एवं चलाया जाए जिससे इस बोझ को वापस लेने को राज्य सरकारों को बाध्य किया जा सके।

जनसंघ का मत है कि वर्तमान परिस्थितियों में भूमि-कर बढ़ाए जाने को उचित नहीं ठहराया जा सकता। जिन व्यक्तियों की आय राष्ट्रीय स्तर, अर्थात् एक रुपये प्रतिदिन से भी कम है, और जिनकी आर्थिक स्थिति उनके जीवन-निर्वाह की दृष्टि से भी ठीक नहीं, ऐसे व्यक्तियों पर तो कर बढ़ाने का अर्थ उन्हें दाना-पानी से भी वंचित करना होगा। इन करों का परिणाम यह होगा कि कृषक, जिनके पास पहले से ही साधनों का अभाव है, इनसे और भी हीन हो जाएंगे जिससे कृषि के विकास में बाधा पैदा होगी। केन्द्र सरकार पहले ही गरीब किसानों पर 71 करोड़ रु० के करों का बोझ लाद चुकी है।

अतः, जनसंघ सुझाव देता है :

(i) पिछले पन्द्रह वर्ष से प्रशासनिक और विकास के क्षेत्रों में सार्वजनिक

कोष की जो भारी बर्बादी हो रही है इस अपव्यय को रोकने के लिए प्रभावी प्रयत्न लागू किये जाएं;

(ii) भ्रष्टाचार जो सर्वव्यापी, स्पष्ट और निरन्तर बढ़ता जा रहा है, खत्म किया जाए;

(iii) बकाया राशियां वसूल की जाएं और उनकी चोरी रोकी जाए।

[29 सितम्बर, 1962; राजमुंद्री, के०का०स०]

63.03. 1963-64 के मुद्रास्फीतिक बजट प्रस्ताव

भारतीय जनसंघ स्वीकार करता है कि देश की प्रतिरक्षा और विकास के लिए साधन जुटाने की आवश्यकता है। कार्यसमिति ऐसा महसूस करती है कि केन्द्रीय बजट में यद्यपि रक्षा के लिए अधिक धन की व्यवस्था की गई है जो उचित है तथापि इसमें इस बात का ध्यान नहीं रखा गया कि प्रस्तावित करों का देश के आर्थिक विकास पर क्या प्रभाव पड़ेगा। वित्तमंत्री ने यथासंभव साधन जुटाने की धुन में इस बात का तनिक भी ख़याल किये बिना कि इनका जनता और अर्थतंत्र पर क्या प्रभाव पड़ेगा, सब तरह के पग उठाए हैं। उचित तो यह था कि जनता से अधिक बोझ उठाने का आग्रह करने से पूर्व सरकार अपनी इस इच्छा के प्रमाण स्वयं प्रस्तुत करती कि वह लगातार बढ़ते अपने अपव्यय को रोकना चाहती है, राजस्व की छीज को बन्द करना चाहती है और भारी बकाया राशि को वसूल करने के लिए प्रभावशाली प्रयत्न कर रही है। वर्तमान कर-प्रस्ताव लागू करने की बात सोचने से पहले सरकार से अपेक्षा थी कि वह कम से कम इतना तो करती क्योंकि ऐसा किये बिना कर-भार से पहले से ही दबी जनता से अपनी पेटी और कसने का अनुरोध करने का कोई नैतिक औचित्य नहीं।

जिस तरह के अतिरिक्त कर लगाने का मंसूबा बांधा गया है, वह संतोषजनक नहीं। गरीब जनता की आवश्यकता की ऐसी वस्तुओं जैसे मिट्टी का तेल (जिस पर वर्तमान शुल्क में 16% की वृद्धि की जा रही है) साबुन और चाय पर भारी उत्पादन शुल्क लगाने और पोस्ट-कार्ड का मूल्य बढ़ाने के विचार से इसकी पुष्टि होती है।

अतिलाभ-कर को तो समिति खासतौर से अविवेकपूर्ण मानती है। इसका शेयरों पर निराशाजनक असर पड़ेगा, पूंजी-निर्माण में बाधा आएगी और हमारे औद्योगिक प्रयत्नों के लिए विदेशी औद्योगिक सहयोग जुटाने में ऐसे समय अड़चन पैदा होगी जब इसकी विशेष आवश्यकता है। वित्तमंत्री ने अपनी बुद्धिमत्ता का परिचय देने के लिए इसे कम्पनियों की उस आय से जोड़ने की बात कही है जो उनकी पूंजी और संरक्षित कोष के 6% से ज्यादा हो। चूंकि लाभ अकेले पूंजी की

देन नहीं अतः कर को आंकने का यह आधार अवैज्ञानिक और सैद्धान्तिक दृष्टि से गलत है। यह एक प्रकार से अयोग्यता को पुरस्कृत करना है। इससे लाभ को फिर से उद्योग में लगाने की प्रक्रिया में, जो पूंजी विनियोग का एक महत्वपूर्ण मार्ग है, बाधा उत्पन्न होगी। 6% की दर, जिसे लाभ की सामान्य दर माना गया है, मनमानी होने के अलावा अवास्तविक भी है, क्योंकि प्रीफ़ैन्स शेयरों की दर 9% और बैंक ब्याज दर 7% से भी आज अधिक है।

कार्यसमिति ऐसा अनुभव करती है कि बचत के सवाल को जनता की स्वैच्छिक और सहजबुद्धि पर छोड़ दिया जाना चाहिए, क्योंकि बाधित करने से, अतिरिक्त साधन प्राप्त होने के बजाय बचत को दूसरी दिशाओं में मोड़ा जाने लगेगा जिससे छोटे उद्योगों के लिए पूंजी का अकाल पड़ जाएगा। इसका किसानों, मजदूरों, व निम्न और मध्यम वर्गों पर भारी बोझ पड़ेगा। रहन-सहन का खर्च पहले से ही बहुत ज्यादा है। बंधी आय वाले सभी वर्गों के लोगों में असंतोष भड़केगा जिससे समाज विरोधी तत्व लाभ उठाना चाहेंगे। इसका परिणाम यह भी हो सकता है कि वेतन और मजदूरी बढ़ाने की मांग उठे। औचित्य होते हुए भी इस मांग से मूल्यों और खर्च का एक ऐसा दूषित चक्र तेज होगा जिससे हमारी योजना के लिए पहले ही खतरा पैदा हो चुका है।

इन तथा अन्य कर प्रस्तावों का मुद्रास्फीतिक प्रभाव पड़ेगा। ऐसे समय जब कि महंगाई से पीड़ित जनता को कुछ राहत देने की विशेष आवश्यकता है, वर्तमान कर प्रस्तावों का असर इसके सर्वथा प्रतिकूल होगा। अतः कार्यसमिति वित्तमंत्री से अनुरोध करती है कि इस सब बातों पर विचार करके सबसे पहले मितव्ययिता के साथ-साथ राजस्व की छीज को रोके। वे दूसरा काम यह करें कि कर (Tax) के सब प्रस्तावों को नये सिरे से तैयार करें जिससे सब पर इनका समान भार पड़े और देश की विकास संबंधी आवश्यकताओं पर कोई घातक प्रभाव न पड़ने पाये।

[6 अप्रैल, 1963; दिल्ली, के०का०स०]

63.16. चीनी आक्रमण के बाद आर्थिक नीतियों पर पुर्नविचार

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात शासन का ध्यान और शक्ति भारत के आर्थिक विकास पर ही केन्द्रित होने और उसके लिए पंचवर्षीय योजनाओं द्वारा निर्धारित नीति और कार्यक्रमों के अनुसार प्रयत्नशील होने के उपरान्त भी आज देश में न तो एक स्वचलित विकासोन्मुख अर्थव्यवस्था की नींव रखी जा सकी है, और (जन-सामान्य के जीवन-स्तर को ऊंचा उठाना तो दूर) न उसको टिकाये रखने और जीवन की न्यूनतम आवश्यकताओं को पूर्ण करने की व्यवस्था हो सकी है। राष्ट्र की प्रतिरक्षा की आवश्यकताओं का तो योजना के निर्माताओं ने कभी विचार ही नहीं

किया था, इसलिए इस दृष्टि से वर्तमान भारत की अर्थव्यवस्था असमर्थ हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। आज जनता के अनेक वर्गों में प्रति व्यक्ति आय गिरी है, और विषमताएं बढ़ी हैं। जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं तथा औद्योगिक उत्पादन की आधारभूत वस्तुओं, दोनों का भारी अभाव है। एक ओर बढ़ती हुई बेरोजगारी और दूसरी ओर तथ्यों की कमी, उत्पादन पर प्रतिकूल परिणाम डाल रही है। महंगाई आसमान को छूने का प्रयत्न कर रही है तथा करों का बोझा नागरिक को जमीन से मिला रहा है। विदेशी ऋण और निर्भरता अमर्यादित रूप से बढ़ते जा रहे हैं। सरकार का घाटा और मुद्रास्फीति एक दुष्चक्र में होड़ ले रहे हैं। सरकारी तंत्र का व्याप इतना बढ़ गया है कि उद्योगी व व्यापारी, किसान और मजदूर, विधि और नियमन की भुलभुलैयों से बाहर निकलकर, साहस और सन्तोष की सांस ही नहीं ले पाता। इस प्रकार बोझिल एवं जटिल अर्थव्यवस्था पर, पिछले वर्ष कम्युनिस्ट चीन के आक्रमण के बाद प्रतिरक्षा-व्यय की बढ़ती मांगों को पूरा करने के लिए जो बोझा डाला गया है, उससे तो सम्पूर्ण देश त्राहि-त्राहि कर उठा है। उसके कारण जो तनाव और खिंचाव अर्थव्यवस्था में पहले से मौजूद थे वे और भी गम्भीर हो गए हैं। आशंका होने लगी है कि कहीं यह आखिरी चोट सिद्ध न हो और एक बारगी सारा ढांचा चरमरा कर न बैठ जाए।

आवश्यकता है कि राष्ट्र की प्रतिरक्षा और विकास दोनों ही उद्देश्यों को सम्मुख रखकर शासन की आर्थिक नीतियों तथा योजना के आधारों और तंत्र का पुर्नविचार हो। इस दृष्टि से भारतीय जनसंघ का सुझाव है :

(1) सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र के मतवादी एवं किताबी भेद का परित्याग कर दिया जाए। औद्योगिक नीति सम्बन्धी प्रस्ताव की परिधि में देश के साहस को बांधना उचित नहीं। सरकारी और गैर-सरकारी स्तर के प्रयत्नों को एक दूसरे का पूरक समझकर राष्ट्रीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उनको योग्यतानुसार सेवा का अवसर दिया जाए।

(2) प्रतिरक्षा की अल्पकालीन आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए विदेशी सहायता, बिना किसी हिचकिचाहट के ली जाए तथा दूरगामी दृष्टि से सम्पूर्ण औद्योगिक क्षेत्र को पुनर्गठित किया जाए।

(3) मौद्रिक एवं वित्तीय नीतियों के निर्धारण में मुद्रा के मूल्य की स्थिरता तथा उत्पादन की अधिकतम वृद्धि प्रमुख लक्ष्य रखा जाए। सरकार को अपने खर्चों में भारी कटौती करनी चाहिए। इससे घाटे के बजट सन्तुलित होंगे तथा जनता के मनोबल पर अनुकूल परिणाम होगा।

(4) देश को खाद्यान्न की दृष्टि से आत्मनिर्भर बनाने के लिए युद्धस्तर पर प्रयत्न हों।

(5) विकेन्द्रित आधार पर छोटे उपभोक्ता उद्योगों का जाल बिछाया जाए जिससे युद्धकाल में नागरिक उपभोग की वस्तुएं सहज उपलब्ध हो सकें।

(6) मूल्यों को स्थिर रखने के लिए व्यवस्था की जाए। भौतिक नियंत्रण यथासम्भव काम में न लाए जाएं। सस्ते भावों की सरकारी दुकानें तथा निम्न-तम मूल्य पर सरकार द्वारा खरीद की व्यवस्था, उपभोक्ता और उत्पादक दोनों के लिए सहायक सिद्ध हो सकती हैं।

(7) राष्ट्र की एकीकृत वित्त-व्यवस्था की दृष्टि से एक कराधान आयोग नियुक्त किया जाए जो केन्द्र, प्रान्त और स्थानीय निकायों के बीच करों को समन्वित करे।

(8) एक स्थायी राष्ट्रीय वेतन मंडल बनाया जाए जो मूल्यों के हिसाब से मजदूरी का निर्धारण करे। श्रमिकों और कर्मचारियों में इस प्रश्न पर निश्चिन्तता रहनी चाहिए।

(9) पिछले करों के बकाया को वसूल करने तथा करों की चोरी रोकने के लिए प्रभावी पग उठाए जाएं।

(10) अनिवार्य बचत-योजना प्रतिगामी, दुर्वह तथा पेचीदा है। इसे समाप्त किया जाए।

(11) स्वर्ण-नियन्त्रण कानून अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में असफल रहा है। प्रत्युत उससे लाखों स्वर्णकार बेकार हुए हैं। उसे वापिस लिया जाए।

[12 अगस्त, 1963; दिल्ली, भा०प्र०स०]

63.21. चीनी आक्रमण के बाद आर्थिक स्थिति

भारतीय जनसंघ देश की अर्थव्यवस्था पर चिन्ता व्यक्त करता है। पिछले वर्ष कम्युनिस्ट चीन द्वारा भारी आक्रमण के उपरान्त यह अनुभव किया गया था कि देश की विकास योजनाओं के कार्यान्वयन के साथ-साथ प्रतिरक्षा के लिए भी अतिरिक्त प्रयत्न करने होंगे। इन दोनों उद्देश्यों की पूर्ति के हेतु जनता पर भारी बोझा डालने के उपरान्त भी इन दिशाओं में अभी तक जो उपलब्धि हुई है वह अत्यन्त निराशा-जनक है। कृषि और औद्योगिक उत्पादन के निर्धारित लक्ष्य में भारी कमी रही है। पिछले दस वर्षों से बराबर बढ़ती हुई महंगाई को रोकने के स्थान पर शासन की हाल की नीतियों ने इसे अभूतपूर्व रूप से और बढ़ा दिया है। यह और भी खेद का विषय है कि विभिन्न सरकारें इस मूल्य-वृद्धि को रोकने के लिए प्रभावी पग उठाने के स्थान पर केवल मूक दर्शक मात्र रही हैं और यदि कहीं कुछ पग, जिनके अन्तर्गत एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में वस्तुओं के आने-जाने पर रोक लगाई गई है, उठाये भी गये हैं तो उनसे एक ओर वस्तुओं के कृत्रिम अभाव में वृद्धि हुई है और दूसरी ओर

कृषक को उचित मूल्यों से वंचित होना पड़ा है।

जीवनयापन का खर्चा ऐसी तेजी से बढ़ रहा है कि अधिक मजदूरी की मांग स्वाभाविक है। पिछले दस वर्षों में बढ़ते हुए मूल्य, अधिक मजदूरी और उत्पादन मूल्य में वृद्धि व फिर बढ़े हुए मूल्य यह दुष्चक्र रहा है। इससे न तो विकास को सहायता मिली है और न जनसाधारण का जीवन-स्तर ऊंचा उठा है। भारतीय जनसंघ बराबर मांग करता रहा है कि मूल्यों को स्थिर किया जाए क्योंकि बिना इसके विकास सम्भव नहीं है। आज प्रतिरक्षा की आवश्यकता की पृष्ठभूमि में तो यह स्थिरता और भी आवश्यक हो गई है।

बेरोजगारी की स्थिति में भी कोई सुधार नहीं हुआ है। तीसरी पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत जो नये कामों के अवसर निर्माण हुए हैं वह अपेक्षा से बहुत कम हैं। पढ़े-लिखे लोगों में बेरोजगारी तो बहुत ही चिन्ताजनक अवस्था तक पहुंचती चली जा रही है।

पूंजी-बाजार भी संकुचित होता जा रहा है। आपात्कालीन स्थिति की घोषणा तथा सरकार की वित्तीय और मौद्रिक नीतियां इस मन्दी के लिए जिम्मेदार हैं। वित्तमंत्री द्वारा कुछ वस्तुओं पर से नियन्त्रण उठाने एवं नये उद्योगों की स्थापना सम्बन्धी नियमों में ढिलाई करने की घोषणा सही दिशा में एक कदम है, किन्तु बैंकों तथा गल्ले एवं अन्य आवश्यक वस्तुओं के व्यापार के राष्ट्रीयकरण की जो बराबर चर्चा की जा रही है, उससे अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल परिणाम होंगे। केवल उन लोगों को छोड़कर जो कट्टर समाजवाद के किताबी कार्यक्रम को क्रियान्वित करना चाहते हैं ऐसा कोई भी व्यक्ति जिसमें व्यावहारिक बुद्धि हो इन मांगों का समर्थन नहीं करेगा। राष्ट्रीयकरण से देश में नयी पूंजी पैदा नहीं होगी। जहां बैंक-व्यवस्था का अधिक विकास नहीं हुआ हो और, या तो बचत होती ही न हो अथवा बचत पूंजी के रूप में न लग पाती हो वहां राष्ट्रीयकरण और भी घातक होगा। पहले से ही बैंक और साख के कुछ निकाय सरकार के नियन्त्रण में विद्यमान हैं। ऐसी परिस्थिति में राष्ट्रीयकरण का एक ही अर्थ है कि सरकार का एकाधिपत्य प्रतिष्ठापित कर दिया जाए। भारतीय जनसंघ इसका विरोधी है।

उत्पादन में कमी, ऊंचे अप्रत्यक्ष कर, अधिक मुद्रा और बढ़ता हुआ सरकारी खर्चा आज की आर्थिक दुर्व्यवस्था की जड़ में हैं।

तीसरी योजना का मध्यावधि मूल्यांकन—भारतीय जनसंघ अपनी पुरानी मांग को दोहराता है कि सरकारी नीतियों का पुनर्निरीक्षण किया जाए और तीसरी पंचवर्षीय योजना का पुनर्निर्धारण हो। यह आश्चर्य का विषय है कि योजना आयोग ने अपने मध्यावधि प्रतिवेदन में तीसरी पंचवर्षीय योजना के वित्तीय लक्ष्य को घटाने के स्थान पर उसे 7,500 करोड़ रु० से बढ़ाकर 8,000 करोड़ रु० तक कर दिया है। हम यह चेतावनी देना अपना कर्तव्य समझते हैं कि इससे

अर्थव्यवस्था में वे दबाव और तनाव जो पहले ही गम्भीर स्वरूप धारण कर चुके हैं और अधिक बढ़ जाएंगे ।

भारतीय जनसंघ का सुझाव है कि :

(i) सार्वजनिक और निजी क्षेत्र का सैद्धान्तिक मतभेद भुलाकर जो लक्ष्य सार्वजनिक क्षेत्र पूरे नहीं कर पाया उनको पूरा करने की जिम्मेदारी निजी क्षेत्र पर डाली जाए ।

(ii) कृषि उत्पादन को बढ़ाने के लिए युद्ध-स्तर पर प्रयत्न किया जाए । सिचाई की जो व्यवस्था हुई है उसका पूरा उपयोग किया जाए और छोटी और मंझली योजनाओं के लिए अधिक साधन जुटाए जाएं ।

(iii) योजना की प्राथमिकताओं में परिवर्तन किया जाए जिससे आवश्यक उपभोक्ता वस्तुओं की उपलब्धि में अभाव शीघ्र दूर किया जा सके ।

(iv) मौद्रिक, वित्तीय, आयात और औद्योगिक नीतियों का इस प्रकार से निर्धारण हो कि छोटे यान्त्रिक उद्योगों का अधिकाधिक विकास हो सके । सहयोगी समितियों का निर्माण नये विकास के लिए पूर्व-शर्त के रूप में न रखा जाए ।

(v) निश्चित एवं कम आय के व्यक्तियों को आवश्यक वस्तुएं उपलब्ध कराने की दृष्टि से सरकार सस्ते मूल्यों की दुकानें खोले, किन्तु एकाधिकारपूर्ण भौतिक नियन्त्रणों का प्रयोग नहीं किया जाए ।

(vi) सरकारी खर्च घटाने के लिए प्रभावी पग उठाए जाएं । मितव्ययिता सम्बन्धी विभिन्न सुझावों को यदि व्यवहार में लाया गया तो कम से कम 400 करोड़ रु० प्रति वर्ष बचाया जा सकता है । आज की परिस्थिति में योजना के वित्तीय लक्ष्य नहीं बढ़ाने चाहिए ।

(vii) एक आयोग नियुक्त करना चाहिए जो वर्तमान कराधान एवं उसके कारण उत्पादन और मूल्यों के ऊपर होने वाले प्रभावों की जांच करे और एक ऐसी समन्वित कर-व्यवस्था का सुझाव दे जिससे विकास के लिए साधन उपलब्ध हो सकें और सामान्य जन को कुछ राहत मिल सके ।

(viii) एक स्थायी वेतन मण्डल की नियुक्ति की जाए जो जीवन-निर्वाह के निदेशकांक का पुनः मूल्यांकन और तदनुसार वेतन और मजदूरी के सिद्धान्तों का निर्धारण करता रहे ।

[30 दिसम्बर, 1963; अहमदाबाद, ग्याहरवां सा०अ०]

63.28. गुजरात में गैस के मूल्य

उद्योग तथा सामान्य उपभोक्ता को ठीक मूल्यों पर तेल और गैस दिये जाने की व्यवस्था का विषय राष्ट्रीय महत्व का है । यह कार्य तेल और प्राकृतिक गैस आयोग को सौंपा गया है ।

गुजरात, आसाम तथा हिमाचल प्रदेश में तेल और गैस के अच्छे स्रोत मिले हैं । तेल व प्राकृतिक आयोग ने आसाम में तो नाहरकोटिया गैस का मूल्य 8·83 रु० प्रति 1,000 घन मीटर निश्चित किया है परन्तु गुजरात में धुवारन गैस का मूल्य राज्य की बिजली कम्पनी के लिए 80 रु०, उर्वरक कारखानों के लिए 90 रु० तथा निजी उद्योगों के लिए 100 रु० प्रति 1,000 घन मीटर निश्चित किया है । गुजरात में पन-बिजली तथा कोयले की खानें न होने के कारण उपभोक्ता और उद्योग दोनों को एक ओर तो अधिक कीमतें देनी पड़ती हैं और दूसरी ओर यातायात की रुकवाटों की कठिनाई सहन करनी पड़ती है । जनसंघ समझता है कि एक ही देश के दो राज्यों में मूल्यों का ऐसा स्पष्ट अन्तर बहुत अनुचित और बेमेल है तथा इससे यह प्रकट होता है कि मूल्य-निर्धारण के सहारे सरकारी उद्योग भारी मुनाफाखोरी कर रहे हैं । जनसंघ का मत है कि आपस में प्रदेशों के बीच तथा सरकारी और गैर-सरकारी उद्योगों के मध्य किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाना चाहिए । मूल्य का निर्धारण या तो उत्पादन के मूल्य के अनुपात में और या कोयले की कीमत के आधार पर किया जाना चाहिए । महंगे भाव के कारण औद्योगिक विस्तार तथा उत्पादन वृद्धि में भी रुकावट पैदा होगी ।

जनसंघ गैस के ठीक भाव-निर्धारण के प्रश्न पर गुजरात की जनता के साथ है तथा उसे विश्वास दिलाता है कि इस सवाल पर हर सम्भव सहयोग देगा । साथ ही तेल व प्राकृतिक गैस आयोग की मूल्य-निर्धारण की अनुचित नीति की भी वह भर्त्सना करता है ।

[30 दिसम्बर, 1963; अहमदाबाद, ग्यारहवां सा०अ०]

64.07. भारी मूल्य-वृद्धि

कीमतों में अचानक और भारी वृद्धि एवं इससे सामान्य जन को होने वाली कठिनाई के प्रति भारतीय प्रतिनिधि सभा गंभीर चिन्ता प्रकट करती है । वस्तुतः जो स्थिति उत्पन्न हुई वह आकस्मिक नहीं, सरकार ने जैसी आर्थिक नीतियां अपनाईं और जैसी योजना बनाई, यह उनका स्वाभाविक परिणाम है । ऐसा भी नहीं कि सरकार को इसकी पूर्व चेतावनी न दी गई हो । लेकिन, इन चेतावनियों की निरन्तर उपेक्षा की गई । फिर संकट का सामना करने और जनता को राहत पहुंचाने के लिए भी कोई उपयुक्त व्यवस्था नहीं की गई । आज भी, जब समूचा राष्ट्र इस संकट की चपेट में आ गया है, खाद्यान्न के बारे में कोई सुविचारित एवं सुसंगठित राष्ट्रीय नीति नहीं अपनाई जा रही । केन्द्र और प्रदेशों की सरकारों के नेता जैसे परस्पर-विरोधी वक्तव्य जारी करते हैं और विभिन्न स्वार्थों के दबाव

में नीतियों में बार-बार जिस तरह के परिवर्तन किये जाते हैं उससे स्थिति और ज्यादा बिगड़ती है ।

मूल्यों में आम वृद्धि के दो मुख्य कारण हैं : (i) सरकार के भारी अनुत्पादक खर्च को पूरा करने के लिए बड़े पैमाने पर घाटे की वित्त-व्यवस्था का सहारा लेना, और (ii) योजना में गलत प्राथमिकताओं के कारण उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन गिर जाना। खाद्यान्नों के अभाव का कारण यह रहा कि एक ओर तो दो साल से लगातार फसल असफल हुई और दूसरी ओर अविचारित क्षेत्रीय योजना के साथ-साथ खाद्य व्यापार के राष्ट्रीयकरण की धमकी से अनाज व्यापार की सामान्य व्यवस्था अस्तव्यस्त हो गई। अभाव की स्थिति इसलिए और उग्र हो गई क्योंकि प्रांतों के कुछ नेताओं और मंत्रियों तक ने अनुत्तरदायित्वपूर्ण भाषण दिये। इन भाषणों की ध्वनि ऐसी थी मानो जनता को लूटपाट करने को उकसाया जा रहा हो। उचित मूल्य की सरकारी दुकानों में खाद्यान्नों की कमी और भ्रष्टाचार से भी हालत बिगड़ी। इससे उपभोक्ता की मुसीबत बढ़ी किन्तु किसान और छोटे व्यापारी को भी कोई लाभ नहीं हुआ। बड़े थोक व्यापारियों ने, या चोरी-छिपे एक स्थान से दूसरे स्थान पर अनाज पहुंचाने वाले तस्कर व्यापारियों ने ही, स्थिति से अनुचित लाभ उठाया। यह नितान्त आश्चर्य की बात है कि जो सरकार दिन-रात व्यापारियों को कोसती रहती है, वह व्यापारी समाज के इन पथभ्रष्ट तत्वों के खिलाफ कदम उठाने में क्यों असमर्थ है ?

स्थिति इतनी बिगड़ गई है कि यदि तत्काल सही और प्रभावशाली कदम नहीं उठाए गए तो देश की आर्थिक एवं राजनीतिक हालत नितान्त खतरनाक हो जाएगी। जनसंघ इसके लिए निम्न उपाय सुझाता है :

(i) खाद्यान्न व्यापार का राष्ट्रीयकरण करने और इस तरह उसे सरकार के एकाधिकार में लेने की धमकियां देना बन्द किया जाए। इसके बजाय सरकार आंशिक व्यापारी के रूप में आये और खाद्यान्नों को खुले बाजारों में खरीदने एवं बेचने की उपयुक्त व्यवस्था करे।

(ii) प्रत्येक ग्रामसभा के लिए या प्रति 1,000 की आबादी के लिए उचित मूल्य पर अनाज देने की एक दुकान खोली जाए। इन दुकानों को चलाने का दायित्व छोटे खुदरा विक्रेता को सौंपा जाए।

(iii) सरकार ऐसी पक्की व्यवस्था करे जिससे 300 रु० तक मासिक आय-वर्ग के परिवार, अलाभकर जोत वाले किसान और भूमिहीन खेतिहर मजदूरों को इन दुकानों से पर्याप्त और निश्चित मात्रा में अनाज मिलता रहे।

(iv) सरकारी कर्मचारियों और संगठित उद्योग के कर्मचारियों का महंगाई भत्ता बढ़ाने के बजाय ऐसी व्यवस्था की जाए जिससे उन्हें उपभोक्ता सामान सस्ते भाव पर मिले और कीमतों का चढ़ना रुक जाए।

(v) उपर्युक्त कदमों के साथ-साथ खाद्यान्नों की क्षेत्रीय योजना को तत्काल समाप्त किया जाए जिससे सामान्य व्यापार के मार्ग की कृत्रिम बाधाएं दूर हों और उत्पादक को अपनी फसल का प्रोत्साहक मूल्य मिले।

(vi) खाद्य पदार्थों पर से चुंगी और बिक्री-कर की वसूली समाप्त की जाए।

(vii) अनाज का उत्पादन बढ़ाने के लिए किसानों को सब तरह की सहायता दी जाए और इस सहायता की मात्रा उत्पादन के आधार पर निश्चित की जाए। इस दृष्टि से लाभप्रद यह होगा कि सरकार स्वयं किसानों से अगाऊ सौदे करे।

(viii) अगली फसल के लिए बीज देने का तत्काल प्रबन्ध किया जाए।

भारतीय जनसंघ की विभिन्न प्रांतीय शाखाओं ने इस समस्या की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित करने और जनता के लिए राहत दिलाने के उद्देश्य से आन्दोलन किये। प्रतिनिधि सभा प्रांतीय शाखाओं के इन सफल प्रयत्नों का स्वागत करती है और फैसला करती है कि आन्दोलन फैलाया और तेज किया जाए जिससे सरकार को गलत नीतियां त्यागने और कीमतों को स्थिर रखने के लिए कदम उठाने को बाध्य किया जा सके।

वर्तमान विस्फोटक स्थिति में कुछ स्थानों पर लूटपाट की जो घटनाएं हुई जनसंघ उनकी निन्दा करता है। ऐसी घटनाओं से स्थिति सुधरने के बजाय और बिगड़ेगी।

[10 अगस्त, 1964; ग्वालियर, भा०प्र०स०]

64.12. मुद्रास्फीति—कारण और उपचार

पिछले कई वर्षों से कीमतें बढ़ रही थीं, लेकिन हाल के महीनों में उनमें असाधारण वृद्धि हुई, खास कर खाद्यान्नों के भाव तो बड़ी तेजी से चढ़े। इससे सामान्य जनता को बेहद परेशानी हुई है। कीमतों को रोकने और निचले तथा आम वर्ग के लोगों पर इसके प्रभाव को खत्म करने के बजाय सरकार ने जो नीतियां अपनाईं उनके परिणामस्वरूप आर्थिक स्थिति और बिगड़ी तथा शांति और व्यवस्था की हालत विस्फोटक हो गई। अभाव और असंतोष बराबर बढ़ रहा है। कई स्थानों पर अवांछित, अप्रत्याशित एवं दुःखद घटनाएं हुई। इस स्थिति को जारी रहने देना खतरनाक होगा। स्थिति को सुधारने के लिए तत्काल प्रभावशाली कदम उठाए जाने चाहिए।

स्पष्ट है कि सरकार की गलत योजनाएं और उसकी विवेकशून्य वित्तीय एवं मौद्रिक नीतियां ही इसके लिए जिम्मेदार हैं। सरकार ने आवश्यक वस्तुओं,

खास कर खाद्यान्नों के उत्पादन को प्राथमिकता नहीं दी। विशाल पूंजीगत परियोजनाओं पर अधिक ध्यान दिया गया, जिनका फल काफी देर बाद उपलब्ध होता है। सरकार के अनुत्पादक खर्चों में भी भारी वृद्धि हुई। नतीजा यह हुआ कि एक ओर जहां उत्पादन कम होने के कारण अभाव बढ़ा वहां दूसरी ओर मुद्रास्फीति के कारण रुपये का मूल्य गिरा। राष्ट्रीयकरण के और विभिन्न प्रकार के अंकुश लगाने के सैद्धान्तिक नारे (जिन्हें क्रियान्वित करने में सरकार असमर्थ है) व्यापारी, उत्पादक और उपभोक्ता की मनःस्थिति से मेल नहीं खाते। इनसे तो हालत और बिगड़ी है। यह दुःख का विषय है कि स्थिति इतनी गंभीर होने के बावजूद, समस्याओं का यथार्थवादी, विशद् राष्ट्रीय और उत्तरदायित्वपूर्ण आंकलन लेकर उस पर आधारित कोई निश्चित नीति तैयार करने और उसे क्रियान्वित करने को सरकार प्रस्तुत न हो सकी। समस्या के प्रति उसका दृष्टिकोण विवेकशून्य, असंतुलित और कठमुल्लापन से भरा है। जनता के कल्याण, राष्ट्र की एकता और राजनीतिक स्थिरता से जुआ खेलना तो नितान्त निन्दनीय है।

आर्थिक विकास और जनकल्याण का तकाजा है कि देश की मूल्य नीति उत्पादनपरक हो। उत्पादन बढ़ाए बिना सिर्फ प्रशासनिक एवं भौतिक अंकुशों से ही मूल्यों में स्थिरता लाना संभव नहीं। सरकार ने आने वाली फसल के लिए जो मूल्य निर्धारित किये हैं वे किसान के लिए लाभकर नहीं। उनका उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।

जनसंघ का सुझाव है कि:

(1) सब खाद्य क्षेत्र समाप्त किये जाएं। यह क्षेत्रीय बंटवारा राष्ट्रीय एकता के विरुद्ध है; इन क्षेत्रों के कारण सामान्य व्यापार स्रोतों में जो बाधाएं आयीं उनसे कीमतें घटने के बजाय और बढ़ी हैं।

(2) खाद्यान्न व्यापार पर एकाधिकार जमाने या उसका राष्ट्रीयकरण करने का विचार त्याग दिया जाए। सरकारी खाद्य निगम व्यापार के मैदान में प्रतिद्वन्द्वी के रूप में आये।

(3) कम और बंधी आय वाले लोगों को उचित मूल्य की दुकानों से जीवन की सभी आवश्यक वस्तुएं उपलब्ध कराने की सरकार व्यवस्था करे। उनकी आय और उत्पादन बढ़ाने के उद्देश्य से आयोजन, कराधान और मुद्रा संबंधी नीतियों का नवीकरण किया जाए।

देश एक महान आर्थिक संकट से गुजर रहा है। जनता और सरकार को मिलकर इस संकट को टालने का जोरदार प्रयत्न करना चाहिए। उत्पादन, वितरण व उपभोक्ता सबका व्यवहार आदर्श होना चाहिए—उत्पादन अधिक से अधिक करने, वितरक (अपने लिए अधिक से अधिक लाभ बटोरने के बजाय) उपभोक्ता के प्रति अपने दायित्व का निर्वाह करने, और उपभोक्ता उपभोग में

संयम रखने का प्रयत्न करें। सरकार और जनता को उन तत्वों से सावधान रहना चाहिए जो देश में अराजकता फैलाने को उत्सुक हैं और अपने आसुरी इरादों को बढ़ावा देने तथा विदेशी ताकतों के षड़यन्त्रों को सफल बनाने के लिए वर्तमान स्थिति से लाभ उठाना चाहते हैं।

[4 दिसम्बर, 1964; पटना, के०का०स०]

65.03. आर्थिक नीति : कुछ सुझाव

पिछले बारह वर्षों से भारत की अर्थव्यवस्था की गति और दिशा का निर्णय और नियमन नियोजन के आधीन होता रहा है। उसके जो परिणाम निकले हैं, वे किसी भी प्रकार समाधानकारक नहीं कहे जा सकते। जन-जीवन की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं को पूरा करना तो दूर वे नियोजकों के उद्देश्य और लक्ष्यों को भी सिद्ध नहीं कर पाये हैं। उन्होंने समस्याएं पैदा की हैं, उनसे जनता के कष्ट बढ़े हैं और अर्थव्यवस्था में ऐसे गम्भीर तनाव पैदा हो गए हैं कि यदि शीघ्र ही उपाय योजना नहीं की गई तो देश के लिए भयकारी स्थिति उत्पन्न हो सकती है।

मूल्य, बेरोजगारी, कर-भार, जीवन-निर्वाह की वस्तुओं का अभाव और विदेशों पर निर्भरता में असाधारण रूप से वृद्धि हुई है। आय और सम्पत्ति की विषमताएं कम नहीं हुई हैं। राष्ट्रीय आय और उत्पादन में वृद्धि अपेक्षा से बहुत पीछे है। स्पष्ट है कि सम्पूर्ण स्थिति का विचार कर नियोजन और आर्थिक नीतियों का पुनर्निर्धारण करना होगा। वर्तमान विषम स्थिति के लिए केवल क्रियान्वयन की कमी ही नहीं शासन की नीतियां भी दोषी हैं। यह आश्चर्य और खेद का विषय है कि शासन और योजना आयोग इन नीतियों की अयथार्थता एवं अशुद्धता को न समझकर उन्हीं पर और अधिक बल देकर चलने का आग्रह कर रहे हैं। भारतीय जनसंघ उसके द्वारा पहले दी गई चेतावनी को, जो सत्य सिद्ध हुई है, दुहराता है कि देश की आर्थिक नीतियों में यदि आमूलाग्र परिवर्तन नहीं किया तो हम आने वाले घातक दुष्परिणाम से नहीं बच सकेंगे।

आधारभूत नीतियां और लक्ष्य—चतुर्थ पंचवर्षीय योजना की जो रूपरेखा प्रस्तुत की गई है उसमें पिछली गलत नीतियों को सुधारने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया। 22,500 करोड़ रु० के अत्यन्त महत्वाकांक्षी वित्तीय लक्ष्य रखे गए हैं जो कि पिछली तीन योजनाओं में किये गए कुल खर्चे से भी अधिक हैं। सार्वजनिक क्षेत्र के अनावश्यक एवं अवांछित विस्तार की कल्पना कर उसके अन्तर्गत 15,000 करोड़ रु० के व्यय का अनुमान लगाया गया है। साधन जुटाने के लिए 3,000 करोड़ रु० के नये करों, सार्वजनिक उद्योगों के मूल्य बढ़ाकर उनसे कम से कम 12% का लाभ लेने तथा 3,000 करोड़ रु० से अधिक के विदेशी ऋणों का विचार

किया गया है। यद्यपि घाटे की अर्थव्यवस्था न करने का संकल्प दुहराया गया है, फिर भी जो स्वरूप रखा गया है और जिस प्रकार यथार्थ का विचार न करके मनमाने अनुमान रखे गए हैं उनमें यह संकल्प टिक नहीं सकेगा। फलतः मूल्य-वृद्धि अनिवार्य है। उसे रोकने के लिए भौतिक नियंत्रणों का तथा उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन और वितरण में सरकार के प्रवेश का सुझाव रखा गया है जिसके परिणामस्वरूप भ्रष्टाचार और काला बाजार बढ़ेगा। सम्पूर्ण योजना पहले की भांति पूंजी-प्रधान है। कृषि के कार्यक्रमों में भी गांव के साधनों का विकास और उपयोग करने का विचार न करके नयी पूंजी-प्रधान पद्धतियों का ही विचार किया गया है।

नियोजन की यही दिशा और स्वरूप चलता रहा तो आर्थिक दुर्व्यवस्था के साथ-साथ हमारे प्रजातंत्रीय एवं राष्ट्रीय जीवन-मूल्यों पर भी अत्यन्त प्रतिकूल परिणाम पड़ेगा। योजना आयोग और शासन जिस नीति को लेकर चल रहे हैं उसमें वे नियोजन की मर्यादाओं को भूल गए हैं। उनकी निगाह में योजना साधन नहीं साध्य बन गई है। निश्चित है कि देश कुछ लोगों की धुन को पूरा करने के लिए अपनी स्वतंत्रता, प्रजातंत्रीय पद्धति, जीवन की सुख और सुविधाओं की बलि नहीं दे सकता। नियोजन का वर्तमान प्रयोग काफी महंगा पड़ा है। तीन योजनाओं की लम्बी अवधि का अवसर इस प्रयोग के लिए दिया जा चुका है। अब और अधिक अवसर नहीं दिया जा सकता।

उच्चाधिकार प्राप्त आर्थिक आयोग की नियुक्ति—योजना आयोग अपने विचारों में इतना मग्न है कि वह अपनी गलतियों की ओर नहीं देख सकता और न साहसपूर्ण परिवर्तन की दिशा में पग उठा सकता है। जनसंघ का मत है कि एक उच्चस्तरीय आर्थिक आयोग नियुक्त किया जाए जो पिछले पन्द्रह वर्षों की आर्थिक स्थिति तथा उसकी दुरावस्था के कारणों की जांच करे।

आत्मनिर्भर व आत्मस्फूर्त—भारतीय जनसंघ नियोजन के विरुद्ध नहीं है। यह भी निर्विवाद है कि देश की आवश्यकताओं को देखते हुए आर्थिक क्षेत्र में काफी महत्वाकांक्षी और भारी प्रयास करने पड़ेंगे। किन्तु जो योजनाएं बनी और बनाई जा रही हैं उनमें देश के प्रयत्न और पुरुषार्थ को, पूंजी और परिश्रम को अवसर नहीं मिलता। वे न तो यथार्थ पर आधारित हैं और न समाज में कर्म की प्रेरणा ही पैदा कर पाती है। योजना की विनियोजन और व्यूह-नीति में आमूलचूल परिवर्तन करना पड़ेगा जिससे वह अर्थव्यवस्था में उत्पन्न असन्तुलनों को समाप्त कर स्वावलम्बन के आधार पर एक आत्मनिर्भर व आत्मस्फूर्त अर्थतंत्र की नींव रख सके। इस दृष्टि से भारतीय जनसंघ का सुझाव है :—

(1) पांच वर्ष की कालावधि के लिए योजना बनाने की पद्धति बन्द कर दी जाए। यह काल-विभाजन कृत्रिम है। इसके आधार पर बनी हुई योजना आंकड़ों के साथ, जो स्वयं अपूर्ण और अधूरे अनुमान मात्र हैं, खिलवाड़ व भविष्य के लिए सदिच्छा की अभिव्यक्ति मात्र है। आवश्यकता है आधारभूत नीतियों का निर्धारण कर, उसके अन्तर्गत क्रमानुसार व्यावहारिक कार्यक्रम लेकर परिकल्पनाओं का विचार किया जाए।

(2) केवल कार्यक्रमों को नहीं उद्देश्यों की भी प्राथमिकताएं निश्चित करनी चाहिएं। प्रतिरक्षा की आवश्यकताओं के आधीन, पूर्ण रोजगार तथा जीवन की आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति ही हमारे प्राथमिक उद्देश्य होने चाहिएं।

(3) योजना की विनियोजन नीति श्रम-प्रधान तथा स्वदेशी पर आधारित होनी चाहिए। उत्पादकता की वृद्धि का लक्ष्य अवश्य रखना चाहिए किन्तु वह आयात प्रधान न हो।

(4) कृषि और विकेन्द्रित उद्योगों के विकास को प्राथमिकता दी जाए। उनके लिए पोषक एवं आवश्यक आधारभूत उद्योगों की ओर शासन ध्यान दे।

(5) समाजवाद के नाम पर सरकारी क्षेत्र के विकास की नीति छोड़ी जाए। यह नीति सिद्धान्ततः गलत है तथा व्यवहार में हानिकारक सिद्ध हुई है। वर्तमान में सार्वजनिक क्षेत्र के दृढीकरण तथा उसकी कार्यपटुता को सुधारने का प्रयत्न करना चाहिए।

(6) कृषि के विकास के लिए गांवों के साधनों को बढ़ाना चाहिए। गांव में छोटे उद्योग और कृषि का मेल बिठाकर ग्राम-प्रधान कृष्यौद्योगिक अर्थव्यवस्था का विकास करना चाहिए।

(7) कर-भार बढ़ाने का विचार त्यागकर यह बोझा हलका करना चाहिए। आज की कर-नीति बेढंगी, अव्यवस्थित तथा दुर्बल है। विभिन्न-शासनिक इकाइयों के बीच कर-स्रोतों का बंटवारा उनके दायित्व के साथ बेमेल है। इसका पुनर्निर्धारण करना चाहिए।

(8) महंगाई, खाद्याभाव, विदेशी मुद्रा आदि की समस्याएं समय-समय पर उग्र रूप धारण कर लेती हैं। ऐसे अवसर पर शासन तात्कालिक एवं एकांगी उपायों का अवलम्बन कर उनके समाधान का प्रयास करता है। किन्तु रोग के कारण बने रहने के कारण, लक्ष्यों के उपचार से कोई स्थायी लाभ नहीं होता। पिछले आठ महीनों से महंगाई और खाद्यान्न की समस्या दिन-प्रति-दिन बिगड़ती जा रही है। सरकार ने नियंत्रण, खाद्यान्न व्यापार का राष्ट्रीयकरण तथा विभिन्न प्रकार के प्रतिबन्धक आदेशों का सहारा लेकर समस्या के समाधान का प्रयत्न किया है, किन्तु उसका कोई लाभ नहीं हुआ। उलटे स्थिति और बिगड़ी है। भारतीय जनसंघ इस सम्बन्ध में अपनी पुरानी मांग को दोहराता है कि :—

(i) खाद्यान्न के क्षेत्र अविलम्ब समाप्त किये जाएं।

(ii) बड़े शहरों में जहां राशन प्रथा लागू है, वहां कुछ मात्रा में खुला

व्यापार चले। राशन की दुकानें मुख्यतः छोटे परचून व्यापारियों को दी जाए। उन्हें बेरोजगार न बनाया जाए।

(iii) खाद्यान्न निगम, बाजार में एक प्रतिस्पर्द्धी व्यापारी के नाते आये। उसे खरीद या बिक्री का एकाधिकार न दिया जाए। इसी प्रकार कुछ व्यापारियों अथवा सहकारी समितियों को भी एकाधिकार न दिया जाए।

(iv) सरकारी कर्मचारियों तथा श्रमिकों के महंगाई भत्ते एवं परिलाभ, मूल्य-वृद्धि के अनुपात में बढ़ाए जाएं। उन्हें जीवनोपयोगी वस्तुएं सस्ते मूल्यों पर देने की व्यवस्था हो।

(v) प्रदेश सरकारों द्वारा लगाई गई विभिन्न 'लेवियां' समाप्त कर दी जाएं। इसी प्रकार धान कूटने के छोटे कारखानों पर इस दृष्टि से लगाए गए प्रतिबन्ध समाप्त कर दिए जाएं।

(vi) किसान को उसकी फसल का प्रोत्साहक मूल्य दिया जाए।

योजना बदलो—किन्तु जब तक इस व्यापक समस्या के लिए जिम्मेदार सरकार की मौद्रिक, वित्तीय एवं औद्योगिक नीतियां कायम रहेंगी, तब तक स्थायी समाधान नहीं हो पाएगा। साथ ही उस योजना को बदलना होगा जिसके नाम पर शासन की ये नीतियां बनती रही हैं। यदि चौथी योजना अपने वर्तमान रूप में लाई गई तो मूल्य और बढ़ेंगे, जनता की क्रय-शक्ति गिरेगी तथा अभी तक पैदा हुई समस्याएं और अधिक तीव्र होंगी। अतः आवश्यक है कि चतुर्थ पंचवर्षीय योजना को बदला जाए। देश का सामान्य जनमत इस पक्ष में है। किन्तु योजना आयोग और शासन हठवादी बनकर चल रहा है। अतः आवश्यक हो गया है कि जनमत जाग्रत एवं संगठित किया जाए और उसका शासन पर अपनी गलत नीतियों के परित्याग के लिए दबाव लाया जाए। इस हेतु भारतीय जनसंघ 'योजना बदलो' आन्दोलन का सूत्रपात करता है तथा सभी देशवासियों का आह्वान करता है कि वे इस महत्वपूर्ण कार्य में अपना सहयोग दें।

[24 जनवरी, 1965; विजयवाड़ा; बारहवां सा०अ०]

66.08. पाकिस्तान से युद्ध के बाद आर्थिक स्थिति

देश की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है। एक स्वचालित और स्वावलम्बी अर्थव्यवस्था की नींव रखने के उद्देश्य की प्राप्ति तो दूर, पिछले दिनों में विभिन्न क्षेत्रों में विकास की गति कम हुई है और कुछ में तो स्थिरता और मन्दी की स्थिति भी है। तीसरी योजना के अन्तर्गत वित्तीय परिव्यय में तो 10% की वृद्धि हुई है किन्तु भौतिक उपलब्धियां लक्ष्य से बहुत कम हैं। राष्ट्रीय आमदनी में 30% की वृद्धि का लक्ष्य रखा गया था किन्तु वास्तविक वृद्धि केवल 18% हुई।

अन्नोत्पादन का लक्ष्य 1965-66 में 10 करोड़ टन था किन्तु इस वर्ष के उत्पादन का अनुमान केवल 7 करोड़ 59 लाख टन है। सूखे के कारण फसल की खराबी से होने वाली उत्पादन की कमी का हिसाब लगाने के बाद भी कृषि की कुल उत्पादन क्षमता 9 करोड़ 20 लाख टन से अधिक नहीं आंकी जा सकती।

मंदी—औद्योगिक क्षेत्र की प्रगति 11% के स्थान पर केवल 7% प्रति वर्ष हुई है। बेरोजगारों की संख्या में भी 40 लाख की वृद्धि हुई है। इस अवधि में कीमतें 30% बढ़ी हैं। जनता ने विकास और सुरक्षा के नाम पर दुर्वह भार वहन करते हुए अधिक वित्तीय साधन जुटाए। फिर भी रुपये का विनियोग या तो अनुत्पादक मदों में या उन परियोजनाओं पर जो बहुत पूंजीप्रधान हैं हुआ है। केन्द्र और प्रान्तों का कर-राजस्व 1960-61 में 1,355 करोड़ रु० से बढ़कर 1965-66 में 2,723 करोड़ रु० हो गया। देश का विदेशी ऋण 760·96 करोड़ रु० से बढ़कर 2629·18 करोड़ रु० हो गया है। अन्दर का ऋण भी 900 करोड़ रु० से बढ़ा है। फिर भी सरकारी हिसाब में 1,255 करोड़ रु० की मुद्रास्फीति हुई है जबकि तीसरी योजना में केवल 550 करोड़ रु० की व्यवस्था की गई थी। भारी विदेशी ऋणों और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से मुद्रा लेने के बाद भी हमारी विदेशी मुद्रा के कोष में भारी कमी आई है, और वह 80 करोड़ रु० मात्र रह गया है। हमारा औद्योगिक ढांचा आयात-प्रधान होने के कारण पाकिस्तान के साथ संघर्ष के पश्चात विदेशी सहायता के रुक जाने के परिणामस्वरूप चारों ओर उत्पादन कम हुआ है।

समय-समय पर तीसरी योजना के इन दोषों की ओर जनसंघ संकेत करता रहा है और उसके दुष्परिणामों की चेतावनी सरकार को देता रहा है। 'योजना बदलो अभियान' में भी इन तथ्यों पर बल दिया गया था। भूतपूर्व प्रधानमंत्री ने यह अनुभव किया था कि सम्पूर्ण योजना का आधार और उसकी व्यूह-नीति में परिवर्तन किया जाए। पाकिस्तान के साथ संघर्ष और विदेशी ताकतों की नीति ने इस अनुभव को और भी दृढ़ किया था।

यह दुर्भाग्य का विषय है कि योजना आयोग अब फिर पुराने ढर्रे से सोच रहा है। एक स्वावलम्बी अर्थव्यवस्था के निर्माण के स्थान पर उसने विदेशी ऋणों से मुक्ति के लिए अधिक ऋण के नये सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। विदेशी पूंजी पर अधिक निर्भरता के आधार पर चौथी योजना को बढ़ाया जा रहा है। फलतः आज हमारे नीति-सम्बन्धी निर्णयों को भी प्रभावित करने के लिए प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दबाव लाया जा रहा है। हमें बंधनों में जकड़ा जा रहा है। भारतीय जनसंघ अपनी राष्ट्रीय प्रभुता पर होने वाले इस आक्रमण से चिंतित है। आर्थिक दृष्टि से भी जनसंघ का विचार है कि बहुत अधिक मात्रा में विदेशी पूंजी का आयात हमारे विकास के लिए उपयोगी नहीं होगा। यह तो सही है कि विदेशी सहायता

के सहारे हम आज की मन्दी से उभर जाएंगे किन्तु साथ ही पाकिस्तान के साथ संघर्ष के समय देश ने बड़े उत्साह और देशभक्ति के साथ विदेशी आयात की वस्तुओं का अपने यहां ही तैयार करने का जो कार्यक्रम बनाया था वह भी मन्द हो जाएगा।

विश्व बैंक ने संयुक्त भारत-पाक परियोजनाओं का सुझाव दिया है। हमें इस झगड़े की जड़ से बचना चाहिए। इससे तो तीसरी शक्तियों को इस भूखण्ड में निरन्तर हस्तक्षेप करने का अवसर मिलेगा। इस प्रकार भारत और पाकिस्तान निकट नहीं आएंगे।

सब देशों से संयुक्त राज्य अमरीका के ऊपर हमारी निर्भरता अधिक है। शायद यही कारण है कि वह हमारे ऊपर अधिक दबाव डाल रहा है। इसके अतिरिक्त सब प्रकार की सहायता की बातचीत में वह भारत और पाकिस्तान दोनों को एक ही तराजू पर रखकर तोल रहा है। स्पष्टतः इसके मूल में राजनीतिक मन्तव्य हैं जिनकी ओर हम आंखें बन्द नहीं कर सकते।

विदेशी सहायता के साथ राजनीतिक फन्दे—इन देशों से सहायता पाने की पहली शर्त है भारत और पाकिस्तान के बीच शान्ति। पाकिस्तान की हठवादिता, आक्रामक प्रवृत्ति और उसकी चीन के साथ गुटबन्दी की पृष्ठभूमि में भारत इस शर्त की गारण्टी नहीं दे सकता। पाकिस्तान इस स्थिति का उपयोग भारत और पश्चिमी ताकतों को ब्लैकमेल करने में करेगा। इस प्रकार की राजनीतिक शर्तों से बंधी हुई सहायता हमारी अर्थव्यवस्था के लिए सदैव एक अनिश्चितता की स्थिति बनाए रखेगी।

इन सूत्रों का यह भी कहना है कि भारत अपने आर्थिक कार्यक्रम में कृषि के यन्त्रीकरण को प्राथमिकता दे, जनसंख्या कम करे, आयात नियन्त्रणों को हटाये, देशी और विदेशी निजी पूंजी को अधिक खुली छूट दे और रुपये का अवमूल्यन करे। इन नीतियों का विचार उनके गुण-दोषों के आधार पर हो सकता है। किन्तु हमें यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि हम अपनी योजना और नीतियों का निर्धारण किसी बाहरी प्रभाव में नहीं करेंगे।

भारत-अमरीकी शिक्षा-पीठ का विरोध—इसी संदर्भ में भारत-अमरीकी शिक्षा-पीठ के विषय में जनसंघ जनता की आशंकाओं को प्रकट करना चाहेगा। शिक्षा राष्ट्र जीवन का महत्वपूर्ण अंग है। जिस प्रकार इस पीठ की व्यवस्था की जानी है उससे हमारे शिक्षा संस्थानों पर अत्यधिक विदेशी प्रभाव बना रहेगा। जनसंघ की मांग है कि सरकार इस निर्णय पर मूलतः पुनर्विचार करे।

योजना की उपलब्धियों का मूल्यांकन—उलटी योजनाओं के परिणामस्वरूप आज हम विषम स्थिति में हैं। अब हमें महत्वपूर्ण निर्णय लेने होंगे। वर्तमान योजना आयोग अपने विचारों से इतना बंध गया है कि आज जिन क्रान्तिकारी निर्णयों की मांग परिस्थिति कर रही है उन निर्णयों को वह नहीं ले सकता। जनसंघ का मत है कि योजना आयोग के संगठन, कार्यपद्धति और दृष्टिकोण सबमें आमूल-चूल परिवर्तन होना चाहिए। साथ ही समय-समय पर योजना की उपलब्धियों की जांच करने के लिए एक स्वतंत्र संगठन का निर्माण करना चाहिए।

भारतीय जनसंघ फिर से दोहराता है कि नियतकालिक योजना की कल्पना को छोड़ दिया जाए। इसके स्थान पर हमें परिप्रेक्ष्य योजनाएं बनानी चाहिएं और प्राथमिकताओं को निश्चित करना चाहिए। सरकारी परियोजनाओं का पूरी तरह से ब्यौरेवार विचार होना चाहिए। सम्पूर्ण देश की अर्थव्यवस्था एक है और इसलिए उसे योजना और गैर-योजना, सार्वजनिक और निजी, केन्द्रशः और राज्यशः क्षेत्रों में बांटना गलत है। इससे स्थिति का पूरा ज्ञान नहीं होता। हमें एक समन्वित राष्ट्रीय क्षेत्र की कल्पना रखनी चाहिए जिसके विकास में सभी सरकारी व निजी संस्थाएं तथा सहकारी और निजी धन्धे वाले योगदान दे सकें।

सरकार की आर्थिक नीति का निकट का उद्देश्य चारों ओर उत्पादन की वृद्धि और मूल्यों का स्थिरीकरण होना चाहिए। इसके लिए सरकारी खर्चे में भारी कटौती और बहुत से नियन्त्रणों को भी हटाना आवश्यक है। जहां तक विदेशी मुद्रा का सम्बन्ध है हमें उसका कठोरता से बजट बनाना चाहिए। आयात की हुई वस्तुओं के देश में निर्माण के लिए चारों ओर प्रयत्न करने की आवश्यकता है फिर से हमें स्वदेशी के मन्त्र को लेकर अपनी रचना करनी चाहिए।

[1 मई, 1966; जलंधर, तेरहवां सा०अ०]

66.14. अवमूल्यन—कुछ सुझाव

भारतीय जनसंघ भारत सरकार द्वारा रुपये के विदेशी मूल्य का अवमूल्यन करने के निर्णय की निन्दा करता है। यह निर्णय आर्थिक दृष्टि से अतर्कपूर्ण और राजनैतिक दृष्टि से असम्मानकारक है। यह जनभावना और देशहित के विपरीत है। संसद की अवहेलना करके और अन्तर्राष्ट्रीय दबाव में आकर यह निर्णय किया गया है। सरकार ने इस निर्णय को देश की गिरी हुई अर्थव्यवस्था को सुधारने और पुनर्जीवित करने का एक क्रान्तिकारी मार्ग बताया है। हम अवमूल्यन को देश की आर्थिक समस्याओं का इलाज नहीं मानते। हां, सरकार ने अकस्मात यह निर्णय लेकर यह अवश्य स्वीकार कर लिया है कि उसकी बहु प्रचारित योजनाएं और आर्थिक नीतियां असफल सिद्ध हुई हैं। यदि नीतियों में उपयुक्त परिवर्तन किये गए तो अवमूल्यन का थोड़ा-सा लाभ अर्थव्यवस्था के कुछ क्षेत्र में ही हो सकता है। किन्तु कुल मिलाकर इसका परिणाम हानिकारक ही होगा।

अवमूल्यन के पक्ष में यह आर्थिक तर्क दिया जाता है कि इससे आयात में

कमी और निर्यात में वृद्धि होने के कारण भुगतान-संतुलन की विपरीत स्थिति समाप्त हो जाएगी। यह तर्क कुछ निश्चित अवस्थाओं में सही हो सकता है। जब निर्यात, मूल्यों के आधार पर लचीले हों और उन्हें देश के अन्दर निश्चित मूल्यों पर पैदा और प्राप्त किया जा सकता हो और साथ ही आयात भी लचीले ही हों तो यह तर्क प्रभावी हो सकता है। किन्तु भारत के 80% अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर यह शर्त लागू नहीं होती। वैसे भी सरकार ने कई वस्तुओं पर निर्यात शुल्क लगा दिया है, कुछ निर्यात योजनाएं स्थगित कर दी हैं, आयात शुल्क कम कर दिया है, आयात की उदार नीति अपनाई है और कुछ मामलों में सहायता की भी घोषणा की है। इन सब कारणों से निर्यात के बढ़ने या आयात के कम होने के कोई लक्षण नहीं हैं। स्पष्टतया निकट भविष्य में अवमूल्यन से हमारा भुगतान व संतुलन और बिगड़ेगा, जिसे भारी मात्रा में बाहर से ऋण लिए बिना पूरा नहीं किया जा सकता। निर्यात की परम्परागत वस्तुओं के अतिरिक्त अन्यों में वृद्धि की जा सकती है, यदि उनको देश में सस्ते आधार पर पैदा किया जा सके। किन्तु आयात मूल्यों और आन्तरिक मूल्यों में भी वृद्धि होने के कारण उनका सस्ता उत्पादन सम्भव नहीं। पिछले कुछ दिनों में पूर्वी यूरोप के देशों के साथ हमारा व्यापार बढ़ा था। यह व्यापार मुख्यतया रुपयों या वस्तु-विनिमय के आधार पर रहा है। अवमूल्यन के बाद यह प्रायः ठप हो गया है। इस दिशा में और अधिक निर्यात तब तक नहीं हो सकता जब तक कि हम भारी मात्रा में उनकी सहायता न करें क्योंकि बाह्य और आन्तरिक मूल्यों का अन्तर निर्यात के अनुकूल नहीं है।

अवमूल्यन से हमारे विदेशी ऋणों की अदायगी का खर्चा भी बढ़ गया है। इससे उन लोगों की देनदारी भी बढ़ गई है जिन्होंने आगे भुगतान की शर्तों पर मशीन और दूसरी चीजें आयात की थीं। साझे के समझौतों में विदेशी पूंजीपति को इससे लाभ हुआ है और हमारे पूंजीपति के ऊपर अपने हिस्से की पूंजी के लिए ज्यादा रुपये जुटाने की जिम्मेदारी आ गई है। विभिन्न उद्योगों की आयात-सम्बन्धी आवश्यकताओं और उनको देश में ही पूरा करने की संभावनाओं की कोई जांच नहीं की गई है। इस अवस्था में आयात नीति को मनमाने तौर पर उदार करने से आयात प्रतिसंस्थापन (Substitution) की प्रक्रिया में बाधा पहुंची है।

शासन के न मानने पर भी अवमूल्यन के उपरान्त मूल्यों की वृद्धि एक तथ्य के रूप में उपस्थित है। सरकारी घोषणाओं और वायदों से किसी का समाधान नहीं हो सकता। उसकी सहकारी भंडारों और सुपर बाजार स्थापित करने की योजना से किताबी समाजवाद की चाह भले ही पूरी हो जाए, परन्तु उपभोक्ता को कोई सहायता नहीं पहुंचेगी। जब तक उत्पादन और उत्पादकता तेजी से नहीं बढ़ते, तब तक अवमूल्यन के बाद मूल्य-वृद्धि अपरिहार्य है। पूंजी लागत और उत्पादन के खर्चों में वृद्धि तथा बाहर अधिक माल भेजने के कारण देश में उनकी

कमी स्वयं दो ऐसे कारण हैं जिनसे यदि सरकार की स्फीतिकारी मुद्रा-नीति चलती रही (और उसके बदलने के कोई आसार नहीं दिखाई देते) तो मूल्य आसमान को छुए बिना नहीं रह सकते। निश्चित ही यह विनाश का मार्ग है।

यह साफ है कि अवमूल्यन का निर्णय बाहरी दबाव पर किया गया क्योंकि "विदेशी सहायता की सभी वार्ता उससे जुड़ी हुई थी।" यह शर्त से बंधी सहायता है जिसे लेना हमें अस्वीकार कर देना चाहिए। आर्थिक दृष्टि से भी पिछला अनुभव यही बताता है कि विदेशी सहायता का लाभकारी उपयोग बहुत थोड़ी मात्रा में ही हुआ है। हमारी अर्थव्यवस्था का बेढंगा विकास विदेशी सहायता के ही कारण है। भारत के जीवन और अवस्था में से उगने के बजाय ऊपर से लादकर हमने यहां वहां कुछ औद्योगीकरण किया है। उनमें कोई तालमेल नहीं। आज से 15 वर्ष पहले विदेशी पूंजी और तंत्र-ज्ञान से आयात का कोई औचित्य भी हो सकता था, किन्तु आज तो वह भी नहीं है। जनसंघ का मत है कि हम विदेशी सहायता के बिना काम चला सकते हैं। और बाहर की यदि कोई चीज चाहिए तो वह हमें अर्जित करनी होगी और हम कर सकते हैं। हमें स्वदेशी की भावना को फिर से जगाना पड़ेगा। जनसंघ अपने जन्म-काल से ही इस पर बल देता आ रहा है।

वर्तमान में जनसंघ का सुझाव है कि :

(i) सरकारी खर्चे में भारी कटौती की जाए।
(ii) घाटे की अर्थव्यवस्था कतई न हो।
(iii) योजना को पूरी तरह बदलकर उसे विदेशी सहायता से मुक्त करके आत्मनिर्भरता के आधार पर लाया जाए।
(iv) देश के सभी औद्योगिक प्रयासों पर लगे बन्धनों को हटा दिया जाए।
(v) जनता को उचित मूल्य पर जीवन की आवश्यक वस्तुएं देने की व्यवस्था हो। सरकारी कर्मचारियों और दूसरे उद्योगों में लगे श्रमिकों को सहायता की दरों पर वस्तुएं दी जाएं।
(vi) खेती और उपभोक्ता वस्तुओं के उद्योगों को उच्च प्राथमिकता दी जाए।

[12 जुलाई, 1966; लखनऊ, के०का०स०]

67.14. स्थायी वित्त आयोग

केन्द्रीय कार्यसमिति देश की निरन्तर बिगड़ती हुई आर्थिक स्थिति पर चिन्ता व्यक्त करती है। खाद्यान्न के बढ़ते हुए मूल्य, औद्योगिक क्षेत्र में शिथिलता, अवमूल्यन के बावजूद निर्यात में कमी, पूंजी-बाजार में निरुत्साह और बेरोजगारी की अधिकाधिक वृद्धि—इन समस्याओं की गत लम्बे अर्से से अनुभूति होने के उपरान्त भी शासन की ओर से उनके निदान का कोई सुविचारित एवं योजनाबद्ध

प्रयास नहीं हो रहा है; प्रत्युत शासन संभ्रमग्रस्त और किंकर्तव्यविमूढ़ होकर सस्ते नारों और किताबी उपायों के सहारे कोरी आत्मप्रवंचना कर रहा है। चौथी योजना तथा योजना आयोग के सम्बन्ध में अनिश्चितता, अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के बैंक और सामान्य बीमा के राष्ट्रीयकरण संबंधी प्रस्ताव तथा रेल और केन्द्रीय बजट उक्त धारणा को पुष्ट करते हैं।

1967-68 का बजट—आशा की गई थी कि इस वर्ष का बजट शासन की पुरानी नीतियों में बदल करेगा तथा उसके प्रस्ताव मूल्य-वृद्धि को रोकने, उत्पादन बढ़ाने तथा कर-भार को कम करने में सहायक होंगे। किन्तु इस विषय में निराशा हुई है। यद्यपि घाटे की वित्त-व्यवस्था न करने की घोषणा की गई है फिर भी कराधान और परिव्यय का जो स्वरूप प्रस्तुत किया गया है वह मूल्यों को बढ़ाने वाला ही है। रेल भाड़े में वृद्धि तथा 115 करोड़ रु० के नये अप्रत्यक्ष कर लगाकर जनता पर और बोझा ही डाला गया है। चाय, कॉफी, सिगरेट, जूते, सूत और धागा, प्लास्टिक, डीजल और रबड़ के ऊपर लगाए गए नये टैक्सों का बोझा जन-सामान्य पर ही पड़ेगा। एल्यूमिनियम पर भारी टैक्स लगाकर वित्त मंत्री ने बढ़ते हुए एक उद्योग को धक्का मात्र ही नहीं लगाया बल्कि देश की आत्मनिर्भरता के लक्ष्य को भी दूर धकेला है। रेलभाड़े तथा डाक और तार की दरों में वृद्धि का भी कोई औचित्य नहीं है। समाचार-पत्रों की डाक-दर में बढ़ोतरी एक प्रतिगामी पग है। उर्वरकों पर दी जाने वाली सहायता की समाप्ति से किसानों को 51 करोड़ रु० की हानि होगी। इसका परिणाम कृषि उत्पादन पर प्रतिकूल पड़ेगा।

प्रत्यक्ष करों में मात्र 5 करोड़ रु० की छूट दी गई है किन्तु ब्याज, कमीशन, व्यावसायिक-सेवा-शुल्क आदि के स्रोत पर आय-कर की कटौती की नयी पद्धति लागू करके वित्तमंत्री ने आय-कर विभाग के भ्रष्टाचार और परेशानी युक्त वापिसी के काम को अनावश्यक रूप से बढ़ा दिया है।

केन्द्रीय बजट के अतिरिक्त प्रदेशों के बजटों का भी देश की वित्त-व्यवस्था पर परिणाम होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रदेशों और केन्द्र की वित्त-व्यवस्था के बीच कोई तालमेल नहीं है। वैसे भी पिछले 15 वर्षों में जो वित्तीय परिवर्तन हुए हैं उनसे देश की वित्त-व्यवस्था काफी असन्तुलित हो गई है। आवश्यकता है कि उसका पूर्णरूपेण विचार किया जाए। केन्द्रीय कार्यसमिति का सुझाव है कि एक स्थायी वित्त आयोग की स्थापना की जाए जो देश के आर्थिक लक्ष्यों को ध्यान में रखकर वित्त-व्यवस्था का विवेचन करे और केन्द्र तथा प्रान्तों के दायित्व के अनुसार वित्तीय साधनों का बंटवारा करे।

[30 जुलाई, 1967; शिमला, के०का०स०]

67.16. तीन योजनाओं के बाद आर्थिक स्थिति

केन्द्रीय कार्यसमिति देश की वर्तमान आर्थिक गिरावट के विषय में घोर चिन्ता व्यक्त करती है। इसका निश्चित मत है कि सरकार की अब तक की आर्थिक नीतियों और विशेष रूप से नियोजन का अयथार्थवादी स्वरूप इसका मूल कारण है।

भारतीय जनसंघ ने समय-समय पर इस बात पर बल दिया है कि हमारे देश के आर्थिक विकास का ढंग अपने स्रोत-अनुपात और अपनी मौलिक आवश्यकताओं के स्वरूप को ध्यान में रखकर ही निश्चित किया जाना चाहिए। परन्तु सरकार ने नियोजन का ताना-बाना विदेशी सहायता के आधार पर ही नहीं तो विदेशी कल्पनाओं के अनुसार भी निर्धारित किया है। तीसरी योजना की असफलता से शिक्षा लेते हुए नियोजन की प्रणाली में ऐसा परिवर्तन करने की आवश्यकता है कि अपने साधनों के अधिक प्रभावी उपयोग के द्वारा देश का उत्पादन बढ़ाया जाए और बाहरी सहायता की निर्भरता कम की जाए। परन्तु चौथी योजना के बनाने में भी ऐसा नहीं हुआ। नियोजन मंत्री ने स्वयं स्वीकार किया है कि इस वर्ष के कुल निवेश में से करीब आधा विदेशी सहायता से आ रहा है और इस स्थिति के सुधारने की आवश्यकता पर बल दिया गया है। दुर्भाग्य यह है कि यह सब मानने के पश्चात भी सरकार ने अपनी नीतियों की मौलिक भूल को ज्यों का त्यों रहने दिया है। इसके परिणामस्वरूप लगभग गत दो वर्षों में विदेशी सहायता की अनिश्चितता ने सारी योजना को खटाई में डाल दिया है और उसमें भारी कटौती करना अनिवार्य हो गया है। वर्तमान आर्थिक गिरावट का यह प्रमुख कारण है। साथ ही पिछले दो वर्षों में जिस व्यापक सूखे का शिकार देश बना है उसके कारण कृषक और कृषि आश्रितों की क्रय-शक्ति घटी है, जिसने स्वयं इस मन्दी में योगदान किया है।

अवमूल्यनोत्तर विश्लेषण—परन्तु इस गिरावट का एक असामान्य और इस कारण विचित्र दीखने वाला पहलू यह है कि औद्योगिक मन्दी के साथ-साथ मूल्य बढ़ते जा रहे हैं। मूल्यों की वृद्धि रोकने के लिए प्रत्यक्ष नियंत्रणों के अतिरिक्त सरकार ने जो वित्तीय पग उठाए हैं—कर-भार बढ़ाकर, वार्षिकी-जमा के द्वारा और अन्य उपायों से—वे सब समाज की क्रय-शक्ति को कम करने की दिशा में कार्य कर रहे हैं। इससे बंधी आय वाले मध्यम वर्ग की स्थिति कठिन से कठिनतर होती गई है। हाल में जारी किये गए अध्यादेश ने वार्षिकी के भार को बढ़ाकर ऐसे वर्ग की कठिनाई को और विकट किया है जबकि कर की चोरी करने वाला वर्ग इस प्रकार के पगों के प्रभाव से पहले भी बचा रहा है और आगे भी बचा रहेगा। अन्यथा एक अल्प-विकसित देश में कीमतों को रोकने की नीति केवल मांग की कतर-

ब्योंत करने की नहीं अपितु पूर्ति को बढ़ाने वाली होनी चाहिए। इस दृष्टि से शीघ्र फलदायी योजनाओं को अधिक ध्यान देकर अल्पकाल में ही उत्पादन की वृद्धि का यत्न करना चाहिए।

अवमूल्यन के पश्चात निर्यात-वृद्धि के लिए जो पग उठाने आवश्यक थे वे नहीं उठाए गए। इस कारण उसका लाभ तो हुआ नहीं बल्कि हानि ही हुई है। इसके अतिरिक्त आयातित कच्चे मालों, मशीनों, कल-पुर्जों व खाद्यान्न की कीमतों को और विदेशी पूंजी के ब्याज-भार को बढ़ाकर मूल्यों की वृद्धि का एक और कारण प्रस्तुत किया गया है। परिणामस्वरूप महंगाई भत्ते और वेतन को बढ़ाने की न्याय्य मांग उठ रही है। दूसरी ओर रिजर्व बैंक की साख-संकुचन नीति ने उद्योगों की कठिनाई को बढ़ा दिया है। उन पर लगे अत्यधिक सरकारी कर-भार और माल की खपत की कमी के साथ-साथ हड़तालें, बन्द, घेराव आदि आन्दोलनों ने अनेक औद्योगिक इकाइयों के काम को बन्द या बिल्कुल ठप कर दिया है।

सरकार ने पिछले दिनों में जो माल की खरीद के आदेश देकर इस स्थिति का सामना करने का प्रयास किया है वह एक कामचलाऊ पग है। इससे कुछ उद्योगों को सहारा मिल सकता है। किन्तु देश की अर्थव्यवस्था में व्यवस्थित सुधार नहीं हो सकते। आवश्यकता है कि नियोजन में और सरकार की आर्थिक नीतियों में मूलगामी संशोधन किये जाएं।

आज की स्थिति में कार्यसमिति यह आवश्यक समझती है कि निम्नलिखित पग अविलम्ब उठाए जाएं :

(1) चौथी योजना के ढांचे में आमूल परिवर्तन करके उसे देश की परिस्थिति के अनुकूल ढाला जाए।

(2) कृषि के उत्पादन व्यय को कम करने के लिए औजारों की कीमतें, बिजली की दर, कृषकों को दिये गए ऋण का ब्याज और उर्वरक पर कर घटाया जाए और सिंचाई, सस्ते बीज और खाद का प्रबन्ध किया जाए।

साथ ही कृषक को अपनी उपज का प्रोत्साहक भाव मिले इस प्रकार की व्यवस्था हो।

(3) उद्योगों की वृद्धि के रास्ते की सब कठिनाइयों को दूर किया जाए, उन करों का भार कम किया जाए जो वस्तुओं की कीमतों को बढ़ाते हैं, वर्तमान आयातित वस्तुओं के देशी उत्पादन की व्यवस्था की जाए। शीघ्र फलदायी उद्योगों व छोटे उद्योगों को प्रोत्साहन दिया जाए।

(4) पूंजी-निर्माण के मार्ग की सब बाधाओं को दूर किया जाए और इस दृष्टि से साख-संकुचन की नीति को बदला जाए।

(5) सरकारी व अन्य कर्मचारी वर्ग के लिए बढ़ते हुए दामों की पूरी भरपाई की जाए। मध्यवर्ग पर कर व वार्षिकी भार को कम किया जाए।

(6) औद्योगिक शान्ति को बनाए रखने के लिए पग उठाये जाएं।

[16 सितम्बर, 1967; बड़ौदा, के०का०सा०]

67.21. अवरुद्ध अर्थव्यवस्था

भारतीय जनसंघ देश की निरन्तर बिगड़ती हुई आर्थिक स्थिति पर चिन्ता प्रकट करता है। खाद्य और जीवन की अन्य आवश्यक वस्तुओं का बढ़ता हुआ अभाव, उद्योग-धन्धों में मन्दी, बढ़ती हुई बेरोजगारी, मूल्यवृद्धि, राष्ट्रीय आय में स्थिरता और परिणामस्वरूप प्रति व्यक्ति आय में गिरावट, भारी विदेशी ऋण, बढ़ता हुआ प्रतिकूल भुगतान-सन्तुलन, आय की विषमताओं में वृद्धि किन्तु फिर भी पूंजी-निर्माण में कमी, ये सब हमारी आर्थिक अस्वस्थता के मुंह बोलते लक्षण हैं। यह स्थिति एकाएक नहीं पैदा हुई बल्कि पिछली तीन योजनाओं के अन्तर्गत अपनायी गई नीतियों का ही परिणाम है। यह आश्चर्य का विषय है कि भारत सरकार और योजना आयोग दोनों ही मूल कारणों को स्वीकार करने के स्थान पर 1965 के भारत-पाक संघर्ष तथा उस समय विदेशी सहायता की रोक को और पिछले दो वर्षों में सूखे के कारण फसल की खराबी को ही सम्पूर्ण आर्थिक दुरावस्था के लिए जिम्मेदार ठहराकर अच्छी फसल और विदेशी सहायता की ओर ही निहार रहे हैं। आज की उनकी नीति कुछ कामचलाऊ उपायों तक सीमित है। चौथी योजना के जिस प्रारूप को देश ने ठुकरा दिया उसके ही अंशों को वार्षिक योजना के नाम पर लागू किया जा रहा है। नयी योजना को अप्रैल 1969 से प्रारम्भ करने की भी घोषणा की गई है। सम्भवतः तब तक विदेशी सहायता का निश्चित आश्वासन मिल जाए। स्पष्ट है कि देश की आर्थिक नीतियों के निर्धारण में विदेशी शक्तियां निर्णायक हो गई हैं। उनके दबाव में आकर जून 1966 में अवमूल्यन किया गया तथा उनके कहने से ही उदार आयात नीति तथा विनियन्त्रण की उद्योग-नीति अपनायी गई। इतने पर भी वे सन्तुष्ट नहीं नजर आते। फलतः उन्होंने विदेशी पूंजी के मामले में अपने हाथ खींच लिए हैं जिससे हमारी योजना खटाई में पड़ गई है।

भारत में नियोजन—भारतीय जनसंघ उन लोगों से सहमत नहीं जो नियोजन अथवा योजना को छुट्टी देने की वकालत करते हैं। आज की खामियां नियोजन के कारण नहीं बल्कि गलत योजनाओं अथवा अपूर्ण एवं अव्यावहारिक नियोजन के कारण है। भारतीय जनसंघ पुनः बलपूर्वक दुहराता है कि हमारी योजनाओं के स्वरूप, व्यूहरचना एवं तकनीक में आधारभूत परिवर्तन किये जाएं तथा उन्हें भारत की आवश्यकताओं, साधनों, आर्थिक विकास की वर्तमान अवस्था, राजनीतिक ढांचे तथा जीवन-मूल्यों के आधार पर बनाया जाए। स्वदेशी और

स्वावलम्बन ही हमारी योजनाओं का आधार एवं लक्ष्य होने चाहिए। भारत कृषि एवं ग्राम प्रधान है तथा जनशक्ति हमारा सबसे बड़ा साधन है। अतः हमारी आर्थिक व्यवस्था विकेन्द्रित एवं कृष्यौद्योगिक होनी चाहिए : आधुनिक तरीकों का खेती तथा उद्योग-धंधों में इस प्रकार उपयोग किया जाए कि प्रत्येक व्यक्ति को काम मिले और उसकी उत्पादकता वर्धमान हो। पूर्ण रोजगार की व्यवस्था न होने तक स्वचालित मशीनों का उपयोग (Automation) आर्थिक दृष्टि से अलाभकर होगा; इस कारण यह अवांछनीय है। साथ ही कार्यक्रम बनाते समय हमें क्षेत्रीय एवं व्यावसायिक दोनों ही आधार पर सन्तुलित विकास का लक्ष्य सामने रखना चाहिए।

मूल्यों की स्थिरता, विद्यमान उत्पादन-क्षमता का पूर्ण उपयोग तथा भावी विस्तार के लिए पूंजी-विस्तार आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है। निजी और सार्वजनिक दोनों ही क्षेत्रों में विकास कार्य रुक जाने के कारण मशीन, इंजीनियरिंग तथा उत्पादक वस्तुओं के कारखानों में मन्दी आ गई है। मूल्यों में वृद्धि तथा उसके अनुपात में आय में वृद्धि न होने के कारण किसान, मजदूर तथा निश्चित आय वाले उपभोक्ताओं की क्रय-शक्ति की कमी का परिणाम उपभोक्ता उद्योगों पर भी पड़ रहा है। उत्पादन में कमी के कारण राजस्व में भी कमी आ रही है जिससे घाटे की अर्थव्यवस्था अपरिहार्य होती जा रही है।

इस दुष्चक्र को तोड़ने तथा अर्थव्यवस्था को गतिमान बनाने के लिए जनसंघ का सुझाव है कि :

(1) सार्वजनिक और निजी दोनों ही क्षेत्रों में विस्तार के ऐसे कार्यक्रम लिए जाएं जिनसे उत्पादन-क्षमता का पूर्ण उपयोग हो सके तथा जो विदेशी सहायता पर अवलम्बित न हो। निजी क्षेत्र में भी पूंजी को पूर्ण प्रोत्साहन दिया जाए तथा साख सम्बन्धी नियम उदार बनाए जाएं।

(2) आयात नीति का वैज्ञानिकन (Rationalisation) कर उसे कठोर बनाया जाए। आयात प्रतिसंस्थापन पर बल दिया जाए। ऋण या उधार के आधार पर आयात की नीति को समाप्त कर निर्यात से पूर्णतः सन्तुलित आयात नीति अपनाई जाए।

(3) किसानों को उनकी फसल का अच्छा दाम दिया जाए। जबरिया गल्ला वसूली तथा क्रय के एकाधिकार सम्बन्धी व्यवस्थाएं समाप्त कर दी जाएं। बढ़ी हुई आय का उपयोग पूंजी-निर्माण तथा कृषि विकास में किसान करे, इस उद्देश्य से भूमि-कर में छूट, खाद, कुएं बनाने के लिए सीमेंट आदि, इंजन, उन्नत बीज, छोटे यन्त्र आदि को गांवों में सुविधापूर्वक उपलब्धि कराया जाए। गांवों में बिजली पहुंचाई जाए तथा बैंकों की शाखाएं भी तेजी से खोली जाएं।

(4) महंगाई भत्ता महंगाई के अनुपात में मिले। न्यूनतम मजदूरी की एक गारण्टी देते हुए अधिक उत्पादकता को अतिरिक्त मजदूरी के साथ जोड़ा जाए।

(5) आवास-निर्माण, सड़क-निर्माण, सिंचाई आदि सार्वजनिक निर्माण के कार्यक्रम बड़े पैमाने पर लिये जाएं। राहत कार्य के सिलसिले में लिये गए कार्यक्रमों को स्थायी विकास की दृष्टि से दृढ़ किया जाए।

(6) खाद्यान्न के क्षेत्र तोड़ दिये जाएं। बड़े नगरों तथा विशेष अभावग्रस्त क्षेत्र को पृथक करके वहां पूर्णतः राशनिंग लागू किया जाए।

(7) शासन का अनुत्पादक खर्चा घटाया जाए। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए प्रशासन में अपव्यय की रोकथाम तथा कार्यपद्धति का वैज्ञानिकन आवश्यक है।

[26 दिसम्बर, 1967; कालीकट, चौदहवां सा०अ०]

68.05. आर्थिक नीतियों पर पुनर्विचार

सरकार की पिछली आर्थिक नीतियों के कारण अर्थतंत्र जिस दलदल में फंस गया उससे उबारने के लिए और पूंजी बाजार को सक्रिय करने के उद्देश्य से वित्त-मंत्री ने कुछ उपाय सुझाये हैं। इसके कारण कुछ सुधार नजर आ रहा है, किन्तु उन्होंने तम्बाकू पर शुल्क बढ़ाने और डाक-दरों में भारी फेर-बदल करने के जो प्रस्ताव रखे हैं उनका औचित्य सिद्ध नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार नये उत्पाद-करों एवं चुंगी की वर्तमान दरों में वृद्धि के सुझावों का अंततोगत्वा मुद्रा-स्फीतिक परिणाम ही होगा। वित्त मंत्री ने तम्बाकू के विभिन्न उत्पादों के साथ 'निष्पक्षता' बरतने का जो दावा किया है वह अविश्वसनीय तो है ही उसका प्रतिकूल प्रभाव भी पड़ने वाला है। यह तर्क देकर कि डाक विभाग घाटा उठा रहा है, डाक दरों में संशोधन करने का औचित्य सिद्ध करना यही प्रमाणित करता है कि सार्वजनिक उपयोग की इस सेवा को भी विशुद्ध व्यावसायिक दृष्टि से देखा जा रहा है। विभागीय कुशलता को सुधारने (जो निश्चय ही संतोषजनक नहीं है) और परिचालन-व्यय घटाने के बजाय वित्तमंत्री ने समाज के उस गरीब वर्ग को भी, जो पोस्ट-कार्ड प्रयोग करता है, विभागीय अकुशलता का मूल्य चुकाने को बाध्य किया है।

रेलवे के किराये भाड़े में वृद्धि की पहले ही घोषणा की जा चुकी है। इस संदर्भ में विचार करने पर वित्तमंत्री ने वार्षिकी-जमा या अर्जित एवं अनार्जित आय पर सरचार्ज को समाप्त करने की घोषणा करके जो मामूली रियायत दी है वह निरर्थक सिद्ध होती है। यह आशंका भी है कि वित्त मंत्री महोदय ने बजट में जो घाटा छोड़ दिया है उसे पूरा करने के लिए बाद में पूरक बजट लाकर नये-करों का प्रस्ताव रखें। कार्यसमिति उनसे अनुरोध करती है कि वे सामान्य व्यक्ति पर यह बोझ न डालें क्योंकि उस पर पिछले बोझों का दवाव ही अपनी चरम सीमा तक पहुंच

चुका है। वह अनुभव करती है कि आय-कर से मुक्त राशि की सीमा को यदि भूतलिगम समिति द्वारा सुझायी गई सीमा तक नहीं बढ़ाया जा सकता तो उसे कम से कम 6,000 रु० तक अवश्य कर दिया जाए।

नयी कृषि नीति—कार्यसमिति देश को यह चेतावनी भी देना चाहती है कि कृषि उत्पादन के क्षेत्र में वर्तमान सफलता—ठीक उसी तरह जैसा पहली पंचवर्षीय योजना की अवधि में हुआ—प्राकृतिक कारणों की देन है और सरकारी प्रयत्नों को इसका बहुत ही कम श्रेय दिया जाएगा। अतः आत्म-सन्तोष करने और कृषि क्षेत्र से ध्यान हटाने के विचार का कोई आधार नहीं। जनसंघ का सदा से यह विश्वास रहा है और उसने इसे बराबर कहा भी है कि भारत के चहुंमुखी आर्थिक विकास की मौलिक आवश्यकता यह है कि खेती की उपज विशेषतः अनाज की पैदावार बढ़ायी जाए और कृषि की समस्याओं को बिना किसी शोर-शराबे एवं दिखावे के हल किया जाए। साथ ही छोटी सिंचाई योजनाओं, समय पर अच्छी श्रेणी के बीज की व्यवस्था, खाद और किसानों के लिए कर्ज का प्रबन्ध किया जाए तथा उन बाधाओं को दूर किया जाए जो उसके मार्ग में हैं या जिनके कारण से उन्हें अपने उत्पादन का उचित मूल्य नहीं मिलता। वित्तमंत्री ने अपने बजट भाषण में, जिसे 'नयी कृषि नीति' की संज्ञा दी है, इनमें से कुछ बातों का उल्लेख किया है। आशा की जाए कि यह सब कागज पर ही लिखा नहीं रहेगा अपितु इसे क्रियान्वित भी किया जाएगा। कार्यसमिति अपने इस विश्वास को दोहराती है कि अर्थतंत्र में उत्पन्न गतिरोध को जनता की क्रय-शक्ति बढ़ाकर ही दूर किया जा सकता है, क्योंकि ऐसा होने पर ही उद्योगों के लिए बाजार तैयार होगा। कृषि मोर्चे में सुधार होने से जो उत्साहवर्धक संकेत मिल रहे हैं वे इसके प्रमाण हैं।

कार्यसमिति ऐसा महसूस करती है कि देश में निराशा एवं अविश्वास के वर्तमान वातावरण को बदलने के लिए नीति और स्वस्थ दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है। इस लक्ष्य को पूरा करने के लिए सरकार को दो कदम उठाने चाहिए :

(i) गैर-विकास व्यय में कमी करने, विशेषतः मंत्रिमण्डल के सदस्यों द्वारा शान शौकत और दिखावे की जिंदगी व्यतीत करने की आदत को खत्म करने के लिए सुविचारित एवं प्रभावशाली कदम उठाए जाने चाहिए।

(ii) जनता में सामाजिक चेतना और राष्ट्रीय भावना जगाने के प्रयत्न किये जाएं और उसमें अधिक श्रद्धा एवं विश्वास का परिचय देकर एक नया वातावरण बनाया जाए।

दुर्भाग्य से, बजट भाषण में पहली बात का कहीं कोई संकेत नहीं मिलता और सम्पत्ति एवं आय छिपाने पर 'कठोर दंड' की बात कहकर सर्वथा नकारात्मक

दृष्टिकोण अपनाया गया है। कर विभाग के अधिकारियों को व्यापक अधिकार देने का विचार है। उन अधिकारों का यदि विवेकशून्य होकर प्रयोग किया गया तो इसका नतीजा यह होगा कि जिस आय या सम्पत्ति को 'छिपाई' हुई कहा जाएगा उसे प्रायः छीन लिया जाएगा। ऐसे अधिकारों से तो यदि कानून का पालन करने और कर चुकाने वाले नागरिकों के मन में भी आतंक पैदा हो, तो वह सर्वथा सहज होगा। ऐसे अधिकार तानाशाही शासन में ही उचित हो सकते हैं, हमारे जैसे लोकतंत्री ढांचे में इनके लिए कोई स्थान नहीं होना चाहिए। इससे यह आशा भी नहीं की जा सकती कि तेजी से आर्थिक विकास करने के प्रयत्नों में जनता स्वेच्छा से सहयोग देगी और सक्रिय रूप से हाथ बंटाएगी।

कार्यसमिति का मत है कि देश के सामने उत्पन्न आर्थिक कठिनाइयों के बीच वर्तमान में सांस लेने का जो मौका मिला है उसका उपयोग सरकार अब तक अपनायी गई अपनी आर्थिक नीतियों पर पुनर्विचार करने और अतीत की विफलताओं से सबक सीखकर इन नीतियों को फिर से ढालने के लिए करे। समिति, विशेषतः इन बातों पर बल देना चाहती है :

(i) चौथी योजना को मूल से ही बदला जाए जिससे रोजगार की क्षमता में वृद्धि हो और विदेशी सहायता पर निर्भरता खत्म हो; हम समझते हैं कि देश को आर्थिक आजादी दिलाने का यही एक मार्ग है।

(ii) कृषि को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जाए और सस्ते मूल्य पर बढ़िया औजार, बीज, कम ब्याज दर पर और ठीक समय पर ऋण, छोटी सिंचाई परियोजनाओं को अधिक बढ़ावा, भंडारों की उत्तम व्यवस्था, उत्पादन के लिए हाट की सुविधा आदि की व्यवस्था करके भूमि की उत्पादकता बढ़ाने के लिए सभी कदम उठाए जाएं।

(iii) खाद्यान्नों को एक स्थान से दूसरे स्थानों पर ले जाने पर लगी सब क्षेत्रीय पाबन्दियां तत्काल समाप्त की जाएं। अच्छी फसल होने पर अनमने ढंग से कुछ छूट देने का फैसला निराशाजनक है।

(iv) उपभोक्ता उद्योगों को सरकारी चंगुल की दम घोंटू पकड़ से मुक्त कराया जाए और लालफीताशाही को, जो सामान्य उद्योगों के और आयातित माल का विकल्प तैयार करने वाले उद्योगों के मार्ग में बाधक है, समाप्त किया जाए।

(v) बचत और पूंजी-निर्माण को बढ़ावा देने के लिए सब सुविधाओं की व्यवस्था की जाए।

(vi) प्रत्येक स्तर और प्रत्येक क्षेत्र में स्वदेशी भावना को पुनर्जीवित किया जाए।

[22 मार्च 1968; भोपाल, के०का०स०]

68.06. बैंकिग अधिनियम (संशोधन) विधेयक, 1968

कार्यसमिति इस मत का समर्थन करती है कि बैंकिग उद्योग की नीतियां और व्यवहार ऐसा हो जो बुनियादी सामाजिक एवं आर्थिक लक्ष्यों को पूरा करे, जिससे अर्थतंत्र का अधिकाधिक तेजी से विकास हो और एकाधिकारवादी प्रवृत्तियां आर्थिक सत्ता का केन्द्रीकरण तथा साधनों का दुरुपयोग रुके। बैंकों की ओर से दिये जाने वाले ऋण में कृषि एवं लघु उद्योगों का भाग अधिक हो, जिससे राष्ट्रीय आय के संचार में रोजगार की सुविधाएं बढ़ाने और आर्थिक शक्ति के विकेन्द्रीकरण में पर्याप्त मदद मिलेगी। यह भी आवश्यक है कि निदेशक मंडल (Board of Directors) के गठन और ऋण देने के वास्तविक निर्णयों पर बड़े भागीदारों के प्रभाव को समाप्त किया जाए।

लेकिन, इस समिति का यह भी निश्चित मत है कि प्रस्तावित बैंकिंग कानून (संशोधन) विधेयक घोषित लक्ष्यों को पूरा करने में सहायक होने के बजाय, व्यावहारिक दृष्टि से, बैंकों के सरकारीकरण के एक और बड़े खतरे को जन्म देगा।

सर्वप्रथम, हाल में ही गठित राष्ट्रीय ऋण परिषद, जिसके अध्यक्ष वित्तमंत्री और उपाध्यक्ष रिजर्व बैंक के गवर्नर होंगे, रिजर्व बैंक के लिए ऋण नीति की दिशा निर्धारित करेगी। इस प्रकार ऋण-नीति को रिजर्व बैंक के बजाय सरकार प्रभावित करेगी जो देश में आर्थिक लोकतंत्र के विकास के लिए घातक होगा।

निदेशक-मंडल के पुनर्गठन के मामले में इस विधेयक द्वारा रिजर्व बैंक को व्यापक अधिकार दिए गए हैं। रिजर्व बैंक को आज भी व्यावसायिक बैंकों के कारोबार को नियमित करने का अधिकार प्राप्त है। लेकिन, इस तथ्य को देखते हुए कि रिजर्व बैंक एक स्वतंत्र मौद्रिक अधिकरण के रूप में काम नहीं करता बल्कि भारत सरकार के अधीन है, इस संदेह के लिए पर्याप्त आधार है कि निदेशक-मंडल के पुनर्गठन के अधिकार की व्यवस्था के अधीन सरकार और शासक दल बैंकिग उद्योग पर अपनी पकड़ ही मजबूत करेंगे।

बैंकों पर राजनीतिक नियंत्रण—विधेयक में कहा गया है कि निदेशक-मंडल के बहुमत सदस्य ऐसे व्यक्ति होंगे जिन्हें कृषि, ग्रामीण अर्थतंत्र, लघु उद्योग, सहकारिता, बैंकिग, वित्त तथा बैंकिग कम्पनी के लिए उपयोगी अन्य विषयों के विशेष ज्ञान का व्यावहारिक अनुभव होगा। सिद्धान्त रूप से यह विचार सराहनीय हो सकता है, परन्तु इससे सरकार को मौका मिलेगा कि भारत के रिजर्व बैंक के माध्यम से प्रत्येक बैंक पर अपने कृपा पात्रों को थोप दें। 'व्यावहारिक अनुभव' की शर्त को जानबूझ कर अस्पष्ट रखा गया है। इस कार्य के लिए व्यक्तियों की पात्रता की जांच करने के लिए विधेयक में किसी स्वतंत्र आर्थिक संस्था की कहीं कोई व्यवस्था नहीं। इससे सरकार को मनमानी करने के व्यापक अधिकार मिल

जाएंगे जिनका उपयोग वह रिजर्व बैंक के माध्यम से करेगी।

समिति का मत है कि इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए एक स्वतंत्र संस्था गठित की जाएगी जो आर्थिक प्रतिभा का एक साझा भंडार बनाए जिससे मंडलों के लिए सुपात्रों का चयन किया जाए।

यह व्यवस्था भी है कि इस विधेयक के अधीन की गई प्रत्येक नियुक्ति, निष्कासन और पुनर्गठन अंतिम होगा और उसके संबंध में किसी अदालत में आपत्ति नहीं की जा सकेगी। मंडल के किसी अध्यक्ष को यदि हटाने का आदेश दिया जाएगा तो वह केन्द्र सरकार से ही अपील कर सकेगा। सरकार का निर्णय अंतिम होगा और उसे किसी न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकेगी। इस प्रकार केन्द्र सरकार ने इस महत्वपूर्ण मामले में मनमाने और तानाशाही अधिकार प्राप्त कर लिये हैं और न्यायपालिका को उसके वैध अधिकार क्षेत्र में भी जाने की मनाही कर दी गई है।

कोई बैंक यदि कानून की व्यवस्थाओं या उसके अधीन जारी किये गए निर्देशों का उल्लंघन करता है अथवा किसी विशेष क्षेत्र में बैंकिग सुविधाओं की अच्छी व्यवस्था के लिए किसी बैंक के द्वारा कुछ कदम उठाना जरूरी समझा जाता है तो ऐसे बैंकों के बारे में कोई कार्यवाही करने का अधिकार रिजर्व बैंक को होना चाहिए, सरकार को नहीं। बैंकों पर कब्जा करने का अधिकार सरकार को मिल जाने पर संबद्ध बैंक के प्रति खातेदारों का विश्वास जाता रहेगा और अर्थतंत्र पर सरकारी नियंत्रण का क्षेत्र बढ़ता जाएगा। रोक लगाने, विलय अर्थात् एक बैंक को दूसरे बैंक से मिलाने का अधिकार रिजर्व बैंक को है और अब तक के उसके व्यवहार से अभीष्ट लक्ष्य की भलीभांति पूर्ति भी हुई है। यदि बैंक पर कब्जा करने की बात सोची जाती है तो ऐसा करने का अधिकार रिजर्व बैंक को होना चाहिए।

विधेयक में इस बात को स्पष्ट नहीं किया गया कि कृषि और लघु उद्योगों को ऋण देने के मार्ग में आने वाली मुख्य कठिनाइयों को कैसे दूर किया जाएगा। किसान या छोटे उद्योगपति कर्ज या पेशगी रकम लेने के लिए कोई मान्य जमानत नहीं दे सकते। 'अदायगी की क्षमता' को विक्रय-योग्य जमानत के साथ मिलाकर देखने की वर्तमान व्यवस्था के स्थान पर यदि 'अदायगी की क्षमता को कर्ज लेने वाले की उत्पादन क्षमता' से मिलाकर हिसाब लगाने की व्यवस्था की जाए तो समस्या आसान हो सकती है। लेकिन, भारतीय परिस्थितियों में इस दूसरे तरीके की परीक्षा करना अभी शेष है और ऋण देने के इस तरीके का बड़ा बोझ स्वयं उठाने को सरकार अब तक आगे नहीं आयी। इसलिए विधेयक को जिस उद्देश्य से लाया जा रहा है उसके पूरा होने की आशा नहीं।

बैंक कर्मचारियों के ट्रेड यूनियन अधिकारों को धारा 36 (A) (d) के

द्वारा कम करने की कोशिश की गई है। कार्यसमिति इसकी निन्दा करती है। यह धारा अनावश्यक और भड़काने वाली है।

समिति का यकीन है कि निजी बैंकरों को ऐसे अनियंत्रित अधिकार प्राप्त नहीं होने चाहिए कि राष्ट्रीय हितों की हानि हो। लेकिन, उसकी मान्यता यह भी है कि वर्तमान विधेयक द्वारा बैंकों पर सरकारी और राजनीतिक नियंत्रण स्थापित करने का प्रयास हो रहा है जो देश में आर्थिक लोकतंत्र की दृष्टि से बहुत ही खतरनाक है। दोनों प्रकार के खतरों से बचने के लिए समिति की राय में रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया को मौद्रिक अधिकरण का दर्जा दिया जाना चाहिए और उसके गठन में भी इस उद्देश्य से आवश्यक परिवर्तन किया जाना चाहिए। रिजर्व बैंक के निदेशक मंडल का अध्यक्ष किसी नौकरशाह को बनाने के बजाय स्वतंत्र अर्थशास्त्री को बनाया जाना चाहिए और मंडल पर उसी का प्रभावशाली नियंत्रण होना चाहिए। मुद्रा या ऋण जैसी प्रत्येक मौद्रिक समस्या के बारे में ऐसे पुनर्गठित रिजर्व बैंक को ही कोई निर्णय करने का अंतिम अधिकार होना चाहिए। वित्तीय नीति के मामले में सरकार ही यद्यपि सर्वोच्च सत्ता होगी तथापि उसे मौद्रिक नीतियों के संबंध में ऐसे पुनर्गठित रिजर्व बैंक के अधिकार का भी सम्मान करना चाहिए।

वर्तमान परिस्थितियों में विधेयक के उद्देश्यों के प्रति सहमति प्रकट करते हुए भी, समिति उसकी उन व्यवस्थाओं का विरोध करने को बाध्य है जिनका उद्देश्य बैंकों पर राजनयिक नियंत्रण की प्रक्रिया को आरम्भ करना है।

[22 मार्च, 1968; भोपाल, के०का०स०]

69.15. बैंक-राष्ट्रीयकरण

भारतीय जनसंघ के सन्मुख एक ऐसी सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था की कल्पना है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति तथा नैतिक एवं आध्यात्मिक प्रगति के लिए समान अवसर और पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त होगी।

जनसंघ 'पूंजीवाद' तथा 'राज्यवाद' दोनों को ही अस्वीकार करता है। पूंजी पर स्वामित्व किसका हो इसके विषय में इन दोनों के दृष्टिकोण में भिन्नता होते हुए भी दोनों की परिणति आर्थिक सत्ता के केन्द्रीकरण एवं एकाधिकार में ही होती है। निजी एकाधिकार से उत्पन्न होने वाले दोषों को राज्य के नियमन द्वारा रोका जा सकता है; किन्तु राजनीतिक एवं आर्थिक दोनों सत्ताओं के राज्य के हाथों में केन्द्रित हो जाने की परिणति अनिवार्यतः अधिनायकवाद में होगी जिसकी लोकतंत्र के साथ कोई संगति नहीं है।

देश के चौदह प्रमुख बैंकों के सरकारीकरण का निर्णय बैंकों पर निजी

एकाधिकार को तोड़ने अथवा बैंकिंग कम्पनियों के किसी भ्रष्ट आचरण के उन्मूलन के लिए नहीं अपितु इस क्षेत्र में राज्य का एकाधिकार स्थापित करने के विचार से किया गया है। व्यावसायिक बैंकों के सरकारीकरण का निर्णय देश की आर्थिक स्थिति और उसकी आवश्यकताओं के यथार्थ आंकलन पर आधारित नहीं, अपितु पूर्णतः राजनीतिक कारणों से ही प्रेरित है।

यह तर्क अवश्य दिया जा सकता है कि कृषि एवं लघु उद्योगों के क्षेत्रों की ऋण संबंधी आवश्यकताओं की भली प्रकार पूर्ति नहीं हो रही थी, इस कारण बैंक उद्योग को एक नयी दिशा देने तथा इन क्षेत्रों में पूंजी के प्रवाह को बढ़ाने के लिए पग उठाया जाना आवश्यक था। इसी उद्देश्य से कुछ मास पूर्व सरकार ने बैंकों पर 'सामाजिक नियन्त्रण' लागू किया था। इस प्रयोग के परिणामों के आंकलन के लिए पर्याप्त समय दिया जाना चाहिए था। परन्तु सामाजिक नियन्त्रण के इस प्रयोग के अनुभवों को आंके बिना ही यह नया पग उठा लिया गया। निर्णय करने से पूर्व यह सिद्ध किया जाना चाहिए था कि बैंकों के सरकारीकरण से वांछित परिवर्तन अवश्य आ सकेगा। इसके लिए सरकारी वित्तीय संस्थाओं (जीवन बीमा निगम, स्टटे बैंक ऑफ इण्डिया, राज्य वित्त निगम, आदि) की अब तक की पूंजी लगाने की नीतियों के आधार पर भी यह आशा बंधनी चाहिए थी कि बैंकों के सरकारीकरण से अपेक्षित परिणाम प्राप्त हो सकेंगे। किन्तु यह सिद्ध करने का कोई प्रयास नहीं किया गया कि बैंकों का सरकारीकरण किस प्रकार अनिवार्य और पर्याप्त था; अन्यथा कम से कम इस पग की अनिवार्यता अथवा पर्याप्तता में से किसी एक को तो सिद्ध किया ही जाना चाहिए था।

सरकार ने बिना भली प्रकार सोचे-विचारे और बिना आवश्यक प्रारम्भिक रूपरेखा तैयार किए ही यह निर्णय किया है, इसकी पुष्टि इस बात से भी होती है कि इस विषय के कई महत्वपूर्ण पहलू आज तक स्पष्ट नहीं किए गये हैं। उदाहरणार्थ :

(i) बैंकों की शाखाओं के विस्तार से सम्बन्धित प्रश्न।
(ii) ब्याज की दरें।
(iii) सरकारीकृत बैंकों के संदर्भ में सहकारी क्षेत्र का नया कार्यभाग तथा इन दोनों के परस्पर सम्बन्ध।
(iv) विदेशी बैंकों को राष्ट्रीयकरण की कार्यवाही से बाहर रखने में निहित असंगति तथा अन्य बैंकों से हटकर इन विदेशी बैंकों में पैसे के चले जाने का भय।
(v) सरकारीकृत बैंकों को समाज के प्रति उत्तरदायी रखने की पद्धति।
(vi) सरकारीकृत बैंकों के प्रबन्ध के लिए योग्य एवं प्रशिक्षित मैनेजर उपलब्ध कराने का प्रश्न।

उपलब्ध स्थिति में कि जब बैंकों का राष्ट्रीयकरण हो ही चुका है, कार्यसमिति सरकारीकृत बैंकों में अफसरशाही के खतरे को कम करने की दृष्टि से निम्नलिखित सुझाव देती है :

(क) हर बैंक अलग स्वायत्तशासी इकाई के रूप में रखा जाए, जिससे वे एक विशालकाय संस्था के पुर्जे मात्र बन जाने के बजाय परस्पर प्रतिस्पर्धी के रूप में कार्य करते रह सकें।

(ख) उनके प्रबन्ध-मण्डलों में कृषि एवं लघु उद्योगों के प्रतिनिधियों के अतिरिक्त खातेदारों और कर्मचारियों के प्रतिनिधि भी सम्मिलित किये जाएं।

(ग) पूंजी लगाने की नीति का (छोटे उद्योगों और कृषि के अनुकूल) पुनर्निर्धारण किया जाए। इस हेतु ऋण-पात्रता की भी नयी व्याख्या की जानी चाहिए।

(घ) एक वित्तीय परामर्शदात्री सेवा की स्थापना की जाए, जो ऋण के द्वारा उत्पादन क्षमता और रोजगार की वृद्धि के लिए हर प्रकार का आवश्यक परामर्श दे सके।

रिजर्व बैंक को स्वशासी मौद्रिक अधिकरण में बदलो—कार्यसमिति अपने इस सुविचारित मत को पुनः दोहराना चाहती है कि राजनीतिज्ञों द्वारा किसी आर्थिक आधार के बिना तात्कालिक और बिना सोचे विचारे फैसले किये जाने की सम्भावना को समाप्त करने के लिए रिजर्व बैंक के वर्तमान स्वरूप, रचना में परिवर्तन तथा उसकी प्रतिष्ठा में वृद्धि करके उसे वास्तविक अर्थों में एक स्वायत्त वित्तीय संस्था का रूप दिया जाए, जो मुद्रा तथा साख (ऋण) सम्बन्धी नीतियों का निर्धारण करे। इसके संचालक-मंडल में सरकारी अफसरों तथा राजनीतिज्ञों के बजाय स्वतन्त्र अर्थशास्त्रियों को प्रभावी स्थान दिया जाए। इस सत्ता की प्रतिष्ठा और अधिकार हमारे राजतन्त्र के वर्तमान तीन अंगों—विधायिका, न्यायपालिका एवं कार्यपालिका—के बराबर होने चाहिए।

इस प्रकार पुनर्गठित वित्तीय सत्ता ही राजनीतिक दबावों तथा अन्य बाह्य कारणों के प्रभाव से मुक्त रहकर पूर्ण रोजगार और मूल्यों के स्थिरीकरण के दीर्घकालीन द्वैत लक्ष्य की पूर्ति के लिए भलीभांति कार्य कर सकती है।

[30 अगस्त, 1969; दिल्ली, के०का०स०]

69.18. आर्थिक स्थिति

भारतीय जनसंघ एक ऐसी अर्थ-रचना में विश्वास करता है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति की न्यूनतम आवश्यकताओं और स्वतंत्रतापूर्वक उसके जीवनयापन करने

के अधिकार की आश्वस्ति हो। आर्थिक शक्ति के केन्द्रीकरण को (फिर वह कुछ व्यक्तियों या व्यक्तिसमूह के हाथों में केन्द्रित हो अथवा राज्य के) जनसंघ आर्थिक लोकतंत्र के विपरीत मानता है। वह ऐसी व्यवस्था की कल्पना करता है जिसमें उद्यम का विकेन्द्रीकरण करके रोजगार के अधिकतम अवसर उपलब्ध कराये जाएंगे। यह 'पूर्ण रोजगार' की दिशा में एक कदम होगा जिसके बिना हमारी जनता के लिए आर्थिक विकास का कोई अर्थ नहीं रहेगा।

द्वैत अर्थव्यवस्था—यह बड़े खेद का विषय है कि जिस तरह का आर्थिक विकास अब तक हुआ है उसने एक ऐसी व्यवस्था को जन्म दिया जिसे दो समानान्तर क्षेत्रों वाली दोहरी अर्थव्यवस्था कहा जा सकता है। एक क्षेत्र में साधनों की विपुलता, उन्नत तकनीक तथा विकास दिखाई देता है जबकि दूसरे क्षेत्र में निर्धनता, पिछड़ापन और गतिहीनता और ये दोनों क्षेत्र एक दूसरे के पूरक व पोषक न होकर दो विपरीत दिशाओं में काम कर रहे हैं, जिसके परिणामस्वरूप परम्परागत उद्योगों वाले दुर्बल क्षेत्र को क्षति पहुंच रही है।

आर्थिक विद्रूपताएं—यदि हमारा नियोजन वस्तुतः स्वदेशी होता जिसमें पूंजी-प्रधान अन्य कार्यक्रमों तथा भारी भरकम योजनाओं का समावेश न किया जाता तो वह मुख्यतया अपने साधनों पर आधारित तथा उनके पूर्ण उपयोग पर निर्भर होता। इससे हम विदेशी ऋण के कमरतोड़ भार से तथा अपने साधनों के भारी अनुपयोग की स्थिति से बच जाते। इससे हम निरन्तर के ऐसे परस्पर विरोधों से भी बच जाते जिनमें पूंजी की कमी के साथ औद्योगिक क्षमता का बेकार पड़ा रहना, व्यापक रोगों के साथ डाक्टरों का बेरोजगार होना, निर्माण के भारी कामों के साथ हजारों इंजीनियरों की बेरोजगारी और फिज़ूल खर्चों के भौंडे प्रदर्शन के साथ भीषण निर्धनता विद्यमान है। इस असन्तुलित विकास का यह परिणाम है कि उसके लाभ कुछ हाथों में चले गए हैं और बहुसंख्यक जनसमुदाय उनसे वंचित रह गया है।

आयात-निर्यात व्यापार पर नियंत्रण तथा लाइसेंस देने की पद्धति को इस ढंग से कार्यान्वित किया गया है जिससे आय के वितरण में विषमता तथा विकृति को बढ़ावा मिला है। इसका वर्तमान स्थिति के अतिरिक्त और कोई परिणाम नहीं हो सकता जिसमें व्यापक तनाव तथा श्रम-क्षेत्र में असन्तोष है। प्रति व्यक्ति अनाज, कपड़ा तथा खाद्य-तेलों की खपत कम हो रही है और ऐश्वर्य की वस्तुओं का द्रुत-गति से उत्पादन बढ़ रहा है। प्रति व्यक्ति आय की बढ़ोत्तरी रुद्ध हो गई है। मूल्य-वृद्धि के बोझ से मध्यम वर्ग कुचला जा रहा है, भारी पैमाने पर करों की चोरी हो रही है और दूसरी ओर विपुल काला धन विद्यमान है, जबकि प्रामाणिक करदाता अत्यधिक परेशान किया जाता है। इसके बाद हमें जो कुछ मिलता है वह है कोरे समाजवादी नारों की घोषणा।

भारतीय जनसंघ विश्वास करता है कि वर्तमान आर्थिक स्थिति एक सच्ची नयी रचना की मांग करती है जिससे स्वस्थ तथा समन्वित आर्थिक विकास को प्राप्त किया जा सके। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए जनसंघ निम्नलिखित सुझाव देता है :

(1) कृषि

(i) खाद्योत्पादन में शीघ्रातिशीघ्र आत्मनिर्भरता प्राप्त करना और इसके लिए सभी उपाय अपनाना, विशेषतया हरित क्रान्ति को देश के सभी कोनों तक पहुंचाना और कृषक को उसकी उपज के लाभदायक मूल्य की गारंटी देना।

(ii) किसानों विशेषतया छोटे उत्पादकों को बैंकों द्वारा पर्याप्त ऋण सुविधाएं देना और इसके लिए ऋणपात्रता की परिभाषा को बदलना।

(iii) जोत सीमा निर्धारण के कानूनों को दृढ़तापूर्वक लागू करना, जहां ऐसे कानून नहीं हैं वहां यह कानून बनाना और अतिरिक्त तथा खेतीयोग्य अनधिवासित जमीन भूमिहीनों विशेषतया परिगणित जातियों तथा अन्य पिछड़े वर्गों और भूतपूर्व सैनिकों में बांटना।

(iv) भूमि-सुधारों को प्रभावी रीति से कार्यान्वित करना जिससे पट्टे की सुरक्षा हो तथा बटाईदारों को उचित भाग मिल सके।

(v) खेती तथा जानवरों के लिए बीमे का प्रारम्भ करना।

(vi) खेतिहर मजदूरों के लिए न्यूनतम मजदूरी अधिनियम में उपबन्धित मजदूरी को बढ़ाना और अधिनियम को ठीक प्रकार लागू करना।

(vii) सिचाई की क्षमता के पूर्ण उपयोग के लिए सिंचाई तथा बिजली की दरों को कम करना।

(2) रोजगार—सभी स्वस्थ व्यक्तियों को पूर्ण रोजगार देने का कार्यक्रम अपनाना जिसके अन्तर्गत न केवल नये बेरोजगारों को अपितु पुराने बेरोजगारों के भी एक भाग को काम दिया जाए।

शिक्षित बेरोजगारों, विशेषत: तकनीकी शिक्षा प्राप्त नौजवानों को अपने पैरों पर खड़ा करने के लिए पूंजी, जमीन, मशीन तथा अन्य सुविधाएं उपलब्ध कराना जिससे वे छोटे उद्योग-धंधे कायम कर सकें।

(3) उद्योग तथा श्रम

(i) उत्पादन की वृद्धि के लिए सभी प्रयास करना, औद्योगिक विकास को अदक्ष तथा पेचीदा प्रशासनिक विलम्बों के शिकंजे से छुड़ाना और उन सभी उद्योगों को प्रतिबन्धों से मुक्त करना जिनके लिए न विदेशी मुद्रा की आवश्यकता है और न जिनमें एकाधिकार की प्रवृत्तियों को बढ़ावा मिलने का डर है।

(ii) विदेशी सहकार्यों के सभी समझौतों के आधार तथा कार्यान्वयन की जांच के लिए एक उच्चाधिकार सम्पन्न आयोग की नियुक्ति करना जो इस बात का पता लगा सके कि उनका हमारी अर्थव्यवस्था पर क्या परिणाम हुआ है।

(iii) विदेशों में बसे हुए जो भारतीय भारत में धन लगाने के इच्छुक हैं, उन्हें प्रोत्साहन देना।

(iv) सार्वजनिक क्षेत्र के संस्थानों को कार्यक्षम तथा लाभदायक बनाने के लिये पग उठाना।

(v) वर्तमान में बेकार पड़ी औद्योगिक क्षमता का पूर्ण उपयोग करना।

(vi) ग्रामीण क्षेत्रों में खेती पर आधारित उद्योगों तथा छोटे-छोटे कल-कारखानों का जाल फैलाना जिससे देहात के नौजवानों को काम मिल सके।

(vii) चाय, दवायें, साबुन, माचिस, वनस्पति, जूट तथा सिगरेट बनाने वाली विदेशी कम्पनियों का भारतीयकरण तथा विदेशी बैंकों का राष्ट्रीयकरण करना।

(viii) मजदूरों को प्रबन्ध तथा लाभ में सहभागी बनाना और मूल्य-वृद्धि के अनुपात में महंगाई भत्ता देकर वास्तविक मजदूरी का संरक्षण करना।

(ix) तृतीय वेतन आयोग के विचार क्षेत्र के सम्बन्ध में कर्मचारियों से परामर्श करना, राष्ट्रीय श्रम आयोग की सिफारिश के अनुसार उन्हें, अन्तरिम राहत देना, और रेल कर्मचारियों के लिए एक पृथक मजदूरी बोर्ड बनाना।

(4) कराधान—कर सम्बन्धी कानूनों का सरलीकरण करना जिससे छिद्रों को भरा जा सके, चोरी को रोका जा सके तथा करों का बकाया वसूल किया जा सके और समूची पद्धति का वैज्ञानिकन (Rationalisation) करना तथा कर-संग्रह करने वाले तन्त्र को अधिक दक्ष बनाना, जिससे ईमानदारी से कर देने वालों की रक्षा की जा सके, भ्रष्टाचार का निवारण हो और विषमताओं में कमी हो सके।

(5) आयात और निर्यात

(i) कम्युनिस्ट देशों के साथ रुपये की अदायगी के आधार पर चलने वाले समस्त विदेशी व्यापार को हाथ में लेना।

(ii) आयात-निर्यात के लिए लाइसेंस देने में व्याप्त अनियमितताओं, भ्रष्टाचार तथा पक्षपात की जांच के लिए एक उच्चाधिकार आयोग की नियुक्ति।

(6) आवास-निर्माण निगम

(i) मकानों के निर्माण का एक विशाल कार्यक्रम प्रारम्भ करना; उसके लिए जीवन बीमा निगम तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं से अल्प तथा मध्य आय वाले लोगों के लिए सस्ते ऋण की व्यवस्था तथा विकसित जमीन का प्रबन्ध करना जिससे प्रत्येक परिवार के लिए एक अपना मकान उपलब्ध कराने का उद्देश्य प्राप्त हो सके।

(ii) सहकारी आवास-निर्माण समितियों को बढ़ावा देना तथा प्रत्येक राज्य में आवास-निर्माण निगम की स्थापना करना जो मकानों के बौंड जारी करके धन एकत्र करे, मकान बनाए और उन्हें बिना हानि-लाभ के किराया-क्रय के आधार पर हस्तान्तरित करे।

(iii) सार्वजनिक संस्थानों तथा औद्योगिक प्रबन्धों के लिए अपने कर्मचारियों के लिए मकान बनाना अनिवार्य करना।

(iv) शहरी सम्पत्ति के केन्द्रीकरण को कम करने तथा मकानों के स्वामित्व को विकेन्द्रित करने के लिए कदम उठाना।

स्वदेशी की भावना—उपर्युक्त पगों की सफलता के लिए भारतीय जनसंघ सम्पूर्ण देश से आह्वान करता है कि स्वदेशी की भावना को पुनर्जीवित कर देश भर में अपने देश की वस्तुओं, साधनों व तकनीकी योग्यताओं के उपयोग को बढ़ावा देने का व्रत लें।

[28 दिसम्बर, 1969; पटना, सोलहवां सा०अ०]

70.02. 1970-71 का जन-विरोधी तथा विकास-विरोधी बजट

भारतीय कार्यसमिति का यह सुनिश्चित मत है कि आगामी वर्ष का बजट न तो प्रगतिवादी है और न विकासोन्मुख; यहां तक कि वह दूरगामी दृष्टि से भी तैयार नहीं किया गया है, अपितु वह प्रतिगामी और जन-विरोधी बजट है। इस बजट से इन्दिरा सरकार का वास्तविक स्वरूप सामने आ गया है कि वह किस प्रकार कमजोर वर्गों के लिए कठोर तथा पैसे की जीवनदायिनी सहायता देने वाले निहित स्वार्थों की दासी है। स्वतंत्रता के पश्चात यह पहला अवसर है जबकि किसी वित्त मंत्री ने आम आदमी पर करों का इतना भारी बोझ, और वह भी बिना किसी हालात की मजबूरी के, लादा है। सन् 1963-64 के बजट में 300 करोड़ रु० से अधिक (अनिवार्य बचत मिलाकर) का अतिरिक्त कर-भार प्रस्तावित किया गया था, किन्तु उस समय चीन के आक्रमण के कारण प्रतिरक्षा व्यय में अचानक भारी व्यय की बढ़ोतरी (1962-63 की तुलना में प्रतिरक्षा व्यय 365 करोड़ रु० अधिक था) का स्पष्ट कारण हमारे सामने था। इसके बाद भी वित्त मंत्री ने

यह स्वीकार किया था कि उनके प्रस्तावों के कारण जनता पर 'असामान्य भार' पड़ा है और उन्होंने अपने भाषण में लोगों से 'कष्ट उठाने' के लिए कहा था और इस बात पर बल दिया था कि यदि विकास की आकांक्षा को तिलांजलि तथा मुद्रा-स्फीति की शक्तियों को बढ़ावा दिये बिना चीन की चुनौती का सामना किया जाना है तो इतना कर-भार टाला नहीं जा सकता। किन्तु वर्तमान कर-प्रस्ताव समाज के कमजोर वर्गों की भलाई की दुहाई से प्रारम्भ होते हैं और आय, उपभोग तथा सम्पत्ति की अधिकतम समानता के आदर्श का आह्वान करते हुए समाप्त होते हैं। यह स्थिति जले पर नमक छिड़कने के समान है। यदि इन करों के साथ रेल किराये और भाड़े, विशेषतः तीसरे दर्जे के मुसाफिरों के लिए बढ़ी दरों (जो अब वापिस ले ली गई हैं) को और मिला दिया जाए तो जिस कथित समाजवाद के आगमन का शोर मचाया जा रहा है, उसका पर्याप्त डरावना स्वरूप सामने आ जाता है।

बढ़े हुए करों और भाड़े की दरों में वृद्धि के फलस्वरूप मूल्यों में जो बढ़ोतरी होगी वह नमक पर 5% से लेकर चीनी पर 15% तक, बिजली के सामान पर 6% से लेकर धातुओं की वस्तुओं पर 14% तक और इस्पात-इतर धातुओं के मूल्य में 30% तक अनुमानित है। इसी प्रकार पैट्रोल तथा उससे बनी हुई चीजों के मूल्य 11% और प्लास्टिक के 14% बढ़ गए हैं। हाल ही में इस्पात के दाम 75 रु० प्रति टन औसत के हिसाब से बढ़ाए गए हैं। वनस्पति तेल की कीमतों में भी इसी प्रकार वृद्धि की गई है। इन वृद्धियों तथा अन्य बातों का स्वाभाविक परिणाम यह होगा कि चाय, साबुन, बर्तन, सिगरेट, दवाई, प्लास्टिक की सामान्य वस्तुओं, बसों और यातायात के दूसरे साधनों के किराये, टेलीफोन, डाक तथा तार आदि की दरें बहुविधि बढ़ जाएंगी, जिससे उपभोक्ता के लिए महंगाई का भार कहीं अधिक हो जाएगा। सरकार के हिमायतियों का यह दावा कि उपभोक्ता वस्तुओं के मूल्य में कोई वृद्धि नहीं होगी और यदि हुई तो 'मामूली-सी' होगी, निपट धूर्ततापूर्ण है।

बजट में 225 करोड़ रु० का भारी घाटा अपूर्ण छोड़ दिया गया है। संभावना यह है कि यह घाटा और अधिक बढ़ेगा क्योंकि वर्तमान करों से आय का अनुमान काफी बढ़ाकर लगाया गया है। बजट में राज्यों को किसी वित्तीय अनुशासन में बांधने का कोई विचार नहीं दिखाई देता। हाल में विभिन्न राज्यों द्वारा प्रस्तुत किये गए बजटों से यह स्पष्ट है कि वे नये साधन जुटाने में कतराते हैं और घाटे का बजट बनाने का ही सहारा ले रहे हैं। इससे मुद्रा का फैलाव अधिक होगा, मूल्य बढ़ेंगे और जन-साधारण पर भारी बोझ पड़ेगा।

किन्तु प्रचार यह किया जा रहा है कि इस बजट में समाज के कमजोर वर्गों के लिए राहत दी गई है। समाचार-पत्रों के एक वर्ग तथा कम्युनिस्ट प्रचारकों

द्वारा इस बजट की तारीफ के जो पुल बांधे जा रहे हैं, वे ध्यान देने योग्य हैं। बजट में निजी सामूहिक क्षेत्र को बिल्कुल स्पर्श नहीं किया गया जबकि निर्धन नागरिकों का कचूमर निकाला गया है। इससे स्पष्ट यह है कि श्रीमती गांधी सोने का अंडा देने वाली मुर्गियों का पालन करने का महत्व अच्छी प्रकार जानती हैं। आय-कर की सीमा को 200 रु० आगे बढ़ाकर जो राहत दी गई है वह नगण्य है। विदेशी सहायता पर निर्भरता ज्यों की त्यों बनी हुई है। आयात नीति को तर्कसंगत बनाने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया है। 40 हजार तक की आमदनी की सीमा निर्धारित करके मंत्रियों—वे कर अदा करने वाले हों, अथवा कर अदा करना भूल जाने वाले—और ऊंचे अफसरों को अधिक कर देने से बचा लिया गया है। किन्तु ऊपर की श्रेणी के टैक्सों की दरों में वृद्धि से आमदनी बढ़ने के बजाय करों की चोरी ही बढ़ेगी।

कर्मचारियों तथा उनके परिवारों की न्यूनतम पेंशन में वृद्धि, औद्योगिक मजदूरों के प्रोविडेंट फण्ड में—सरकारी अंशदान तथा स्कूलों में बच्चों के आहार के लिए 4 करोड़ रु० का प्रावधान ठीक दिशा में उठाए गए पग हैं। परन्तु ये पग इतने न्यून हैं कि इनमें समाज कल्याण की अपेक्षा राजनीतिक लाभ उठाने का उद्देश्य ही अधिक दिखाई देता है। बजट में आर्थिक दृष्टि से जो कमी है उसकी पूर्ति राजनीतिक चतुराई से पूरी करने का यत्न किया गया है। बजट का सबसे बड़ा दोष यह है कि अर्थव्यवस्था के सबसे बड़े रोग अर्थात निरन्तर वर्द्धमान बेरोजगारी के सम्बन्ध में, जिसके प्रति सरकार गत अनेक वर्षों से आंखें मूंदकर बैठी है, उसमें कुछ भी नहीं किया गया है। जो सरकार सामाजिक कल्याण तथा विकास की कसमें खाती है, किन्तु जो 3 करोड़ 40 लाख बेरोजगारों, जिनमें 70 हजार इंजीनियर शामिल हैं और जिनकी शिक्षा पर भारी व्यय हुआ है, की ओर से आंखें फेर लेती है, वह सरकार अपने सभी दावों को हास्यास्पद बना देती है।

बजट इसलिए भी निराशाजनक है कि उसमें परिगणित जातियों और जन-जातियों तथा समाज के कमजोर वर्गों के लिए आगामी 1975 तक न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति का कोई आश्वासन नहीं दिया गया है।

अतः कार्यसमिति का मत है कि इस वर्ष का बजट जन-विरोधी तथा विकास-विरोधी है। उससे न तो अर्थव्यवस्था को नयी दिशा मिलती है और न राष्ट्र को किसी लक्ष्य की ओर आगे बढ़ने का प्रोत्साहन प्राप्त होता है। भारतीय कार्यसमिति मांग करती है कि :

(i) अधिकतम जोतों के कानूनों के अन्तर्गत जिन बागानों तथा यंत्रीकृत फार्मों को—फिर वे निजी हों अथवा सहकारी—छूट दी गई है, उनके ऊपर यदि उनकी आमदनी 25 हजार रु० से अधिक है तो विशेष कर

लगाया जाए।

(ii) सभी उत्पादन-शुल्क तथा रेल भाड़े में वृद्धि, जिनका परिणाम जन-साधारण के पारिवारिक बजट पर होता है, वापिस ले लिया जाए।

(iii) उर्वरक पर जो उत्पादन कर गत वर्ष बढ़ाया गया था, उसे समाप्त किया जाए, जिससे उर्वरकों की खपत बढ़े और छोटे किसान उससे लाभान्वित हो सकें।

(iv) आयात के लाइसेंस देने की पद्धति में परिवर्तन करने तथा उसमें व्याप्त भ्रष्टाचार को समाप्त करने के लिए एक स्वायत्त निगम बनाया जाए तथा जिन वस्तुओं के आयात में भारी मुनाफा है उन पर भारी आयात शुल्क लगाया जाए।

(v) आय-कर की छूट की सीमा को, जैसा कि भूथलिगम कमेटी ने कहा है 7,500 रु० किया जाए और इस परिवर्तन से आय-कर विभाग के जो कर्मचारी खाली हों, उन्हें बड़ी व्यापारिक आय वालों की पूरी छानबीन करने पर लगाया जाए जिससे करों की विशाल चोरी को रोका जा सके।

(vi) शान-शौकत तथा ऐश्वर्यपूर्ण उपभोग को नियंत्रित करने के लिए व्यय-योग्य आय की सीमा निर्धारित की जाए और इसके लिए एक उपभोक्ता कर लगाया जाए।

(vii) सरकार के प्रशासनिक व्यय में 7% की कमी करने और सभी प्रकार के अपव्यय को कम करने के लिए प्रामाणिकतापूर्ण प्रयत्न किये जाएं।

(viii) ग्रामीण क्षेत्रों में सार्वजनिक निर्माण का एक प्रभावी कार्यक्रम बनाया जाए, जिससे रोजगार के अवसर बढ़ सकें तथा कृषि पर आधारित उद्योगों के विकास के लिए साज-सामान तैयार हो सके।

(ix) निश्चित आमदनी वाले वर्गों, विशेषतः कर्मचारियों तथा मजदूरों को जिन्हें मूल्य वृद्धि के कारण कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है, अविलम्ब राहत दी जाए। गत 12 महीनों में मूल्यों में 7% वृद्धि हुई है और बजट के परिणामस्वरूप इसमें और बढ़ोतरी की संभावना है।

[7 मार्च, 1970; अहमदाबाद, के०का०स०]

70.06. अविलम्बनीय आर्थिक कार्यक्रम

भारतीय जनसंघ *"शतहस्त समाहर, सहस्रहस्त संकिर"* (अथर्ववेद) के पुरातन भारतीय आदर्श के अनुसार एक समतायुक्त समाज की स्थापना के लिए

दृढ़ संकल्प है। यह मानते हुए कि आर्थिक सत्ता का केन्द्रीकरण आर्थिक लोकतंत्र से कदाचित मेल नहीं खाता, जनसंघ निजी और राजकीय दोनों प्रकार के पूंजीवाद के विरुद्ध है। वह आर्थिक प्राधिकार के विकेन्द्रीकरण में विश्वास रखता है।

अधिकतम उत्पादन तथा समान वितरण—अधिकतम उत्पादन और समानतर वितरण के राष्ट्रीय आदर्श को ध्यान में रखते हुए जनसंघ की देहाती क्षेत्र के लिए यह मांग है कि भूमि की अधिकतम जोत से सम्बद्ध कानूनों का कड़ाई से और निश्चित अवधि के भीतर कार्यान्वयन किया जाए। बची हुई और खेती-योग्य बंजर भूमि को भूमिहीन कृषकों में, विशेषकर अनुसूचित जातियों, वनजातियों, अन्य पिछड़े वर्गों और भूतपूर्व सैनिकों में बांटा जाए तथा उस भूमि पर उनके स्वामित्व के अधिकारों का संरक्षण किया जाए किन्तु उन पर यह उपबन्ध हो कि वह जमीन बेच नहीं सकेंगे। बटाईदारों के लिए जोत की सुरक्षा तथा उचित शेष भाग का प्रबन्ध हो। कृषि श्रमिकों के लिए उपयुक्त न्यूनतम वेतन तथा खेती की उपज में साझेदारी हो। छोटे काश्तकारों के लिए सस्ती दर पर पर्याप्त ऋण की व्यवस्था हो। सिंचाई और बिजली की दरों में कमी की जाए तथा हर राज्य में पैदा होने वाली विद्युत शक्ति का एक अंग कुटीर एवं छोटे उद्योगों के लिए आरक्षित किया जाए, सस्ते दामों पर उर्वरक दिये जाएं, तथा छोटी एवं मध्यम सिंचाई योजनाओं को बढ़ाया जाए। फसलों एवं पशुओं का बीमा किया जाए। पशुओं द्वारा खेती करने वालों को विशेष रूप से सहायता दी जाए। गोहत्या पर प्रतिबन्ध लगाया जाए तथा गोसंवर्धन के लिए ठोस पग उठाये जाएं। कृषि पर आधारित व अन्य सम्बद्ध उद्योगों की स्थापना की जाए और सभी प्रमुख फसलों के लिए उचित मूल्य की गारंटी हो।

आवास स्वामित्व का वितरण—शहरी क्षेत्र के लिए जनसंघ यह मांग करता है कि शहरी संपत्ति के संकेन्द्रण को कम करने और मकानों के स्वामित्व का अधिकाधिक विकीरण करने के लिए पग उठाये जाएं। विदेशी बैंकों का तथा कम्युनिस्ट देशों के साथ होने वाले व्यापार का भी राष्ट्रीयकरण हो। सभी विदेशी उद्योगों का भारतीयकरण किया जाए। विदेशों के साथ संयुक्त सहकार्य के सभी समझौतों की जांच की जाए। सार्वजनिक उद्योगों के लिए स्वायत्तता और जवाबदेही में संतुलन स्थापित हो। राष्ट्रीयकृत क्षेत्र को मजबूत बनाया जाए। वर्तमान में बेकार पड़ी हुई औद्योगिक क्षमता का पूरा उपयोग किया जाए। सभी उद्योगों का क्रमशः श्रमीकरण हो। सभी श्रमजीवियों को आवश्यकता पर आधारित न्यूनतम वेतन और वास्तविक वेतन की गारंटी हो। सभी प्रशिक्षित बेरोजगार इंजीनियरों, प्रौद्योगिकों, और नये तथा छोटे उद्यमियों के हित में ऋण-नीति बनायी जाए, कराधान के कानून को सरल बनाया जाए, तस्कर व्यापार को समाप्त करने के लिए प्रभावी पग उठाये जाएं, विभिन्न प्राधिकरणों और वित्तीय संस्थाओं

द्वारा आवास-निर्माण का एक विशाल कार्यक्रम हाथ में लिया जाए और उत्पादन-प्रक्रिया के विकेन्द्रीकरण के लिए एक स्वदेशी प्रौद्योगिकी का शीघ्रतर विकास किया जाए।

जनसंघ अपनी इस मांग को दोहराता है कि एक उपभोग-कर लगाया जाए और खर्च की जा सकने वाली आय में 1 और 20 का अधिकतम अनुपात हो।

औद्योगिक स्वामित्व के बारे में राष्ट्रीय आयोग—जनसंघ का यह मत है कि औद्योगिक स्वामित्व के प्रकारों के सम्बन्ध में निश्चित कसौटी तय करने के लिए एक राष्ट्रीय आयोग की अविलम्ब स्थापना की जाए जो इस बात के आधार तय करे कि किसी उद्योग का राष्ट्रीयकरण होना चाहिए या सहकारीकरण, वह कार्यपालिका के हाथ में रहना चाहिए या संयुक्त उद्योग के रूप में चलना चाहिए, सरकार के नियंत्रण से निकालकर किन्हीं औद्योगिक सेवाओं और विभागों को सार्वजनिक संस्थाओं द्वारा चलाया जाना चाहिए अथवा नहीं।

स्वायत्त लायसेंस्स बोर्ड—सत्तारूढ़ दल राष्ट्रीयकरण के नाम पर अथवा अन्य जिन बहानों की आड़ में आर्थिक अधिनायकवाद की स्थापना करने का प्रयत्न कर रहा है उन पर जनसंघ गहरी चिंता अनुभव करता है। प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में औद्योगिक लाइसेंस देने वाली समिति का गठन इसी दिशा में नया कदम है। एक ही व्यक्ति के हाथ में अधिकतम आर्थिक शक्ति को जमा करने के लिए ही यह निर्णय हुआ है। स्पष्ट है कि इस स्थिति का पूरा राजनैतिक लाभ उठाया जाएगा। जनसंघ मांग करता है कि उस कमेटी को अविलम्ब भंग किया जाए और संसद के प्रत्यक्ष नियंत्रण में इस कार्य के लिए तथा आयात लाइसेंस देने के लिए एक स्वायत्त बोर्ड की स्थापना की जाए। वास्तव में सभी परमिटों और लाइसेंसों का काम ऐसे बोर्ड के ही सुपुर्द होना चाहिए।

अंधाधुंध राष्ट्रीयकरण की धुन सत्तारूढ़ दल के दिल में समायी हुई अधिनायकवादी प्रवृत्ति से ही उत्पन्न होती है। बैंकों के राष्ट्रीयकरण से एक स्पष्ट शिक्षा मिलती है, जिसमें एक चेतावनी भी छिपी हुई है। यह सर्वविदित है कि बैंकों के राष्ट्रीयकरण के बाद जो पग उठाये जाने चाहिए थे वह नहीं उठाये गए। बैंकों की ऋण-नीति स्पष्टतया निर्धारित नहीं की गई और न ही उन्होंने जन-सेवा के लिए कोई और विशेष सुविधा दी है। बैंक-जमा की वृद्धि की दर में कमी आ गई है। वास्तव में सरकार के हाथ में बैंक नौकरशाही के सभी दोषों का शिकार बन गए हैं।

चौथी योजना—जनसंघ को यह देखकर खेद होता है कि बजट के दोषों के कारण मूल्यों के बढ़ने की जो आशंकाएं हमने व्यक्त की थीं, वह सच साबित हुईं बजट के पूर्व प्रस्तुत आर्थिक समीक्षा में पिछले साल में हुई 7% की मूल्य वृद्धि को स्वीकार किया गया था, उसके बाद नये वित्तमंत्री ने मान लिया है कि 15 से

20% कीमतें और बढ़ गई हैं। इस संदर्भ में दिखायी देता है कि चालू वर्ष के नये और भारी करों के बाद इस साल 850 करोड़ रु० के घाटे की वित्तीय व्यवस्था का प्रावधान किया गया है जो कि मूल्यों को और अधिक बढ़ाएगा। यह आशंकाएं इसलिए और अधिक गम्भीर हो जाती हैं कि दूसरी योजना में और उसके बाद की तीनों वार्षिक योजनाओं में घाटे की वित्त-व्यवस्था का जितना प्रावधान किया था, वास्तविक राशि उससे दुगुनी से भी कहीं अधिक थी। चौथी योजना में मूल्य नीति के सम्बन्ध में किसी अध्याय तक का भी न होना मानो इस बात का लक्षण है कि योजना के रचनाकारों ने इस सम्बन्ध में हार मान ली है।

चौथी पंचवर्षीय योजना से हमें पूरी निराशा हुई है। उससे प्रकट होता है कि पिछली पंचवर्षीय योजनाओं से योजना आयोग ने न तो कुछ सीखा है और न कुछ भुलाया है। आगामी काल में प्रति व्यक्ति आय में 3% वार्षिक वृद्धि की आश्वस्ति का कोई आधार उसमें नहीं मिलता। औद्योगिक उत्पादन में जिस 9% की बढ़ती की आशा इन वर्षों में रखी गई है वह असन्तोषजनक होने के अतिरिक्त सरकार की वर्तमान नीतियों के रहते असंभव मालूम होती है। योजना काल के लिए 5·5% प्रति वर्ष कुल विकास की दर तय की गई है। परन्तु यह सचमुच में ही प्राप्त हो सके इसके लिए पर्याप्त व्यवस्था नहीं की गई है। जनसंघ का मत है कि देश के साधनों पर व जनशक्ति का अधिकतम उपयोग करने पर 10% वार्षिक विकास दर प्राप्त करना सम्भव होना चाहिए और यह हो सकता है।

यद्यपि विदेशी सहायता को छोड़ने के इरादे की घोषणा फिर से की गई है, तो भी चौथी योजना में अधिक विदेशी सहायता को मानकर चला गया है—जबकि आज इस सम्बन्ध में स्थिति विशेष आशाजनक नहीं है। धारणा यह मालूम होती है कि उसके बढ़ते हुए उपयोग के बाद एकाएक यह उपयोग पूरी तरह से समाप्त कर दिया जाएगा या किया जा सकता है। यह खेदपूर्ण है कि यह देखने का कोई प्रयास नहीं किया गया कि यह विदेशी सहायता हमें कितनी महंगी पड़ती है और इसके कारण हमारी अर्थव्यवस्था में कितनी विकृति उत्पन्न होती है, क्योंकि इससे (i) हमारे अन्दर की प्रेरणा-शक्ति समाप्त हो जाती है, (ii) आंतरिक मामलों में भी हमारे निर्णयों पर विदेशियों का प्रभाव पड़ता है, (iii) भारत की विदेशों से व्यापार करने की स्वच्छंदता मर्यादित हो जाती है, और (iv) हमारे वर्तमान उद्योगों को चालू रखने के लिए (जिनमें आयात जरूरी हैं उनके लिए भी) हमें दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता है। जनसंघ का यह विश्वास है कि हमें जो भी विदेशी प्रौद्योगिकी और उपकरण चाहिए वे सब यदि हम विश्व भर से खुले टेंडरों के द्वारा लें तो तथाकथित सहायता से कहीं सस्ती और अनुकूल शर्तों पर वह हमें मिल सकेगी।

चौथी योजना के बारे में सबसे दुर्भाग्यपूर्ण तथ्य यह है कि आर्थिक क्षेत्र में हमारे राष्ट्र के सामने आज जो सबसे बड़ी चुनौती है उसका सामना करने का यह प्रयत्न नहीं करती। हमारे संविधान में अंकित 'राज्य-नीतियों के निदेशक सिद्धान्त' अन्य बातों के साथ यह आदेश देता है कि "राज्य विशेष रूप से अपनी नीतियां इस लक्ष्य को सामने रखकर निर्धारित करेगा कि (क) नागरिकों, स्त्रियों तथा पुरुषों को समान रूप से आजीविका के लिए पर्याप्त साधन उपलब्ध हों" (अनुच्छेद 39) और "राज्य अपनी आर्थिक क्षमता और विकास की सीमाओं के अन्तर्गत काम, शिक्षा तथा बेरोजगारी, वृद्धावस्था, बीमारी और अशक्तता एवं अन्य प्रकार के अभावों की स्थिति में सरकारी सहायता के अधिकार के लिए प्रभावी उपबन्ध करेगा" (अनुच्छेद 41)। बेरोजगारी और रोजगार की समस्या के सम्बन्ध में सरकार और योजना आयोग ने जो अयथार्थवादी नीति अपना रखी है उसके भीषण परिणामों के विरुद्ध जनसंघ सरकार को बार-बार चेतावनी देता रहा है। जनसंघ के विचार को जो लोग अतिशयोक्तिपूर्ण, विकृत और तथ्यों का बड़े पैमाने पर गलत चित्रण कहकर रद्द कर दिया करते थे, उनकी उस विशेषज्ञ समिति के निष्कर्षों और सिफारिशों को पढ़कर आंखें खुल जाएंगी जो बेरोजगारी के अनुमानों की जांच करने के लिए योजना आयोग ने अगस्त 1968 में नियुक्त की थी। योजना आयोग ने उस समिति की सिफारिशों का बहाना बनाकर योजना के प्रारम्भ में कितनी बेरोजगारी है इसके आंकलन को सामने रखने की जिम्मेदारी से बचने की कोशिश की है। आयोग का काम था कि वह यह भी बताता कि इस योजना के काल में इसके वर्तमान स्वरूप के रहते कितने नये कारोबार का सृजन होगा। स्पष्ट है कि इन सब आवश्यक आंकड़ों के अभाव में चौथी योजना पूर्णतया योजनाहीन बनकर रह गई है, विशेषकर पूर्ण रोजगार के आदर्श की दृष्टि से। अपने जन्म से लेकर भारतीय जनसंघ इस प्रश्न की महत्ता और अविलंबनीयता पर बल देता रहा है। इसने समय-समय पर इस समस्या के समाधान के लिए उपाय भी सुझाये हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की सिफारिशें—जनसंघ को यह समाधान है कि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने विश्व रोजगार कार्यक्रम के सम्बन्ध में अपनी रिपोर्ट में जो निर्देश रेखाएं दी हैं वे इस संबंध में जनसंघ द्वारा घोषित नीतियों के बहुत कुछ अनुकूल हैं। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन समिति ने कहा है कि रोजगार के सृजन और आर्थिक विकास की गति को बढ़ावा—इन दोनों को एक साथ लिया जाए और इसके लिए उपलब्ध श्रम का अधिकतम उत्पादक उपयोग हो और विशेष रूप से जहां हो सके वहां दुर्लभ पूंजी के स्थान पर श्रम का इस्तेमाल किया जाए। उसने विकास के लिए एक व्यूह-नीति की सिफारिश की है जिसमें देहात के विकास के व्यापक कार्यक्रम, श्रम-गहन लोक-निर्माण कार्यक्रम, औद्योगिक

क्षमता का अधिक उपयोग, स्वदेशी और विदेशी मंडियों के लिए श्रम-गहन उद्योगों के उत्पादकों की बिक्री बढ़ाना और औद्योगिक उत्पादन में ऐसे श्रम-गहन तकनीकों का इस्तेमाल बताया है जो आर्थिक दृष्टि से सही हों। जहां यह एक निर्विवाद सत्य है कि पिछली तीन योजनाओं ने इस तरह की नीति नहीं अपनायी वहां चौथी योजना भी इस गलती से बच नहीं सकी है। बेरोज़गारी के प्रश्न पर सरकार की असफलता के लिए जो भी बहाने उसके द्वारा दिए गए हैं उनके खोखलेपन को जनसंघ पहले ही प्रकट कर चुका है। उदाहरणार्थ, हमने इस बात की व्याख्या की है कि कैसे प्रतिरक्षा और विकास में, निजी और सार्वजनिक क्षेत्र में, पूंजी-निर्माण और आर्थिक सत्ता के विकेन्द्रीकरण में अथवा रोजगार अवसरों की वृद्धि तथा श्रमिकों के वेतन संबंधी लक्ष्यों में कोई अन्तर्विरोध नहीं है। सरकार की दुर्भाग्यपूर्ण असफलता का वास्तविक कारण यह रहा है कि उसने हमारी राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था की विशेषताओं को सही प्रकार से समझकर एक यथार्थवादी नीति को नहीं अपनाया।

जनसंघ का यह सुविचारित मत है कि जहां इस समस्या का विस्तार असाधारण है वहां जनसंघ द्वारा सुझायी गई दिशा में सुदृढ़, संयोजित और सतत् प्रयास से बेरोजगारी को पूरी तरह निर्मूल किया जा सकता है। अतः जनसंघ इस लक्ष्य को ध्यान में रखकर चौथी योजना के पुनर्नियोजन की मांग करता है।

[18 जुलाई, 1970; चंडीगढ़, भा०प्र०स०]

70.08. आर्थिक स्थिति

भारतीय कार्यसमिति अनुभव करती है कि देश की आर्थिक स्थिति में लम्बे समय से चलते आ रहे तनाव कम होने के कोई लक्षण अभी नजर नहीं आ रहे हैं। जो आशंकाएं जनसंघ ने चालू वर्ष का बजट आने पर प्रकट की थीं वे सच साबित हो रही हैं और जो आश्वासन तत्कालीन वित्तमंत्री ने दिए थे, गलत सिद्ध हो रहे हैं। भरपूर कृषि उत्पादन के बावजूद कीमतें लगातार बढ़ती जा रही हैं। सरकार अपने नियंत्रण की वस्तुओं के दामों में भी एक के बाद एक वृद्धि करती जा रही है। बेरोजगारी की विभीषिका को काबू करने का कोई उपाय नहीं हो रहा। औद्योगिक संयंत्रों की निष्क्रिय क्षमता का उपयोग करके राष्ट्रीय उत्पादन को बढ़ाने का प्रयास ही नहीं दिखाई देता है। निर्यात के क्षेत्र में जो आशाजनक प्रगति आई थी वह लुप्त हो रही है।

सबसे बड़े दुर्भाग्य की बात यह है कि सरकार इन गम्भीर आर्थिक चुनौतियों का सामना करने के बजाय या तो सस्ते नारों से भूखी जनता का पेट भरने की कोशिश में या सब कुछ भुलाकर केवल अपने पदों के संरक्षण में तल्लीन दिखाई

देती है। प्रधानमंत्री ने सत्ता के सब सूत्रों को अपने हाथों में केन्द्रित कर लिया है। औद्योगिक लाइसेंसों का लोभ, कर-संग्रह में छूट, कर-अपवंचन सम्बन्धी जांच की धमकी और पकड़ में आ जाने पर दण्ड का भय, इन सबका उपयोग केवल दलगत हितों की पूर्ति और सत्तारूढ़ गुट के लिए पैसा इकट्ठा करने के लिए—बल्कि निजी स्वार्थों तक की सिद्धि के लिए भी किया जा रहा है। जहां सार्वजनिक क्षेत्र के कई संस्थान घाटे और अक्षमता में गले तक डूब रहे हैं और कुछ तो दिवालियेपन के कगार पर खड़े हैं, वहां सरकार उन्हें ठीक चलाने के स्थान पर उनका उपयोग भी राजनैतिक लाभ के लिए कर रही है।

दवाइयों की कीमतों को नियन्त्रित करने के नाम पर सरकार ने जो कुछ किया उससे कुछ एक को छोड़कर दवाएं न तो सस्ती हुई न सुलभ। इसके विपरीत औषधि निर्माताओं को यह अवसर मिल गया है कि रोगों के व्यापार में जनता को दोनों हाथों से लूटें। इस स्थिति में अनेक आरोप सरकार पर लग रहे हैं। भारतीय कार्यसमिति मांग करती है कि सारे गोलमाल की एक उच्च-स्तरीय जांच हो, जिससे यह निश्चित हो सके कि औषधि मूल्यों के इस कांड के लिए कौन लोग उत्तरदायी हैं।

बैंक राष्ट्रीयकरण के बाद—बैंकों के सरकारीकरण के बाद वे भी दलगत राजनीति का अखाड़ा बन रहे हैं। डाइरेक्टरों की नियुक्ति योग्यता अथवा अनुभव के स्थान पर सत्तारूढ़ लोगों की पसन्द, चुनावों की दृष्टि से जोड़-तोड़ अथवा अन्य क्षुद्र मन्तव्यों के आधार पर की जा रही है। ऋण देने में और पदाधिकारियों की नियुक्तियों व तबादलों में राजनैतिक प्रभाव आ गए हैं। राजस्थान प्रदेश जनसंघ द्वारा बैंक राष्ट्रीयकरण के पश्चात कृषकों के लिए उपलब्ध ऋण सुविधाओं का जो अध्ययन किया गया है उससे यह प्रकट हुआ है कि छोटे किसानों को कर्जा सुलभ नहीं हुआ। बल्कि आज उन्हें कर्जा लेने के लिए भ्रष्ट सरकारी अफसरों को खुश करने के साथ-साथ लालफीताशाही का शिकार भी बनना पड़ रहा है।

सबसे बढ़कर बैंकों के सबसे बड़े स्वामी के रूप में सरकार ने वित्तीय क्षेत्र में जो स्थान बना लिया है उसके आधार पर बैंकिंग के दैनन्दिन कार्य में सरकार का हस्तक्षेप शुरू हो गया है। परिणामस्वरूप रिजर्व बैंक की सार्वभौम सत्ता कम करके उसे सरकार के एक छोटे विभाग के स्तर पर पहुंचा दिया गया है, जिस पर कोई सरकारी अवर अधिकारी भी अपना आदेश चला सकता है। भारतीय जनसंघ एक स्वायत्त मौद्रिक-प्राधिकरण को लोकतन्त्र के चतुर्थ आधार स्तम्भ के रूप में आवश्यक समझता रहा है। उसका इस प्रकार अवमूल्यन देश के आर्थिक भविष्य के लिए चिन्ता का विषय है।

कार्यसमिति वेतन आयोग द्वारा दी गई अन्तरिम राहत को निराशाजनक

मानती है। बैंक कर्मचारियों को दी गई वेतन वृद्धि से शेष सरकारी कर्मचारियों (विशेष रूप से चतुर्थ श्रेणी के कामगरों) की महंगाई के पूर्ण निराकरण सम्बन्धी मांग का औचित्य और भी स्पष्ट हो गया है। कार्यसमिति इस मांग का पूरे बल से समर्थन करती है।

भारतीय कार्यसमिति का मत है कि खाद्य निगम के क्रय केन्द्र सब जगह न होने के कारण अन्न की कीमतें कम होने के परिणामस्वरूप किसान को घाटा होता है। इससे खाद्योत्पादन को धक्का लगने की संभावना है। इसलिए किसान किसी भी स्थिति में अपनी उपज के उचित मूल्य से वंचित न रहे, इसका प्रबन्ध सरकार को करना चाहिए।

हाल ही में सत्तारूढ़ कांग्रेस की ओर से एक वर्ष में 5 लाख लोगों को काम देने और प्रति परिवार 100 रु० मासिक आय प्राप्त करवाने की बात कही गई है। योजना के स्वरूप में कोई उपयुक्त बदल किये बिना रोजगार और आय का यह सृजन किस प्रकार होगा—यह किसी को स्पष्ट नहीं है। प्रधानमंत्री के दल को इसे स्पष्ट करने की आवश्यकता भी प्रतीत होती नहीं दिखाई देती क्योंकि उसका लक्ष्य तो किसी समस्या का हल करना नहीं, हल का स्वांग भरना मात्र है। कार्यसमिति अनुभव करती है कि बढ़ती हुई बेरोजगारी का प्रश्न जिस गंभीर चिन्तन और साहसपूर्ण उद्यम की अपेक्षा करता है वह अभी तक उसे उपलब्ध नहीं हुआ। यहां तक कि जिस किसी क्षेत्र में कर्मचारियों की कमी होती है वहां नये बेरोजगारों को काम देने के स्थान पर पुराने लोगों पर ही अतिरिक्त बोझ डालने का आसान मार्ग अपनाया जाता है।

भारतीय कार्यसमिति की राय में समय की मांग है कि सरकार इस कठिन आर्थिक स्थिति का संकीर्ण दोहन करने के बजाय दलीय भावना से ऊपर उठे और एक सही व दूरदर्शी नीति अपनाकर इसका निराकरण करे।

[6 नवम्बर, 1970; दिल्ली, के०का०स०]

71.04. 1971-72 के 'गरीबी बढ़ाओ' बजट प्रस्ताव

इस वर्ष केन्द्रीय बजट ने उन आशंकाओं को पुष्ट कर दिया है जो भारतीय जनसंघ ने मध्यावधि चुनाव के समय प्रकट की थीं। हमने तभी कहा था कि लोक-सभा के विसर्जन का प्रमुख कारण यह है कि श्रीमती इन्दिरा गांधी की सरकार जिन आर्थिक दुर्नीतियों पर चलती रही है उससे जहां बढ़ते दामों के बोझ ने सामान्य मनुष्य का जीवन दूभर कर दिया है वहां करों का एक नया कमरतोड़ बोझ भी अपरिहार्य हो गया है, और इसीलिए प्रधानमंत्री ने पहले ही लोगों से पांच साल का शासनाधिकार लेने के लिए पांसा फेंका है। यह सत्तारूढ़ दल का प्रचार-नैपुण्य

ही माना जाना चाहिए कि लोगों की आंखों में यह धूल डालने में वह सफल हो गया कि उनकी दिशारहित नीतियों का कारण यह रहा है कि उनका संसद में स्पष्ट बहुमत नहीं था। जब मतदाता से उन्हें भारी बहुमत प्राप्त हो गया तब हमने कहा कि अब देश की आर्थिक दुरावस्था के सुधार के लिए वे अपना कार्यक्रम प्रस्तुत करें; अब उनके कोई बहाने काम नहीं आएंगे। इस बजट से सिद्ध हो गया है कि उनके पास ऐसा कोई कार्यक्रम नहीं है।

अब तक की नीतियों की असफलता के लिए श्रीमती गांधी ने योजना आयोग को बलि का बकरा बनाया है यद्यपि वे स्वयं उसकी अध्यक्षा थीं और उसके यश-अपयश की भागी मुख्यतः वे ही थीं। परन्तु जिस अशोभनीय ढंग से उन्होंने आयोग के सदस्यों को बर्खास्त किया, उससे यह प्रश्न खड़ा हो गया है कि योजना आयोग का भावी स्थान क्या होगा? क्या वह विशेषज्ञों की एक स्वायत्त सत्ता रहेगी जो निर्भीकता और स्वतंत्र बुद्धि से कार्य कर सकेगी अथवा केवल जी-हजूरियों का एक गुट होगा जो योजना मंत्रालय द्वारा निर्दिष्ट रेखा पर हस्ताक्षर भर करता रहेगा? भारतीय प्रतिनिधि सभा का मत है कि आयोग की प्रतिष्ठा घटाना देश के स्थायी हित में नहीं है।

1971-72 के बचे हुए काल के लिए 220 करोड़ रु० के नये कर लगाए गए हैं जो कि 290 करोड़ रु० वार्षिक बनता है। चीनी आक्रमण के बाद प्रस्तुत 1963 के बजट को छोड़कर यह देश के इतिहास का सर्वाधिक बोझिल बजट है। यही नहीं, श्री चह्वाण ने परोक्ष करों का बोझ 'सीमित रखने' और प्रत्यक्ष करों पर, विशेषतया जो सम्पन्न वर्गों पर पड़ते हैं, 'केन्द्रित करने' का आश्वासन देने के बाद इस बोझ का 88% परोक्ष करों पर डाला है। इतना ही नहीं उन्होंने जिन वस्तुओं पर कर लगाए या बढ़ाए हैं उनमें सब प्रकार का कपड़ा, साबुन, तेल सिले-सिलाए वस्त्र, पैट्रोल, चीनी के बर्तन, सिगरेट, डिब्बों में बन्द सब्जियां आदि तो हैं पर रेफ्रिजरेटर, टेलीविजन सेट, बढ़िया शराब, आदि धनी वर्ग के काम की वस्तुएं नहीं हैं। रेल-भाड़े पहले ही बढ़ चुके हैं। हर चीज के परिवहन व्यय की वृद्धि और अनेक कच्चे मालों व मध्यम उत्पादों की कर-वृद्धि के बाद शायद ही कोई आवश्यकता होगी जो महंगी न हो जाए। उस पर 220 करोड़ रु० का घाटा जो कि लगभग निश्चित रूप से ही इससे कहीं ज्यादा होगा, बाकी कसर पूरी कर देगा। कीमतें बढ़ेंगी, बंधी आय वाले वर्ग पिसेंगे, आर्थिक विषमताएं भीषणतर होंगी, बचत हतोत्साहित होगी, वास्तविक उत्पादन के बजाय पूंजी सट्टे की ओर आकृष्ट होगी। विकास प्रायोजनाओं के सारे आंकलन अस्त-व्यस्त होते जाएंगे।

श्रीमती इन्दिरा गांधी ने गत चुनावों में 'गरीबी हटाने' के नाम पर समर्थन प्राप्त किया। इस बजट ने सिद्ध कर दिया है कि यह सब दिखावा मात्र था और गरीबी समाप्त करने का उनका इरादा नहीं है। न तो इस बजट में और न दूसरी

आर्थिक नीतियों में ही इंदिरा जी दरिद्रता-निवारण के लक्ष्य के लिए प्रयत्नशील दिखाई देती हैं। उसके लिए जहां यह आवश्यक है कि देश के सम्पूर्ण साधनों का पूर्ण उपयोग हो, वहां समस्त जनबल को भी कार्यरत करना होगा और अधिकाधिक उत्पादन, अधिकाधिक बचत और अधिकाधिक निवेश का वातावरण बनाकर प्रत्येक व्यक्ति को प्रोत्साहित करना होगा कि उद्यमी बनकर राष्ट्र के आर्थिक नव-निर्माण में साझीदार बनें। पूर्ण रोजगार और निम्नतम आय-वर्गों के लिए एक न्यूनतम उपभोग स्तर की आश्वस्ति के बिना आर्थिक उन्नति की सारी चर्चा भारत के विशाल जनसमुदाय के लिए अर्थशून्य है। ऐसी आश्वस्ति को उपलब्धि का रूप देना जहां केवल सरकार या नौकरशाही के बूते के बाहर की बात है वहां उपयुक्त वायुमण्डल बनाना सरकार की ही जिम्मेदारी है।

दुर्भाग्य की बात है कि इस वर्ष का बजट इस दृष्टि से भी निराशाजनक है। प्राथमिकता-प्राप्त उद्योगों की सूची में कटौती करके मोटर ट्रक और बसें, सीमेंट और रिफ्रैक्टरियां, सोडा ऐश आदि को निकाल दिया गया है जिनकी कमी अभी भी बनी हुई है। प्राथमिकता के कारण मिलने वाली छूट को भी घटा दिया गया है। नये शेयरों के लिए सम्पत्ति-कर की छूट और 1974 से विकास-छूट की समाप्ति का नोटिस दे दिया गया है। इन सब पगों से विकास कार्यक्रमों को धक्का लगेगा।

बजट के नये कर प्रस्तावों में से अनेक ऐसे हैं जिनसे छोटे-छोटे उद्योगों को आघात लगेगा। 'नट-एण्ड-बोल्ट' उद्योग पर लगे उत्पादन कर, हल्की व बढ़िया दोनों प्रकार की ऊन पर लगे मूल्यानुसार शुल्क व साइकिल टायरों पर कर इसके उदाहरण हैं। इसी प्रकार विलायकों (solvents) पर लगने वाले कर में 175% की वृद्धि से उनका उपयोग करने वाले छोटे उद्योगों के लिए संकट उत्पन्न हो गया है।

रुपये की घटती हुई क्रय-शक्ति से आय-कर मुक्ति सीमा को बढ़ाकर 7,500 रु० करने का पक्ष पहले से कहीं अधिक सबल हो गया है। यह तो नहीं हुआ, किन्तु 15,000 रु० के ऊपर की निजी आय पर अधि-कर ड्योढ़ा कर दिया गया है। पूंजी अधिलाभों पर कर बढ़ाया गया है और धन-कर भी बढ़ा है। यद्यपि बड़ी आयों और भारी सम्पत्ति पर कर लगाना उचित है, परन्तु यह याद रखना होगा कि कराधान प्रणाली ऐसी होनी चाहिए जो अपवंचन को बढ़ावा न दे। एक बार छिपाई गई आय छिपी-छिपी ही बढ़ती है और अन्ततः यह धन विलास के भोंड़े प्रदर्शनों में लगकर सार्वजनिक नैतिकता को विकृत करता है। इसका इलाज केवल दण्ड धाराओं को अधिक कठोर बनाना नहीं है क्योंकि जितनी वे कठोर होंगी उतना ही सरकारी कर्मचारियों के भ्रष्ट हो जाने का खतरा बढ़ जाएगा।

जहां एक ओर नया अप्रत्यक्ष कराधान मूल्यों को और बढ़ाएगा और निर्धन तथा मध्यम वर्गों को चोट पहुंचाएगा, वहां प्रत्यक्ष करों की बढ़ोतरी भ्रष्टाचार, काले धन और कर अपवंचन (जो प्रो० कैल्डर के अनुसार पहले ही से अकेली आय-कर में ही 300 करोड़ रु० तक अनुमानित है) को बढ़ाएगी। श्रीमती गांधी के नारे कितने भी लुभावने क्यों न रहे हों, इस बजट से स्पष्ट हो गया है कि उनकी सरकार के पास यह साहस नहीं है कि राजस्व प्राप्ति के लिए उन उपायों का सहारा ले जो उसके समर्थक निहित स्वार्थों को अप्रिय लगते हैं। वह शायद यह भी विश्वास करती हैं कि चुनाव पूर्व की उक्ति और चुनावोपरान्त की कृति में मेल रखना मूर्खों का लक्षण है और बुद्धिमान को तो लोगों की विस्मरणशीलता का ही भरोसा रखना चाहिए। इसीलिए गरीबी हटाने के भारी 'लोकादेश' (mandate) पर चुने जाने के बाद ही गरीबी बढ़ाने का यह अभियान शुरू करने में उन्हें तनिक भी संकोच नहीं हुआ।

भारतीय प्रतिनिधि सभा का यह सुविचारित मत है कि इस वर्ष का बजट देश की अर्थव्यवस्था को कोई स्वस्थ दिशा देने में पूर्णतया असफल होगा। कीमतों को बढ़ाने का इसका असर तो अभी से प्रकट हो गया है। इसमें सरकार के विकास इतर खर्चे को कम करने का कोई इरादा दिखाई नहीं देता। आज की कठिन आर्थिक स्थिति की मांग है कि सरकार जनता के सामने सादगी व मितव्ययिता का उदाहरण रखे। इसके लिए पहल राज्यपालों और मंत्रियों से होनी चाहिए। मुगलकालीन या विदेशी साम्राज्यशाही के लिए उपयुक्त सैकड़ों एकड़ों में फैले विलासयुक्त प्रासाद व आडम्बर के अन्य प्रकार, न भारत की सनातन परम्परा में ठीक बैठते हैं न आज की हमारी दरिद्रावस्था से मेल खाते हैं। प्रतिनिधि सभा यह मांग करती है कि उन्हें समाप्त किया जाए। इस प्रकार बचने वाली धनराशि देश के विकास के लिए प्रयुक्त की जाए।

बजट में बेरोजगारी की वृद्धि को रोकने का भी कोई लक्ष्य परिलक्षित नहीं होता। यदि 5·5% की प्रस्तावित विकास दर प्राप्त कर ली जाए तो भी पूर्ण रोजगार और हर व्यक्ति को एक न्यूनतम उपभोग की गारंटी मृगजल ही बने रहेंगे। इसके लिए कम से कम 10% की विकास दर की उपलब्धि आवश्यक है। इस लक्ष्य की सिद्धि के लिए साधनों का संग्रह इस प्रकार किया जाना आवश्यक है कि सामान्य व्यक्ति पर भार न बढ़े, करों की चोरी और काले धन के प्रसार को बढ़ावा न मिले और सामान्यतः उद्यम प्रोत्साहित हो। इस दृष्टि से भारतीय प्रतिनिधि सभा की मांग है कि बजट में लगाए गए उन सब कर-प्रस्तावों को वापिस लिया जाए जो आम आदमी पर पड़ते हैं।

साधन-वृद्धि के लिए सुझाव—दूसरी ओर साधनों की वृद्धि के लिए :

(i) आयातों पर मिलने वाले असामान्य लाभ को राजकोष के लिए

प्राप्त करने के वास्ते साधारणतः आयात-लाइसेंसों की नीलामी की पद्धति अपनायी जाए।

(ii) सट्टा, लाटरी आदि से प्राप्त होने वाली आकस्मिक आय पर कर लगाया जाए।

(iii) एक निश्चित सीमा के ऊपर उपभोग-व्यय पर भारी कर लगाया जाए।

(iv) सरकारी उद्योगों में लगी शेयर-पूंजी का अल्पांश, निजी व्यक्तियों के लिए खोल दिया जाए और इस प्रकार लगभग 1,300 करोड़ रु० के शेयरों से प्राप्त पूंजी का उपयोग इस साल के पूंजीगत बजट में 372 करोड़ रु० के घाटे को पूरा करने और नयी प्रायोजना प्रारम्भ करने के लिए प्रयुक्त किया जाए। वित्त मंत्री द्वारा प्रशंसित 'संयुक्त प्रयासों' का ही यह प्रकार होगा जो सरकार की ओर से जन्म लेंगे। अधिक उपयुक्त होगा कि ये शेयर बड़े समूहों में बेचे जाएं और सम्बद्ध संस्थान के कामगरों को प्राथमिकता से दिए जाएं ताकि उनका उससे अधिक तादात्म्य बने और प्रबन्ध तथा श्रम के पारस्परिक सम्बन्ध भी सुधरें।

(v) भारी कृषि-आयों पर कर लगाने की आवश्यकता को देखते हुए अधिकतम जोतों के कानूनों के अन्तर्गत जिन बागानों तथा यंत्रीकृत फार्मों को (फिर वे निजी हों अथवा सहकारी) छूट दी गई हैं, उनके ऊपर (यदि उनकी आमदनी 25 हजार रु० से अधिक है) तो प्रथम पग के रूप में विशेष कर लगाया जाए।

[2 जुलाई 1971; उदयपुर, सत्रहवां सा०अ०]

71.07. लोकसभा के मध्यावधि चुनाव के बाद आर्थिक स्थिति

गत फरवरी में हुए मध्यावधि चुनाव में सत्तारूढ़ कांग्रेस ने एक नयी अर्थनीति अपनाने के पक्ष में जनता का निर्णय चाहा था और अपरोक्ष रूप से अपनी पूर्व नीतियों की विफलता को स्वीकार किया था। तब से अब तक जो महीने बीते हैं उनसे पता लगता है कि खोखली नारेबाजी में संलग्न रहने की कांग्रेस की क्षमता में कोई कमी नहीं आई है। वर्तमान अर्थनीति पहले (प्रयुक्त किये गए तथा विफल सिद्ध हुए) शब्दजाल से भिन्न नहीं है।

विकास दर में भारी गिरावट इसका प्रमाण है—औद्योगिक विकास की दर में 7·50 से 1·50% की भारी कमी; योजना के भौतिक लक्ष्यों में 10 से 15% की गिरावट; केन्द्रीय वित्त योजना में 400 करोड़ रु० की कटौती;

रिजर्व बैंक से 950 करोड़ रु० के ओवर-ड्राफ्ट; तथा बेरोजगारी उन्मूलन कार्य-क्रम की शहरी तथा ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में पूर्ण विफलता।

मूल्यों में भारी वृद्धि—यद्यपि मूल्य गत 6 वर्षों से तेजी से बढ़ रहे हैं, किन्तु गत बजट में 500 करोड़ रु० के प्रचण्ड कर भार तथा घाटे की व्यवस्था ने उनमें काफी बढ़ोतरी की है। थोक मूल्यों का सूचकांक प्रायः सभी वस्तुओं के मूल्यों में भारी वृद्धि बताता है। वित्त मंत्रालय की एक रिपोर्ट के अनुसार 29 मई 1971 से 17 जून 1971 के बीच में आवश्यक वस्तुओं के मूल्यों में निम्न वृद्धि हुई :

	प्रतिशत
खाद्यान्न	3·9
दालें	8·8
चीनी	6·6
तम्बाखू	5·9
ईंधन, विद्युत, प्रकाश	5·3
तिलहन	5·2
सूती वस्त्र	9·1

गत वर्ष भी इन्हीं दिनों में थोक मूल्यों में असाधारण वृद्धि हुई थी यथा—दालें 6·7% चीनी 30·4% तथा सूती वस्त्र 14%।

यह सर्वविदित है कि थोक मूल्य सूचकांक सामान्यतया फुटकर मूल्यों की वृद्धि को कम करके बताता है। यद्यपि इन दिनों फलों तथा सब्जियों के थोक मूल्यों में कमी दिखाई जाती है, किन्तु सचाई यह है कि इन वस्तुओं के फुटकर दामों में काफी बढ़ोतरी हुई है। यह अनुमान लगाया गया है कि फुटकर मूल्यों के उचित आंकलन पर आधारित सूचकांक, सन् 1970-71 के बजट के पश्चात प्रति मास 3% अथवा एक वर्ष में 40% की वृद्धि बताएगा।

50 पैसे का रुपया—3 सितम्बर 1971 को समाप्त होने वाले वर्ष में रुपये की आपूर्ति में (जिसमें बैंकों के नियतकालिक जमाखातों में परिवर्तन शामिल है) 15·50% की भयावह दर से वृद्धि हुई है। इसके लिए मुख्यतः 1970-71 के बजट में भारी घाटा उत्तरदायी है। चालू वर्ष में और भी अधिक घाटा अपेक्षित है जिसके कारण मूल्यों में और अधिक बढ़ोतरी होगी। इसके साथ यदि भारी अतिरिक्त कर-भार लादा गया तो अप्रैल 1972 तक अर्थव्यवस्था एक गंभीर संकट में फंस जाएगी।

गत 10 वर्षों में रुपये की कीमत पहले ही 50 पैसे से कम रह गई है, जिससे आम आदमी अत्यधिक परेशान है। मूल्यों में और अधिक वृद्धि असहनीय होगी। जनसंघ ने जून 1971 में जनता को चेतावनी दी थी कि कर-प्रस्तावों के कारण दाम बढ़ेंगे। उस समय सरकारी प्रवक्ताओं ने दावा किया था कि मूल्य-वृद्धि

'मामूली' होगी। अब जो तथ्य उपलब्ध हैं उससे जनसंघ की चेतावनी सही सिद्ध हो गई है । यहां तक कि रिजर्व बैंक को भी अपनी ताजी रिपोर्ट में यह स्वीकार करना पड़ा है कि मूल्य स्थिति 'काबू के बाहर जा सकती है'।

इस चिन्ताजनक स्थिति के लिए बंगला देश संकट को दोष देना, जैसा कि सरकार कर रही है, अनुत्तरदायित्व तथा टालमटोल की पराकाष्ठा है। ऊपर जिन विफलताओं का उल्लेख किया गया है--उदाहरण के लिए, औद्योगिक उत्पादन में कमी, योजना के भौतिक लक्ष्यों का पूर्ण न होना, केन्द्रीय योजना सम्बन्धी व्यय का अनप्रयुक्त रहना, रिजर्व बैंक से ओवर-ड्राफ्ट, बेरोजगारी उन्मूलन के कार्यक्रम के लिए निश्चित धनराशि का खर्च न होना, आदि--ऐसे तथ्य हैं जिनका विस्थापितों के आगमन से कोई सम्बन्ध नहीं है ।

मुद्रास्फीति के कारण--जनसंघ आर्थिक स्थिति का गहराई से अध्ययन करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि वर्तमान मुद्रास्फीति के लिए मुख्यतया भारी कर-भार तथा अनुत्तरदायित्वपूर्ण घाटे की अर्थव्यवस्था दोषी है।

देश को आर्थिक समस्याओं पर एक नया तथा गतिमान दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है। जो समस्याएं एकत्र हो गई हैं उनका समाधान आवश्यक रूप से मूलगामी तथा समयानुकूल होना चाहिए ।

भारतीय जनसंघ की दृष्टि में वर्तमान आर्थिक स्थिति की निम्नलिखित समस्याएं ऐसी हैं जिनकी ओर तुरन्त ध्यान दिया जाना चाहिए :

(1) भयावह मुद्रास्फीति;
(2) औद्योगिक विकास की अल्प दर;
(3) कुशल तथा अकुशल व्यक्तियों, मशीनों तथा उद्योग की क्षमताओं का गंभीर रूप से अनप्रयुक्त रहना;
(4) आय की निरन्तर बढ़ती असमानता जिसके अन्तर्गत एक ओर बहुसंख्यक लोग गरीबी से भी गई बीती स्थिति में दिन गुजार रहे हैं और दूसरी ओर एक ऐसा वर्ग है जो भौंडी शान-शौकत से रहता है;
(5) 10,000 करोड़ रु० का भारी विदेशी ऋण और बचत की दर का अत्यन्त कम होना ।

इन प्रमुख समस्याओं को हल करने और इस प्रकार एक समतायुक्त समाज की रचना के लिए भारतीय जनसंघ मांग करता है :

(1) पूंजीनिवेश की प्राथमिकताओं में ऐसे परिवर्तन जो छोटे सिंचाई के साधनों, छोटे उद्योगों तथा एक संतुलित आणविक प्रौद्योगिकी प्रणाली के पक्ष में हों;
(2) साधनों के जुटाने तथा निर्णय लेने में दक्षता; और
(3) वित्तीय तथा मुद्रा सम्बन्धी नीतियों का पुनर्निर्धारण :

(i) आयात लाइसेंसों के वितरण में भ्रष्टाचार तथा पक्षपात की समाप्ति,
(ii) आयकर के निर्धारण में न्याय,
(iii) शान-शौकत को निरुत्साहित करना, और
(iv) सरकारी खर्च में कमी तथा सादगी ।

दस प्रतिशत विकास दर--*भारतीय जनसंघ का यह निश्चित मत है कि यदि नीति में इस प्रकार का परिवर्तन कार्यान्वित किया गया तो आत्मनिर्भरता, पूर्ण रोजगार तथा सभी नागरिकों के लिए एक स्वीकृत न्यूनमत जीवन-स्तर की गारण्टी के साथ-साथ आर्थिक विकास की दर 10% प्रतिवर्ष हो सकती है ।*

इस समय जो अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा संकट विद्यमान है वह भी अविलम्ब आत्मनिर्भरता की आवश्यकता पर बल देता है । अमेरिका तथा ब्रिटेन ने आयात पर क्रमशः 10% तथा 15% अधिभार लगाने का जो निर्णय किया है उससे और ब्रिटेन द्वारा साझा बाजार में शामिल होने के प्रयत्नों से आंग्ल-अमेरिकी बाजारों पर तथा मुद्रा प्रणाली पर, भारतीय व्यापार और रुपये की निर्भरता में कमी करने का महत्व स्पष्ट हो जाता है ।

उपभोक्ता सहकारिताएं--सरकार को ऐसी मूल्य नीति का विकास करना है जो उपभोक्ता के लिए उचित और उत्पादक के लिए प्रोत्साहक हो । वर्तमान मुद्रास्फीति को नियंत्रित करने के लिए जनसंघ की मांग है कि सरकार उचित मूल्य की दुकानों का जाल बिछाये और उपभोक्ता सहकारी समितियों के गठन में सहायक हो ।

जनसंघ सरकार को चेतावनी देता है कि जिन कदमों का राग अलापा जा रहा है, जैसे कण्ट्रोल लादना, मजदूरी की वृद्धि पर अंकुश लगाना--इनसे अर्थव्यवस्था को और अधिक क्षति पहुंचेगी और अभाव, भ्रष्टाचार तथा चोर-बाजारी को प्रोत्साहन मिलेगा ।

8·33 प्रतिशत बोनस--जनसंघ की मांग है कि मजदूरों को राहत देने के लिए बोनस की दर कम से कम 8·33% की जाए।

[9 अक्तूबर, 1971; मद्रास, के०का०स०]

71.09. सम्पत्ति सीमा और आर्थिक नीति संबंधी वक्तव्य

देश के सम्मुख अत्यन्त गंभीर रूप से बढ़ते हुए मूल्यों की समस्या पैदा हो गई है । थोक वस्तुओं का मूल्य सूचकांक जो मार्च 1971 में 190 था, 13 नवम्बर 1971 को समाप्त होने वाले सप्ताह में 190 हो गया । श्रमजीवी उपभोक्ता मूल्य सूचकांक मार्च 1971 में 224 से बढ़कर सितम्बर 1971 में

238 हो गया। यह वृद्धि 1967 के बाद से सर्वाधिक है जो चीनी आक्रमण तथा सूखा प्रभावित वर्षों को छोड़कर स्वतंत्रता के बाद सबसे अधिक है (यह ध्यान देने योग्य है कि वर्तमान सूचकांक थोक मूल्य पर आधारित है, जो कि फुटकर मूल्य से साधारणतः पर्याप्त कम होते हैं)। इस मूल्य वृद्धि से आम आदमी के सम्मुख भारी कठिनाई पैदा हो गई है और इस मामले में सरकार को कम से कम यह तो करना ही चाहिए कि मजदूरों और कर्मचारियों के महंगाई भत्ते में अविलम्ब वृद्धि करे।

मूल्य वृद्धि के कारण—मूल्य वृद्धि के निम्नलिखित कारण हैं :

(1) विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन में गिरावट, जिससे सामान की आपूर्ति में कमी पैदा हो गई है। औद्योगिक विकास की दर 7·5% वार्षिक से घटकर इस वर्ष 1·5% रह गई है, जिसके फलस्वरूप अन्य परिणामों के अतिरिक्त रोजगार के अवसरों में भारी कटौती हो रही है। औद्योगिक उत्पादन में कमी के लिए कच्चे माल के अभाव को पूरी तरह दोष देना सरकार के लिए उचित नहीं होगा। इस्पात की कमी के बावजूद टेलीविजनों के निर्माण में 35%, एयर कंडीशनरों में 45%, रेफ्रीजरेटरों में 48%, और लिफ्टों के उत्पादन में 56% की वृद्धि हुई है। कुल मिलाकर विलास की वस्तुओं में 15% की वृद्धि हुई है और कच्चे माल की कमी का इन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा है। स्पष्ट है कि सरकार सीमित साधनों का जिस ढंग से निवेश तथा आवंटन करती है वह आवश्यक उद्योगों के उत्पादन में कमी के लिए उत्तरदायी है।

(2) गत बजट में 290 करोड़ रु० के भारी अप्रत्यक्ष कर लगाये गए थे जो पूरे वर्ष के लिए 400 करोड़ रु० होते हैं। (गत वर्ष 170 करोड़ रु० के कर लगाए गए थे) इस प्रकार लगाए गए करों से आम आदमी पर भारी बोझ डाला गया है।

(3) घाटे की अर्थव्यवस्था में काफी वृद्धि और केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा 950 करोड़ रु० के ओवर-ड्राफ्ट (गत वर्ष यह राशि 300 करोड़ रु० थी) और 1971 के बजट में हमारे साधनों में कमी करने वाली विदेशी सहायता का समावेश, सरकार ने अप्रत्यक्ष करों द्वारा तथा अधिक नोट छापकर अपने संसाधनों को जुटाने का फैसला किया है और इस प्रकार राजनीतिक कारणों से प्रत्यक्ष करों को लगाने और उन्हें वसूल करने से वह कतरा गई है।

(4) बहुघोषित 'गरीबी हटाओ' के नारे को कार्यान्वित करने के बारे में सरकार में निर्णय-क्षमता तथा गंभीरता का अभाव है। ग्रामीण क्षेत्र में शिक्षितों तथा अशिक्षितों की बेरोजगारी को दूर करने के लिए सरकार ने जो स्वल्प योजना बनायी थी वह भी संकल्प-शक्ति के अभाव में विफल होने जा रही है। शिक्षित बेरोजगारों के लिए संसद ने 25 करोड़ रु० की धनराशि स्वीकृत की थी, जिसमें

से सरकार ने केवल 9 करोड़ रु० व्यय करने की योजना बनाई है। ग्रामीण बेरोजगारी के लिए जो 50 करोड़ रु० की राशि निश्चित हुई थी उसमें से अब तक 1·5 करोड़ से भी कम खर्च किया गया है। इसके साथ ही योजना के लक्ष्यों में वित्तीय दृष्टि से 15% की कमी होगी। भौतिक लक्ष्यों के अनुसार यह कमी और भी बढ़ जाती है। इसके फलस्वरूप योजना के सामाजिक लक्ष्य यथा गन्दी बस्तियों के विकास, कम कीमत वाले मकानों के निर्माण, चिकित्सा, शिक्षा और रोजगार देने वाले कार्यक्रमों में काफी कमी रहेगी और उसके अत्यधिक दुष्परिणाम होंगे।

जैसे-जैसे समय बीतता जा रहा है यह बात स्पष्ट होती जा रही है कि सरकार समस्याओं को हल करने के बारे में गंभीर नहीं है। वह उन्हें टालती जा रही है और अपनी विफलताओं को छिपाने के लिए बलि के बकरे की खोज में है। आर्थिक समस्याओं को हल करने में अपनी अक्षमता पर पर्दा डालने के लिए बंगला देश के विस्थापितों का उपयोग करने की सत्तारूढ़ दल की प्रवृत्ति की भारतीय जनसंघ निन्दा करता है। औद्योगिक विकास में मन्दी तथा बेरोजगारी-निराकरण कार्यक्रम की विफलता और योजना के भौतिक लक्ष्यों में काफी कमी का बंगला देश के संकट के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। इन तथ्यों को बंगला देश के साथ जोड़ना अनुत्तरदायित्व की पराकाष्ठा और बहानेबाजी होगी। जब तक भारतीय जनता के आर्थिक उत्थान के लिए गंभीर वचनबद्धता नहीं होगी, गरीबी के विरुद्ध युद्ध करने का संकल्प नहीं होगा, हमारी आर्थिक समस्याएं हल नहीं की जा सकतीं।

शहरी सम्पत्ति और भूमि की सीमा—भारतीय जनसंघ राष्ट्रीयता, सामाजिक परिवर्तन तथा आर्थिक न्याय के आधार पर एक समतायुक्त समाज की रचना के लिए वचनबद्ध है। इसकी पूर्ति के लिए :

(1) पूंजीनिवेश की प्राथमिकता का पुनर्निर्धारण किया जाएगा जिससे उत्पादन तथा रोजगार के अवसरों को अधिकतम बढ़ाया जा सके और छोटी सिंचाई योजना, ग्रामीण क्षेत्र में निर्माण कार्य, लघु उद्योग और संतुलित आणविक तकनीकी व्यवस्था के लिए अधिक साधन जुटाये जा सकें।

(2) वित्तीय तथा मुद्रा संबंधी नीतियों की पुनर्रचना की जाएगी जिससे अधिकाधिक घरेलू बचत हो सके, आत्मनिर्भरता के उद्देश्य को प्राप्त किया जा सके और आर्थिक न्याय की स्थापना के लिए आमदनी का बंटवारा किया जा सके। इस दृष्टि से ऊंची कृषि आय पर तथा विलासपूर्ण उपभोग पर टैक्स लगाया जाएगा और साधारणतः आयात लाइसेंसों को बाजार भाव के हिसाब से बेचा जाएगा। कर-पद्धति को सरल किया जाएगा।

(3) उपभोक्ताओं को उचित तथा उत्पादकों को—विशेषकर किसानों को—प्रोत्साहक मूल्य देने के दोहरे उद्देश्य की उपलब्धि द्वारा मूल्यों के स्थिरीकरण की आश्वस्ति और कृषि उपज के विपणन की उचित व्यवस्था की जाएगी ।

(4) मूलगामी आर्थिक सुधारों का अवलम्बन किया जाएगा जैसे शहरी सम्पत्ति की सीमा का निर्धारण, जिसके अन्तर्गत एक परिवार (पति, पत्नी तथा 3 बच्चे) को 2 लाख रु० के निर्माण की लागत तथा 1,000 वर्ग गज जमीन की छूट होगी, सभी भूमि-सुधार कानूनों का त्वरित तथा प्रभावी कार्यान्वयन—उनके दोषों तथा छिद्रों को दूर करना—और आय के आधार पर अधिकतम जोत की सीमा तय करने की गतिशील कल्पना को स्वीकार करना; सभी विदेशी बैंकों का अविलम्ब राष्ट्रीयकरण और समस्त विदेशी कम्पनियों का पूर्ण भारतीयकरण करना ।

(5) एक राष्ट्रीय सामाजिक नीति का निर्माण किया जाएगा जिसके अन्तर्गत रोजगार के अधिकार को मूलभूत अधिकार बनाकर हर एक व्यक्ति के लिए काम का प्रबन्ध करना और पिछड़े, अपंग (शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक दृष्टि से) अविकसित वर्गों, हरिजनों, वनवासियों, भूतपूर्व सैनिकों तथा अवकाश-प्राप्त लोगों के और अधूरे समय काम करने वाले मजदूरों तथा श्रमजीवी महिलाओं के हितों का संरक्षण करने के लिए कानून बनाना होगा ।

(6) सभी उद्योगों तथा सेवाओं में आवश्यकता पर आधारित न्यूनतम वेतन के सिद्धान्त को कार्यान्वित किया जाएगा तथा एक ऐसी परिपाटी स्थापित की जाएगी जिससे उपभोक्ता मूल्यांकन में वृद्धि होते ही वेतनमान भी बढ़ जाएं ।

(7) भूमिहीन मजदूरों के लिए न्यूनतम मजदूरी कानून बनाया जाएगा तथा वर्तमान कानूनों में सुधार और अतिरिक्त तथा खेती-योग्य पड़ती जमीन को उनमें वितरित किया जाएगा, विशेषतः हरिजनों, वनवासियों तथा अन्य पिछड़े हुए वर्गों में उसे बांटना होगा ।

(8) परिगणित जनजातियों की सामाजिक बुराइयों जैसे, 'गोठी' 'पाले मोडी' 'सागड़ी' 'दास प्रथा' इत्यादि को समाप्त किया जाएगा । वनों से संबंधित उनके परम्परागत अधिकारों की रक्षा की जाएगी । उन्हें वन सेवाओं में (उदाहरणार्थ, वनरक्षक तथा चौकीदार के पदों की) नियुक्ति में प्राथमिकता मिलेगी। वनोपज पर आधारित उद्योगों को आरम्भ किया जाएगा ।

(9) परिगणित जातियों तथा जनजातियों के लिए नौकरियों में उनकी जनसंख्या के अनुपात में स्थान सुरक्षित होंगे । राज्य-स्तर पर भी निगरानी समितियों का गठन कर इस आरक्षण को लागू किया जाएगा ।

(10) एक मनोवैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक वातावरण का निर्माण किया जाएगा जिसमें व्यक्ति के सामाजिक मूल्यांकन का आधार, भौतिक सम्पत्ति न होकर उसका सांस्कृतिक धरातल तथा अपरिग्रह होगा ।

(11) न्यूनतम तथा अधिकतम आय के बीच में 1 और 20 के अनुपात की उत्तरोत्तर प्राप्ति के लिए प्रयत्न किया जाएगा ।

(12) **वित्तीय सलाहकार सेवा**—राष्ट्रीयकृत बैंकों को सामाजिक लाभ के लिए उपयोग में लेने की दृष्टि से एक 'वित्तीय सलाहकार सेवा' की स्थापना की जाएगी जो :

(i) छोटे तथा जमानत देने में असमर्थ किसानों, कारीगरों तथा शहरी क्षेत्रों में अपने-अपने रोजगार में लगे व्यक्तियों से उनकी व्यक्तिगत तथा सामूहिक विकास योजनाओं को आमंत्रित करेगी और तकनीकी तथा प्रबन्ध के अनुभवों के प्रकाश में उनकी जांच पड़ताल करेगी, उनमें संशोधन के सुझाव देगी और उनके लिए धन देने की सिफारिश करेगी ।

(ii) गांवों का आर्थिक सर्वेक्षण करेगी, अन्य सहायक उद्योगों का सुझाव देगी और सभी तरह की क्षमता वाले हर एक व्यक्ति के लिए पूरे साल के लिए पूर्ण रोजगार का प्रबन्ध करेगी । प्रत्येक ग्रामीण परिवार को ऋण में राहत, कम ब्याज पर ऋण तथा विकास की अन्य सुविधाएं उपलब्ध करायेगी ।

(13) लोगों को शुद्ध तथा मिलावट रहित सामान तथा खाद्यान्न, औषधि, पैट्रोल, डीजल, मिट्टी का तेल, मशीनों में काम आने वाली चिकनाई, उर्वरक, कीटनाशक उन्नत बीज आदि नियमित रूप से उपलब्ध कराने के लिए ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों में कार्यरत विभिन्न एजेंसियों में तालमेल बैठाया जाएगा ।

(14) उपभोक्ता सहकारी समितियों का जाल फैलाया जाएगा जिनका संचालन ऐसे निष्ठावान नागरिकों के हाथ में होगा जो उपभोक्ताओं तथा उत्पादकों के हितों की रक्षा कर सकें और उपभोक्ता प्रतिरोध तथा असहयोग के लिए उपयुक्त मंच का निर्माण कर सकें ।

(15) समूचे सार्वजनिक क्षेत्र के पुनर्गठन करने के लिए (क) प्रबन्धकर्ताओं की एक नयी सेवा का गठन होगा जिसे कानूनी दर्जा प्राप्त हो और जो सार्वजनिक क्षेत्र के प्रति निष्ठावान रहे; (ख) संसद तथा राज्य विधानसभाओं के प्रति सार्वजनिक क्षेत्रों को अधिक उत्तरदायी बनाया जाएगा; और (ग) निर्णय लेने की प्रक्रिया में सभी मजदूरों को सहभागी बनाने का प्रबन्ध किया जाएगा ।

(16) एक नये सांख्यिकी आयोग का गठन किया जाएगा जो आर्थिक आंकड़ों तथा सूचकांकों यथा उपभोक्ता-बिक्री-मूल्य, औद्योगिक-विकास-दर आदि के सम्बन्ध में सुझाव दे सके और उनका पुनर्गठन कर सके तथा जिससे राष्ट्रीय स्तर

पर निर्णय करने के लिए उपयोगी तथा विश्वस्त तथ्य प्राप्त हो सके।

(17) विभिन्न औद्योगिक प्रतिष्ठानों में संयुक्त परामर्श तंत्री की स्थापना की जाएगी जो औद्योगिक शांति बनाये रखने और उत्पादकता की वृद्धि में सहायक हो।

दस प्रतिशत विकास दर—जनसंघ का विश्वास है कि उपयुक्त अर्थ-नीति के अवलम्बन से विकास की दर 10% प्रति वर्ष हो सकेगी और एक स्वावलम्बी भारत का निर्माण किया जा सकेगा।

[27 नवम्बर 1971; गाजियाबाद, भा०प्र०स०]

72.06. 1972-73 का किसान-विरोधी बजट

1972-73 का बजट किसान-विरोधी बजट है। इससे उन आश्वासनों का भी खोखलापन सिद्ध हो गया है जो भारतीय जनता को बेरोजगारी के निराकरण, मूल्यों की स्थिरता तथा आर्थिक क्षेत्र में स्वावलम्बन की प्राप्ति के सम्बन्ध में दिए गए थे।

उर्वरकों, विद्युतचालित पम्पों तथा मशीन-तेल पर लगाये गए करों (जिसके साथ रहस्यपूर्ण ढंग से हाल में बढ़ाई गई ट्रैक्टरों की कीमत भी जुड़ी हुई है) का अर्थ यह होगा कि खेती के आधुनिक तरीके अपनाना अधिक महंगा हो जाएगा और इस प्रकार छोटे किसानों के लिए हरित-क्रांति के लाभ में साझीदार बनने का मार्ग रुक जाएगा।

इसके साथ ही खाद्यान्नों की खरीद में सरकार जो आर्थिक सहायता देती थी—वह घटाई जा रही है। इन सभी कदमों का कुल मिलाकर परिणाम यह होगा कि उपभोक्ता के लिए मूल्य बढ़ जाएंगे जबकि कृषि उत्पादक को इससे कोई लाभ नहीं होगा।

मिट्टी के तेल में वृद्धि एक काला कदम है। यह गरीब की रोशनी और रसोई घर की आग पर कर है। भारतीय इस्पात विश्व में पहले ही सबसे महंगी है। इस्पात पर भारी उत्पादन शुल्क लगाने का अर्थ यह होगा कि हर वस्तु—सुई से लेकर रेलवे इंजिन तक—का दाम बढ़ेगा। इससे विशेषतः बुनियादी उद्योगों को क्षति पहुंचेगी और इंजीनियरिंग के सामान के निर्यात को ठेस लगेगी। इस्पात का मूल्य बढ़ने से मकानों, पुलों तथा कारखानों के निर्माण की लागत बढ़ेगी।

एल्यूमीनियम पर लगे अतिरिक्त उत्पादन शुल्क से न केवल गरीब के भोजन के बर्तन ही महंगे होंगे किन्तु इससे भी मूल उद्योगों विशेषतः हवाई जहाज निर्माण तथा केबुल बनाने के उद्योगों पर बुरा प्रभाव पड़ेगा।

सोडावाटर पर कर एक ऐसा कर है जो आम आदमी की एकमात्र विलास

की वस्तु पर लगाया गया है।

इस बजट में अतिरिक्त करों का भार 183 करोड़ रु० नहीं है जैसा कि वित्त मंत्री ने दावा किया है, अपितु 565 करोड़ रु० है, जिसमें गत वर्ष लगाए गए कर-भार शामिल हैं और जो इसी वर्ष पूरी तरह वसूल किये जाएंगे। फिर भी इसके अतिरिक्त 242 करोड़ रु० का घाटा छोड़ा गया है।

पूर्वी बंगाल के विस्थापितों के नाम पर लगाए गए करों को जारी रखने का अब कोई औचित्य नहीं है क्योंकि विस्थापित अपने घरों को वापिस जा चुके हैं। बजट प्रस्तावों के कारण (जिसके साथ रेलवे-बजट में माल-भाड़े की दरों में वृद्धि का प्रस्ताव भी शामिल है), कुल मिलाकर परिणाम यह होगा कि देश में 8% से अधिक मूल्य-वृद्धि हो जाएगी। इस वृद्धि से और गत वर्ष की मूल्यों में भारी वृद्धि से मूल्य-मजूरी-वृद्धि का एक भारी दुष्चक्र चलेगा, जिससे आम आदमी की दशा और भी बिगड़ेगी।

इस बजट में योजना के अन्तर्गत व्यय की जो प्राथमिकताएं प्रस्तावित हैं वह पहले जैसी ही हैं। यह स्पष्ट है कि इन प्राथमिकताओं के कारण गत 20 वर्षों में भारी बेरोजगारी तथा मुद्रास्फीति बढ़ी है। इन प्राथमिकताओं को बनाये रखना यह बताता है कि सरकार को बढ़ती हुई बेरोजगारी की जरा भी चिन्ता नहीं है। बेरोजगारी में कमी करने के लिए इस बजट में कोई नया, निर्भीक, मूलगामी तथा क्रांतिकारी कार्यक्रम नहीं है। यह सत्तारूढ़ कांग्रेस द्वारा चुनाव के दौरान दिए गए आश्वासनों के विपरीत है।

सभी प्रकार की परियोजनाओं के लिए 125 करोड़ रु० की धनराशि सर्वथा अपर्याप्त है और इससे ग्रामीण क्षेत्रों की वास्तविक समस्याओं को स्पर्श भी नहीं किया जा सकेगा। हरिजन, वनवासियों तथा पिछड़े वर्गों के विकास के लिए कोई विशिष्ट कार्यक्रम नहीं है। बजट जनता के जीवन-स्तर को ऊंचा उठाने के राष्ट्रीय सामाजिक उद्देश्यों से पूर्णतः रहित है।

1971 के भारत-पाकिस्तान युद्ध में सत्तारूढ़ दल ने स्वावलम्बन का जो शौर्यपूर्ण आश्वासन दिया था उसे भी सुविधाजनक ढंग से भुला दिया गया है। इस वर्ष विदेशी सहायता की जो आशा की जा रही है वह गत वर्ष में मिली विदेशी सहायता से 75 करोड़ रु० अधिक है। भारतीय जनसंघ एक स्वावलम्बी अर्थव्यवस्था की अपनी मांग को दोहराता है।

गैर-विकास सम्बन्धी व्यय में कटौती करने के बारे में सरकार की जागरूकता का कोई परिचय बजट नहीं देता। इसके विपरीत सरकारी खर्च में 10% की वृद्धि हुई है जबकि अनुमान 2% का था। यदि सरकार अपव्यय को रोकने और ऊंचे स्थान पर विलास पर होने वाले व्यय में कमी का कोई उदाहरण नहीं रख सकती तो वह ऐसा वातावरण नहीं बना सकती जिसमें लोग भविष्य के लिए बचत

करें।

जनसंघ मांग करता है कि :

(i) गत वर्ष विस्थापितों के नाम पर जो अतिरिक्त कर तथा अधिभार लगाया गया था उसको समाप्त किया जाए;

(ii) मिट्टी के तेल, उर्वरक, पम्पों तथा मशीन के तेल पर अतिरिक्त उत्पादन शुल्क वापस लिया जाए;

(iii) इस्पात तथा एल्यूमिनियम पर लगे शुल्क में भारी कमी की जाए;

(iv) प्रत्यक्ष कर प्रणाली का पुनर्निर्धारण किया जाए जिससे आय-कर की न्यूनतम सीमा को बढ़ाकर कम आय वालों को राहत दी जा सके और उच्च-स्तर पर आय-कर की दर में कमी हो, जिससे करों की चोरी रुके;

(v) सार्वजनिक निर्माण का एक विशाल कार्यक्रम आरम्भ किया जाए जिससे बेरोजगारी कम की जा सके और भवन-निर्माण, पेय जल का प्रबन्ध, गन्दी बस्तियों की सफाई, शिक्षा तथा पिछड़े वर्गों को उठाने की ठोस परियोजनाओं को कार्यान्वित किया जा सके।

[20 मार्च, 1972; दिल्ली, के०का०स०]

72.17. मूल्यों में असह्य वृद्धि

कीमतें सप्ताह-दर-सप्ताह, महीना-दर-महीना तथा वर्ष-दर-वर्ष बढ़ी हैं, बढ़ रही हैं और बढ़ने का भय है। आधार वर्ष के बार-बार परिवर्तन द्वारा सरकार ने मूल्य सूचकांक को वास्तविकता से कहीं अधिक कम करके दिखाने की लगातार कोशिश की है किन्तु 1961-62 को आधार वर्ष मानकर भी यह अंक आज 238 है (यदि हम 1939 को आधार वर्ष मानें तो यह अंक 960 होता है)।

हमें यह देखकर दुःख है कि जब से वर्तमान प्रधानमंत्री सत्ता में आई हैं कीमतें केवल ऊंची छलांगें लगा रही हैं। उन्होंने अपने शासन का प्रारम्भ रुपये के 57% विनाशकारी अवमूल्यन के साथ किया। 1962 के चीनी युद्ध तथा 1965 के पाकिस्तानी युद्ध के धक्के के पश्चात भी (जब वह सत्ता में आईं) मूल्य सूचकांक 137·5 था और अब यह 238 अंक तक पहुंच चुका है। मूल्यों में यह औसतन 11% वार्षिक की भारी-भरकम वृद्धि है। जहां तक याददाश्त जाती है, 'गरीबी हटाओ' वर्ष निकृष्टतम 'गरीबी बढ़ाओ' वर्ष सिद्ध हुए हैं।

कांग्रेस की दुस्साहसिक अर्थनीति जो सरकार द्वारा कभी इस चीज को हाथ में लिए जाने की धमकी देती है तो कभी दूसरी चीज को, के फलस्वरूप जनविश्वास पूरी तरह से हिल गया है। करों एव कीमतों ने बचत का सफाया कर दिया है।

एक सर्वभक्षी अनिश्चितता देश पर छायी हुई है।

एक विकासशील अर्थव्यवस्था यदि विकसित देशों के बराबर जाने की आशा रखती है तो उसे 10% वार्षिक अथवा इससे भी अधिक की दर से बढ़ना होगा। हमारा औसत केवल 3·50% रहा है और अब तेजी से शून्य विकास दर की ओर बढ़ रहे हैं।

उत्पादन में तेजी से आ रही गिरावट, मुद्रा के अन्धाधुन्ध विस्तार के फलस्वरूप और भी बदतर हो गई है। वर्तमान प्रधानमंत्री के छः वर्षीय काल में मुद्रा उपलब्धि जो 1966 में 4,236 करोड़ रु० थी बढ़कर आज दुगुनी अर्थात 8,342 करोड़ रु० हो गई है। मुद्रा उपलब्धि में 13% वृद्धि हुई है, जबकि वस्तुओं एवं सेवाओं में केवल 3·50% वृद्धि हुई है। मुद्रा एवं वस्तुओं के बीच इस बढ़ती हुई खाई के कारण कीमतें अभूतपूर्व तेजी से आगे बढ़ी हैं।

इस्पात के निर्माण से लेकर होटल जैसे सार्वजनिक क्षेत्र के घाटे की पूर्ति के प्रयास में नियंत्रित वस्तुओं के मूल्य भी बार-बार बढ़ाए गए हैं। चीनी, वनस्पति तथा अन्य वस्तुओं की कीमतें समय-समय पर उन व्यापारियों को मुआवजा देने के लिए बढ़ाई गई हैं जो कांग्रेस तथा कांग्रेसजनों की जेबें करोड़ों रुपयों के काले धन से भरते रहे हैं।

अनुत्पादक व्यय में 14% प्रतिवर्ष की भारी वृद्धि, जबकि चतुर्थ योजना का लक्ष्य केवल 2% था, ने भी मूल्यों को बढ़ाने में विशेष योगदान किया है।

मूल्य वृद्धि के कारण—विकास दर में कमी, मुद्रा उपलब्धि में वृद्धि, अनुत्पादक व्यय तथा अर्थव्यवस्थाओं में राजनीतिक भ्रष्टाचार ने मिलकर जो विस्फोट किया है उससे कीमतों में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। इन कारणों का बंगला देश की घटना से कोई सम्बन्ध नहीं है जैसा कि भ्रम फैलाया जा रहा है। वास्तविकता यह है कि सरकार ने स्वयं स्वीकार किया है कि बंगला देश के लिए वसूल किये जा रहे विभिन्न करों से उस सम्बन्ध में किये गये व्यय से भी अधिक आय हो चुकी है।

आज खाद्यान्नों के मूल्य 14% प्रतिवर्ष की दर से बढ़ रहे हैं। एक निर्धन देश में जहां एक कुटुम्ब को 70% आय भोजन पर व्यय करनी पड़ती है, इस प्रकार की वृद्धि जनता के सुख एवं स्वास्थ्य पर घातक परिणाम करती है।

इस स्थिति का एक विशेष दुःखदायी रूप यह है कि किसान को गत 5 वर्षों से लगातार अपनी पैदावार का कम मूल्य प्राप्त हो रहा है, जबकि औद्योगिक उत्पादन जैसे कपड़ा, औजार, खाद आदि जिसकी उसे आवश्यकता है, कृषि की पैदावार से कहीं अधिक तेजी से महंगा होता जा रहा है।

इस्पात की कंट्रोल कीमतें 1100 रु० प्रति टन है, जो विश्व में सर्वाधिक है। वास्तव में इस्पात इस कीमत पर भी उपलब्ध नहीं है। सरकार को भी इस्पात खुले काला बाजार में 1800 रु० प्रति टन के हिसाब से खरीदना पड़ता

है। वस्तुस्थिति यह है कि देश के सामने एक दूसरे अवमूल्यन का खतरा उपस्थित हो गया है जिसका परिणाम और भी ऊंची कीमतें होगा।

ऊंची कीमतों एवं ऊंचे करों के बीच नागरिक को पीसा जा रहा है। कीमतों की असहनीय वृद्धि ने सर्वसाधारण के असन्तोष को व्यापक हिंसा में बदल दिया है। नेतृत्व पूरी तरह से असफल हो गया है। मूल्यों को रोकने में उसकी असफलता उसकी सामूहिक विफलता का एक प्रगट परिणाम मात्र है।

राहत के उपाय—भारतीय जनसंघ जनता पर थोपे गए इस सरकारी युद्ध के खिलाफ अपना तीव्र विरोध प्रकट करता है तथा मांग करता है :

(i) उचित मूल्य की दुकानें और सरकारी कार्यालयों, कारखानों तथा अन्य संस्थाओं में सहकारी भंडार स्थापित किये जाएं ताकि सभी निम्न आय वर्गों को जीवन की आवश्यकताएं उचित मूल्य पर प्राप्त हो सके।

(ii) उत्पादन को रोकने वाली सभी बाधाएं समाप्त की जाएं।

(iii) किसानों से खरीद के मूल्य बढ़ाये जाएं एवं उपभोक्ता की सहायता के लिए बिक्री मूल्य कम किये जाएं तथा इस उद्देश्य से वर्तमान प्रबन्ध व्यय कम किया जाए।

(iv) घाटे की सभी अर्थव्यवस्थाएं तुरन्त रोकी जाएं जब तक कि मूल्य स्थिर होकर उत्पादन बढ़ाना प्रारम्भ न हो।

(v) काले धन पर नियंत्रण हेतु बड़ी मुद्रा के नोटों का विमुद्रीकरण किया जाए।

[20 नवम्बर, 1972, जयपुर, के०का०स०]

परिशिष्ट-क

भारतीय जनसंघ के सार्वदेशिक अधिवेशनों की तिथि-क्रमानुसार सूची

क्रम	स्थान	अध्यक्ष	समय
आद्य	दिल्ली	डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी	अक्टूबर 1951
पहिला	कानपुर	डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी	दिसंबर 1952
दूसरा	बम्बई	पं० मौलीचन्द्र शर्मा	जनवरी 1954
तीसरा	जोधपुर	पं० प्रेमनाथ डोगरा	जनवरी 1955
चौथा	जयपुर	आचार्य देवप्रसाद घोष	अप्रैल 1956
पांचवां	दिल्ली	आचार्य देवप्रसाद घोष	दिसंबर 1956
छठा	अम्बाला	आचार्य देवप्रसाद घोष	अप्रैल 1958
सातवां	बंगलौर	आचार्य देवप्रसाद घोष	दिसंबर 1958
आठवां	नागपुर	श्री पीताम्बर दास	जनवरी 1960
नवां	लखनऊ	श्री अ० रामाराव	जनवरी 1961
दसवां	भोपाल	आचार्य रघुवीर	दिसंबर 1962
ग्यारहवां	अहमदाबाद	आचार्य देवप्रसाद घोष	दिसंबर 1963
बारहवां	विजयवाड़ा	श्री बच्छराज व्यास	जनवरी 1965
तेरहवां	जलन्धर	श्री बलराज मधोक	मई 1966
चौदहवां	कालीकट	पं० दीनदयाल उपाध्याय	दिसंबर 1967
पंद्रहवां	बम्बई	श्री अटल बिहारी वाजपेयी	अप्रैल 1969
सोलहवां	पटना	श्री अटल बिहारी वाजपेयी	दिसंबर 1969
सत्रहवां	उदयपुर	श्री अटल बिहारी वाजपेयी	जुलाई 1971
अठारहवां	कानपुर	श्री लाल कृष्ण आदवाणी	फरवरी 1973

परिशिष्ट-ख

आर्थिक विषयों पर प्रस्तावों की तिथि-क्रमानुसार सूची

वर्ष	प्रस्ताव संख्या	दिनांक	स्थान	प्रसंग	अध्याय	पृष्ठ संख्या
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)
1952	52.02	10 फरवरी	दिल्ली	के.का.स.	4	117
	52.08	14 जून	दिल्ली	के.का.स.	2	45
	52.10	14 जून	दिल्ली	के.का.स.	2	46
	52.15	31 दिसम्बर	कानपुर	पहिला सा.अ.	2	47
	52.19	31 दिसम्बर	कानपुर	पहिला सा.अ.	1	5
	52.20	31 दिसम्बर	कानपुर	पहिला सा.अ.	4	117
	52.23	31 दिसम्बर	कानपुर	पहिला सा.अ.	1	5
1953	53.08	15 अगस्त	इलाहाबाद	भा.प्र.स.	3	99
	53.12	15 अगस्त	इलाहाबाद	भा.प्र.स.	3	100
	53.13	15 अगस्त	इलाहाबाद	भा.प्र.स.	2	48
	53.19	20 दिसम्बर	दिल्ली	के.का.स.	2	48
1954	54.04	25 जनवरी	बम्बई	दूसरा सा.अ.	1	6
	54.09	25 जनवरी	बम्बई	दूसरा सा.अ.	4	118
	54.12	25 जनवरी	बम्बई	दूसरा सा.अ.	3	101
	54.15	25 जनवरी	बम्बई	दूसरा सा.अ.	2	48
	54.21	19 अगस्त	इन्दौर	भा.प्र.स.	2	49
	54.22	19 अगस्त	इन्दौर	भा.प्र.स.	2	49
	54.25	7 नवम्बर	दिल्ली	के.का.स.	2	50
1955	55.01	1 जनवरी	जोधपुर	तीसरा सा.अ.	3	101
	55.02	1 जनवरी	जोधपुर	तीसरा सा.अ.	3	103
	55.11	1 जनवरी	जोधपुर	तीसरा सा.अ.	2	50
	55.12	2 जनवरी	जोधपुर	तीसरा सा.अ.	4	118
	55.15	15 अप्रैल	गोकाक	के.का.स.	4	119
	55.18	15 अप्रैल	गोकाक	के.का.स.	2	51
	55.24	28 अगस्त	कलकत्ता	भा.प्र.स.	2	52
	55.28	28 अगस्त	कलकत्ता	भा.प्र.स.	2	53
	55.30	23 अक्तूबर	दिल्ली	के.का.स.	2	53
1956	56.09	21 अप्रैल	जयपुर	चौथा सा.अ.	4	119
	56.14	21 जुलाई	दिल्ली	के.का.स.	1	7
	56.26	30 दिसम्बर	दिल्ली	पांचवां सा.अ.	1	10
1957	57.05	20 अप्रैल	जौनपुर	के.का.स.	3	104
	57.09	1 जून	दिल्ली	के.का.स.	4	120
	57.10	1 जून	दिल्ली	के.का.स.	3	106
	57.11	1 जून	दिल्ली	के.का.स.	2	54
	57.14	16 अगस्त	बिलासपुर	भा.प्र.स.	2	55

(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)
	57.15	16 अगस्त	बिलासपुर	भा.प्र.स.	1	11
	57.16	16 अगस्त	बिलासपुर	भा.प्र.स.	2	55
	57.17	24 नवम्बर	हैदराबाद	के.का.स.	2	56
1958	58.03	5 अप्रैल	अम्बाला	छठा सा.अ.	4	122
	58.08	5 अप्रैल	अम्बाला	छठा सा.अ.	2	58
	58.11	19 जुलाई	बम्बई	के.का. स.	2	59
	58.20	12 अक्तूबर	दिल्ली	के.का.स.	2	59
	58.24	28 दिसम्बर	बंगलौर	सातवां सा.अ.	1	14
	58.25	28 दिसम्बर	बंगलौर	सातवां सा.अ.	2	60
	58.32	28 दिसम्बर	बंगलौर	सातवां सा.अ.	2	62
	58.33	28 दिसम्बर	बंगलौर	सातवां सा.अ.	3	106
	58.34	28 दिसम्बर	बंगलौर	सातवां सा.अ.	2	63
1959	59.01	15 मार्च	दिल्ली	के.का.स.	2	64
	59.04	15 मार्च	दिल्ली	के.का.स.	4	125
	59.07	8 जुलाई	पूना	भा.प्र.स.	2	66
	59.08	8 जुलाई	पूना	भा.प्र.स.	2	67
1960	60.02	25 जनवरी	नागपुर	आठवां सा.अ.	4	125
	60.16	28 अगस्त	हैदराबाद	भा.प्र.स.	1	16
1961	61.04	1 जनवरी	लखनऊ	नवां सा.अ.	4	128
	61.05	1 जनवरी	लखनऊ	नवां सा.अ.	1	19
	61.08	1 जनवरी	लखनऊ	नवां सा.अ.	2	68
	61.13	22 अप्रैल	पटना	के.का.स.	4	132
	61.17	12 नवम्बर	वाराणसी	भा.प्र.स.	1	21
1962	62.02	24 मई	कोटा	भा.प्र.स.	4	133
	62.09	29 सितम्बर	राजमुन्द्री	के.का.स.	4	134
	62.20	30 दिसम्बर	भोपाल	दसवां सा.अ.	1	23
1963	63.03	6 अप्रैल	दिल्ली	के.का.स.	4	135
	63.16	12 अगस्त	दिल्ली	भा.प्र.स.	4	136
	63.20	30 दिसम्बर	अहमदाबाद	ग्यारहवां सा.अ.	2	68
	63.21	30 दिसम्बर	अहमदाबाद	ग्यारहवां सा.अ.	4	138
	63.28	30 दिसम्बर	अहमदाबाद	ग्यारहवां सा.अ.	4	140
1964	64.07	10 अगस्त	ग्वालियर	भा.प्र.स.	4	141
	64.12	4 दिसम्बर	पटना	के.का.स.	4	143
1965	65.03	24 जनवरी	विजयवाड़ा	बारहवां सा.अ.	4	145
	65.06	24 जनवरी	विजयवाड़ा	बारहवां सा.अ.	2	69
	65.07	24 जनवरी	विजयवाड़ा	बारहवां सा.अ.	2	70
	65.08	24 जनवरी	विजयवाड़ा	बारहवां सा.अ.	2	70
	65.18	10 जुलाई	जबलपुर	के.का.स.	2	70

(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)
1965 (जारी)	65.21	17 अगस्त	दिल्ली	भा.प्र.स.	1	25
	65.22	17 अगस्त	दिल्ली	भा.प्र.स.	2	72
	65.27	27 सितम्बर	दिल्ली	के.का स.	2	73
1966	66.05	15 जनवरी	कानपुर	के.का.स.	2	73
	66.08	1 मई	जलन्धर	तेरहवां सा.अ.	4	148
	66.09	1 मई	जलन्धर	तेरहवां सा.अ.	2	75
	66.13	1 मई	जलन्धर	तेरहवां सा.अ.	3	108
	66.14	12 जुलाई	लखनऊ	के.का.स.	4	151
	66.20	2 नवम्बर	नागपुर	के.का.स.	2	76
	66.22	2 नवम्बर	नागपुर	के.का.स.	2	77
1967	67.05	14 मार्च	दिल्ली	के.का.स.	2	79
	67.08	21 अप्रैल	दिल्ली	भा.प्र.स.	2	79
	67.14	30 जुलाई	शिमला	के.का.स.	4	153
	67.16	26 सितम्बर	बड़ौदा	के.का.स.	4	155
	67.19	26 दिसम्बर	कालीकट	चौदहवां सा.अ.	2	81
	67.21	26 दिसम्बर	कालीकट	चौदहवां सा.अ.	4	157
	67.24	26 दिसम्बर	कालीकट	चौदहवां सा.अ.	2	81
1968	68.05	22 मार्च	भोपाल	के.का.स.	4	159
	68.06	22 मार्च	भोपाल	के.का.स.	4	162

	68.09	4 जून	गोहाटी	के.का.स.	1	27
	68.10	4 जून	गोहाटी	के.का.स.	2	82
	68.15	7 सितम्बर	इन्दौर	भा.प्र.स.	2	83
1969	69.06	26 अप्रैल	बम्बई	पंद्रहवां सा.अ.	1	30
	69.09	25 अप्रैल	बम्बई	पंद्रहवां सा.अ.	3	110
	69.10	25 अप्रैल	बम्बई	पंद्रहवां सा.अ.	2	85
	69.15	30 अगस्त	दिल्ली	के.का.स.	4	164
	69.16	30 अगस्त	दिल्ली	के.का.स.	1	34
	69.18	28 दिसम्बर	पटना	सोलहवां सा.अ.	4	166
1970	70.02	7 मार्च	अहमदाबाद	के.का.स.	4	170
	70.06	18 जुलाई	चंडीगढ़	भा.प्र.स.	4	173
	70.08	6 नवम्बर	दिल्ली	के.का.स.	4	178
1971	71.04	2 जुलाई	उदयपुर	सत्रहवां सा.अ.	4	180
	71.07	9 अक्तूबर	मद्रास	के.का.स.	4	184
	71.09	27 नवम्बर	गाजियाबाद	भा.प्र.स.	4	187
1972	72.06	20 मार्च	दिल्ली	के.का.स.	4	192
	72.08	7 मई	भागलपुर	भा.प्र.स.	2	88
	72.14	20 नवम्बर	जयपुर	के.का.स.	1	36
	72.15	20 नवम्बर	जयपुर	के.का.स.	2	93
	72.16	20 नवम्बर	जयपुर	के.का.स.	3	112
	72.17	20 नवम्बर	जयपुर	के.का.स.	4	194

अनुक्रमणिका

अकाल—
की छाया : कुछ कदम 77
(की) स्थिति 79, 85, 93
(बिहार के अभावग्रस्त क्षेत्रों के लिए अपील 79)
(सूखा—
आयोग 85)
पीड़ित 54)
अर्थतन्त्र आत्मस्फूर्त 131
अर्थव्यवस्था—
अवरुद्ध, 157
की लोकतांत्रिक आदर्शों से विसंगति, समाजवादी 15
के लक्षण 129
द्वैत, 167
अधिनायकवादी प्रवृत्ति 9
अनाज की विषम समस्या; कुछ सुझाव (*देखिए* खाद्यान्न)
अवमूल्यन—कुछ सुझाव 151
अवमूल्यनोत्तर विश्लेषण 155

आत्मनिर्भरता 28
आत्मनिर्भर व आत्मस्फूर्त 146
आधारभूत नीतियां और लक्ष्य 145
आर्थिक—
आयोग की नियुक्ति, उच्चाधिकार प्राप्त 146
कार्यक्रम, अविलम्बनीय 173
नीति—
का आधार 130
कुछ सुझाव 145
के बारे में वक्तव्य 128
नीतियों—
पर पुर्नविचार 159
पर पुर्नविचार, चीनी आक्रमण के बाद 136
योजना के लिए उपसमिति 117
विद्रूपताएं 167

स्थिति 166, 178
—कुछ सुझाव 122, 125
—चीनी आक्रमण के बाद, 138
—तीन योजनाओं के बाद, 155
—पाकिस्तान से युद्ध के बाद, 148
—लोकसभा के मध्यावधि चुनावों के बाद, 184
आय अनुपात 1 : 20 व न्यूनतम जोत सीमा 46
आयात और निर्यात 169
आयुर्वेद तथा देशी चिकित्सा पद्धति 6
आयोजन—
लक्ष्य, प्रस्तावित (*देखिए* योजना)
संबंधी परिकल्पना बदलो (*देखिए* योजना)
आवश्यक सेवा कानून की वापिसी (*देखिए* श्रमिक अशान्ति)
आवास निर्माण निगम 170
आवास स्वामित्व का वितरण 174

उत्पादन तथा समान वितरण, अधिकतम 174
उद्योग—
तथा श्रम 168
स्वावलम्बी कुटीर, 9
हथकरघा, 101
उपभोक्ता सहकारिताएं 187
उर्वरक आयात 75

एक सीमा रेखा शाश्वत नहीं (*देखिए* भूमि-सुधार)
एकाधिकार पर रोक 33

औद्योगिक—
स्वामित्व के बारे में राष्ट्रीय आयोग 175
सहायता कोष 108
संबंध नीति 106
औद्योगीकरण, ग्रामीण 102, 131

कराधान 169
—की समन्वित प्रणाली 121
—जांच आयोग 133
करों के विरुद्ध आन्दोलन, नये 134
कांग्रेस के नागपुर प्रस्ताव की टीका 64
किसान कृषि परिषदें 128
कुम्भ यात्री-कर 118

कोयना-भूकम्प (देखिए बाढ़)
कृषक के अधिकार और संविधान संशोधन 68
कृषि 31, 168
—कार्यक्रम 17
—गठन 64
—नीति, नयी 160
—पूर्ति 5
—क्षेत्र में बढ़ती विदेशी निर्भरता 5
खाद्य—
आन्दोलन 59
मन्त्रालय का नया कार्यक्रम 75
स्थिति 70, 72
—कुछ सुझाव 73
—युद्धोत्तर, 73
समितियां, सर्वदलीय 46
खाद्यान्न—
जांच समिति 56
पैदावार 9
व्यापार 60
क्षेत्र 70
(अनाज की विषम समस्या; कुछ सुझाव 45)
खेती, सघन 131

गोरक्षा के लिए संविधान संशोधन 63, 68
गोरक्षा समिति की मन्द गति, सरकारी 81
गोसंरक्षण आन्दोलन 52
गोसंवर्धन, गोहत्या व 50
गोहत्या (निरोध) निषेध 58
—की राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की मांग का पूर्ण समर्थन 47
—पर सर्वोच्च न्यायालय 59
—समिति का आंदोलन, सर्वदलीय 76
(पशुधन—
का नस्ल सुधार 57)
संरक्षण विधेयक 51)
(सरकार का उपेक्षापूर्ण रवैया 48)

चीनी नीति 91

जनसहयोग जगाने में असमर्थ 6

जोत-सीमा—(देखिए भूमि-सुधार)
और समन्वित आर्थिक कार्यक्रम (देखिए भूमि-सुधार)
तीस एकड़ (देखिए भूमि-सुधार)

दाशमिक मुद्रा और मीटरी प्रणाली 104

देशी वस्तुओं के लिए अनुराग 7

धनुषकोटि में समुद्री तूफान (देखिए बाढ़)

नहरी—
जल वार्ता, भारत-पाक 49
पानी समझौता, भारत-पाकिस्तान 66
नियोजन—
भारत में, (देखिए योजना)
यथार्थवादी, (देखिए योजना)
नियंत्रण 6
—परक 20
नियन्त्रणों का पुनरागमन 16

पन्नागोली कांड 70
परिवहन 9
पशुधन—
का नस्ल सुधार (देखिए गोहत्या निषेध)
संरक्षण विधेयक (देखिए गोहत्या निषेध)
पुरुषार्थ से समृद्धि, चार 129
पूंजी और श्रम की साझेदारी 131
प्रतिरक्षा 6
—के प्रति उदासीनता 18
—व्यय 128
—व्यय में कटौती 125
(सीमा क्षेत्रों की उपेक्षा 21)

फरक्का बांध 82

बजट—
1967-68 का, 154
1970-71 का जन-विरोधी तथा विकास-विरोधी, 170
1972-73 का किसान-विरोधी, 192

प्रस्ताव--
1959-60 के, 125
1962-63 के केन्द्रीय और प्रान्तीय, 133
1963-64 के मुद्रास्फीतिक, 135
1971-72 के 'गरीबी बढ़ाओ', 180
बाढ़—
उत्तर-पूर्व भारत में, 49
और सूखा 83
कोसी, 48
पीड़ित 53
पंजाब में, 53
विभाग, केन्द्रीय जलशक्ति आयोग में पृथक 84
(कोयना-भूकम्प 81)
(धनुषकोटि में समुद्री तूफ़ान 69)
बिक्री-कर 118
—आन्दोलन, राजस्थान में 119
—प्रतिगामी है 119
—विरोधी आन्दोलन 117
बिहार के अभावग्रस्त क्षेत्रों के लिए अपील (देखिए अकाल)
बुनकरों को राहत 100
बुनियादी मान्यताओं पर पुनर्विचार 12
बूते के बाहर 20
बेरोजगार (देखिए रोजगार)
बेरोजगारी (देखिए रोजगार)
बैंक—
को स्वशासी मौद्रिक अधिकरण में बदलो, रिजर्व 166
राष्ट्रीयकरण 164
—के बाद 179
बैंकिंग अधिनियम (संशोधन) विधेयक 1968 162
बैंकों पर राजनीतिक नियन्त्रण 162
बोनस—
8·33 प्रतिशत, 187
'विलम्बित वेतन' है 107
सब सरकारी कर्मचारियों को, 112

भूमि-सुधार—
का समन्वित कार्यक्रम 60
की धीमी गति 8
(एक सीमा रेखा शाश्वत नहीं 89)
(जोत-सीमा 62, 65)

—और समन्वित आर्थिक कार्यक्रम 88)
—तीस एकड़ 50)
मजदूर, खेतिहर 48
मानव का नैतिक एवं सांस्कृतिक आयोजन 10
मितव्ययिता—
में सरकारी पहल 122
सरकारी, 33
मुद्रास्फीति 11
—कारण और उपचार 143
—के कारण 186
मुद्रास्फीतिक व विदेशी आश्रित 8
मुद्रा, विदेशी 12
मूल्य—
और वेतन 132
गुजरात में गैस के, 140
चक्र 132
रोजगार और वितरण 90
वृद्धि—
के कारण 188, 195
भारी, 141
स्थिरीकरण 10
मूल्यों में—
असह्य वृद्धि 194
भारी वृद्धि 185
मन्दी 149

योजना—
अति-केन्द्रित व अधिनायकवादी, दूसरी 7
एक मूल्यांकन, चौथी 30
का—
प्रारूप, तीसरी 16
मध्यावधि—
आंकलन, चौथी 88
मूल्यांकन, तीसरी 139
की—
उपलब्धियों का मूल्यांकन 150
कमियां, पहिली 5
पुनर्रचना, तीसरी 14
विफलता, दूसरी 14

योजना—(जारी)
के—
प्रति दृष्टिकोण, चौथी 27
—पांचवी, 36
लक्ष्य और संरचना, तीसरी 21
लिए भारी कर अपघात है 120
स्थान पर स्वदेशी योजना, पांचवी 38
को—
प्रतिरक्षापरक बनाओ, तीसरी 23
बदलो, दूसरी 11
भारतीय मूल्यों से जोड़ो 21
वास्तविकता से सम्बद्ध करो, तीसरी 19
चौथी, 175
दोषपूर्ण, दूसरी 10
बदलो, 148
लक्ष्य बदलो, चौथी 34
व्यय में कटौती 121
(आ) योजना—
लक्ष्य, प्रस्तावित 22
सम्बन्धी परिकल्पना बदलो 25
(नि) योजन—
भारत में, 157
यथार्थवादी, 30

राष्ट्रीयकरण, न निठने पर ही 11
राहत के उपाय 196
रुपया, 50 पैसे का 185
रोजगार 168
—का अधिकार 129
—की गारंटी नहीं, सबके लिए 8
—जन्मसिद्ध अधिकार है 101
—जन-शक्ति और पूर्ण, 32
—पूर्ण, 9
(बे) रोजगारी 5, 101
—कुछ सुझाव 99
—बढ़ती, 10

लगान में कमी 55
लक्ष्य, मनमाने 8

व्यावहारिकता का अभाव 16

विकास दर—
दस प्रतिशत, 187, 192
में भारी गिरावट 184
वित्त—
आयोग, स्थायी 153
व्यवस्था, घाटे की 12
वित्तीय—
नीतियां, मौद्रिक और 132
सलाहकार सेवा 191
विदेशी—
ऋण 17
मदद, भारी 20
सहायता—
के साथ राजनैतिक फंदे 150
सतर्कता के साथ सीमित, 130
वेतन आयोग—
के प्रतिवेदन में विलम्ब, तृतीय 112
द्वितीय, 106
वेतन बांडों में, दो हजार रुपये प्रति मास से अधिक का 125

श्रम-संगठन—
की सिफारिशों, अन्तर्राष्ट्रीय 177
राष्ट्रीय, 103
श्रमिक अशान्ति 108, 110
(आवश्यक सेवा कानून की वापिसी 111)
शहरी संपत्ति और भूमि की सीमा 189
शिक्षा-पीठ का विरोध, भारत-अमरीकी 150

स्वदेशी—
आन्दोलन 5
कार्यक्रम 6
की भावना 170
स्वायत्त लाइसेंस बोर्ड 175
समाजवाद या सामाजिक न्याय 17
सरकार का उपेक्षापूर्ण रवैया (*देखिए* गोहत्या निषेध)
सरकारी गोरक्षा समिति की मन्द गति (*देखिए* गोहत्या निषेध)
सहकारी खेती 67
—आर्थिक और सामाजिक विकास में बाधक 55
—का विरोध 63
(सामुदायिक कृषि 21)

साधन वृद्धि के लिए सुझाव 183
साधनों से असम्बद्ध 20
सामुदायिक कृषि (देखिए सहकारी खेती)
सार्वजनिक सेवाओं का पुनर्गठन 127
साक्षरता प्रचार 6
सीमा क्षेत्रों की उपेक्षा (देखिए प्रतिरक्षा)
सूखा—
आयोग (देखिए अकाल)
पीड़ित (देखिए अकाल)
सेवा सहकारिताएं 55
सम्पत्ति सीमा और आर्थिक नीति सम्बन्धी वक्तव्य 187
संविधान (29वां) संशोधन 90

क्षेत्रों का—
अस्पष्ट निर्धारण 8
बाहुल्य, सार्वजनिक 8

• • •

भारतीय जनसंघ

घोषणाएं व प्रस्ताव

1951-72

2

आर्थिक विषयों पर प्रस्ताव

भारतीय जनसंघ घोषणाएं व प्रस्ताव 1951- 2